॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला २९६

महाकविभासविरचितम्

स्वप्नवासवदत्तम्

'गङ्गा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः संपादकश्च

गङ्गासागररायः

सर्वभारतीय काशिराज न्यासस्थः

दुर्ग रामनगर, वाराणसी



चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक

पोस्ट बाक्स नं० ११३९

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)

वाराणसी- २२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : चारू प्रिन्टर्स, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०६०
मूल्य : रु. ६०.००

फोन : २३३३४४५

शाखायें :

चौखम्भा संस्कृत भवन

पोस्ट बाक्स नं० ११६०
चौक, (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ०५४२-२४२०४१४

चौखम्भा पब्लिकेशन्स

४२६२/३ अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२
फोन : ०११-२३२६८६३९, २३२५९०५०
E-mail : chaukhambha@mantraonline.com

THE

KASHI SANSKRIT SERIES 296

SVAPNAVĀSAVADATTAM

OF

BHĀSA

[With Gangā Sanskrit and Hindi Commentaries, Introduction and Appendices]

Edited and Commented
by

Dr. Ganga Sagar Rai, M.A., Ph.D
All India Kashiraj Trust
Fort Ramnagar, Varanasi

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature

Post Box No. 1139

K. 37 / 116, Gopal Mandir Lane (Golghar Near Maidagin)

VARANASI-221001 (INDIA)

Phone : 2333445

Second Edition : 2003

Branches :-

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Post Box No. 1160

CHOWK, (Bank of Baroda Building)

VARANASI - 221001

Phone : 0542 - 420414

CHAUKHAMBHA PUBLICATIONS

4262/3, Ansari Road, Darya Ganj

New Delhi - 110002

Phone : 011 - 23268639, 23259050

E-mail : chaukhambha@mantraonline.com

निवेदन

भासनाटकचक्र की टीका और भाषानुवाद शृङ्खला मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की टीका को उपस्थापित करते हुए हम सन्तोष का अनुभव कर रहे है। यह भास का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक प्रचलित नाटक होने से भासनाटकचक्र का शीर्षस्थानीय रूपक है। आशा है कि भास के अन्य अवशिष्ट नाटको की टीकाये भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर सकेगे और तदुपरान्त भास के विषय मे एक साङ्गोपाङ्ग परिचयात्मक अध्ययन भी दे सकेगे। भास के नाटक यद्यपि सूक्ति ग्रन्थो तथा कवियो की कृतियो मे बहुचर्चित थे, परन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ तक वे सभी अनुपलब्ध थे। सन् १९१३ ई० मे महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित होते ही ये नाटक सर्वत्र चर्चित हो उठे। इसी से उनकी गुणवत्ता और महत्ता का सहज बोध हो जाता है। वे प्रकाशन के साथ ही सपूर्ण देश मे पठित और व्याख्यात होने लगे और अद्यावधि यह क्रम चालू है। उसी क्रम मे यह भी लघुप्रयास है।

टीकाकार्य मे हमारे हितैषी आदरणीय पं० हीरामणि मिश्र ने सहायता की है और मुद्रण संशोधन मे पं० कृपासिन्धु शर्मा ने सहायता की है। एतदर्थ इनका मै अधमर्ण हूँ। इस संस्करण मे अज्ञान या प्रमादवश जो अशुद्धियाँ रह गयी है, उनके लिये मै विज्ञ पाठको से क्षमायाचना करता हूँ। टीका मे जिन पूर्ववर्ती टीकाकारो से सहायता मिली है, उनके प्रति भी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसके प्रकाशन मे चौखम्भा संस्कृत संस्थान के स्वत्वाधिकारी श्री मोहनदास जी गुप्त तथा उनके चिरञ्जीवि श्री राजेन्द्र जी ने जो तत्परता दिखाई है तथा धैर्य प्रदर्शित किया है उसके लिये मै उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

कल्याणमित्र प्रो० देवेन्द्रकुमार राय के प्रति धन्यवाद औपचारिकता मात्र है।

काशी
माघी पूर्णिमा २०५४ वि०
११ फरवरी, १९९८ ई०

गङ्गासागर राय

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के दृश्य काव्यों के रचनाकारों में सम्भवतः सबसे प्राचीन है। संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास ने अपनी कीर्ति-कौमुदी सुदूर दक्षिण से लेकर उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक प्रसारित की है। भास के नाटकों में नाटक का वह रूप देखने को मिलता है जिसके कारण भरत ने नाटक को पञ्चम वेद होने का गौरव प्रदान किया था। नाटक कवित्व चरम परिपाक होता है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमे तीनों लोकों के भावो का समावेश होता है। इस दृष्टि से भास के नाटकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भास ने मानवीय भावनाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। भास ने तेरह नाटको की रचना की है एवं रचना के साथ-साथ उनके प्रस्तुतीकरण मे भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। भास के नाटकों की प्रामाणिकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी नाटकों की भाषा और शैली एक-सी मुहावरेदार, सरल एवं प्राञ्जल है। इनके नाटकों में भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति तथा पात्रों के नामों में समरूपता पायी जाती है एवं सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत–साहित्य के नाट्य जगत् में भास का अपना विशिष्ट स्थान है।

भास के नाटकों की प्रशस्तियां

अपने कवित्व से जाज्वल्यमान महाकवि भास सूर्यमणि के समान नाट्य जगत् को आलोकित किये हुए हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत ही उलझा एवं विवादास्पद है। भास के नाटकों की प्रशस्ति बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती थी। भास के नाटक दक्षिण भारत में हस्तलिखित प्रतियों में रहे थे तथा इनके स्वरूप के बारे में लोगों को जानकारी नहीं थी। सबसे पहले १९१२ ई० में महा-महोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को ट्रावनकोर राज्य के तञ्जौर पुस्तका-

लय से केरल लिपि में १३ नाटकों की जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई उसको उन्होंने प्रकाशन में लाया। गणपति शास्त्री के प्रकाशन से पूर्व भी संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों ने भास का उल्लेख एवं यशोगान किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास नाटक साहित्य में अपना अन्यतम स्थान रखते थे।

महाकवि भास की प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में कुछ प्रमुख निम्न उल्लेख लिखित हैं—

(१) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से स्पष्ट कहलवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के द्वारा निर्मित प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की रचना का इतना अधिक क्यों समादर हो रहा है—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

(मालविकाग्निमित्र)

(२) हर्ष के सभा पण्डित बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले, अधिक भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति प्रसिद्ध हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यहाँ नान्दी का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि सामान्यतः संस्कृत के नाटक नान्दी से ही प्रारम्भ होते हैं। यह अन्तर भास की संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् पहचान बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(३) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास के नाटकों की अग्नि परीक्षा में 'स्वप्नवासवदत्ता' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः ॥

—काव्यमीमांसा

(४) वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—(ज्वलनमित्र = अग्नि का मित्र) कहा है। भास को 'ज्वलनमित्र' की संज्ञा प्राप्त होने के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि नाटक में वासवदत्ता के जलने की मिथ्या खबर फैला कर भास ने नाटकीय कथा के विकास में उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

भासम्भि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्भि हारि अन्दे अ अवन्दो।

(५) नाटककार आलङ्कारिक कवि जयदेव ने अपने नाटक प्रसन्नराघव में भास को कविता कामिनी का 'हास' बताया है। इस प्रकार के वर्णन से भास की हास्य-रस वर्णन में कुशलता भी व्यञ्जित होती है—

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥

—प्रसन्नराघव १।२८

(६) दण्डी ने अपनी 'अवन्ति सुन्दरी कथा' में भास के काव्य गुणों के बारे में लिखा है—

सुविभक्तः मुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥

—दण्डी-अवन्तिसुन्दरी

(७) नाट्य दर्पण (रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) ने भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः···· ····॥"

(८) शारदातनय (१२वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक

के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का उल्लेख किया है।

(९) भोजदेव ने 'शृङ्गार प्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्ता' का वर्णन किया है—

'वासवदत्तो पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।'

(१०) भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का उल्लेख अभिनवगुप्त ने नाटयशास्त्र की अपनी टीका अभिनवभारती में किया है।

'क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।'

—नाटयशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका।

(११) सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' में उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' टीका में भास के विष्णु धर्म नाटक का उल्लेख किया गया है परन्तु भास का विष्णु धर्म नाटक अभी तक अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाकवि भास को बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त थी, परन्तु समयान्तराल के कारण उनके नाटकों की ख्याति काल के अन्तराल में समाविष्ट हुई तथा केवल सूक्ति मात्र ही रह गयी और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के उद्धार से पूर्व ये नाटक लुप्त हो गये थे।

भास का जीवनवृत्त

अपने रससिक्त नाटकों से जनमानस को आप्लावित करने वाले महाकवि भास का जीवनवृत्त आज तिमिराच्छन्न है। अपने देश में आत्मकथा लिखने की प्रथा नहीं थी। भास के सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर उसमें नामोल्लेख का स्पष्ट वर्णन नहीं है, परन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एवं वैष्णवमतावलम्बी सशक्त नाटककार हैं। पठन-पाठन की तत्कालीन प्रचलित परिपाटी के अनुसार भास का ब्राह्मण होना भी स्वतः सिद्ध है। भास स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे एवं उनके लिए गृह को ही उचित स्थान उन्होंने बताया है। भास वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले, कर्तव्यनिष्ठ, पुत्र के पिता, पति परम्परानुगा-

मिनी पत्नी के पति एवं पितृभक्त सन्तान के प्रिय पिता थे। देवता एवं धर्म में उनका दृढ़ विश्वास था—'धर्मो रक्षति रक्षितः' के वे अनुयायी थे।

पञ्चरात्र एवं अन्य रूपकों में भास ने यज्ञ का उल्लेख किया है—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥

भास भाग्य में दृढ़ विश्वास करते थे—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।'

भास उद्योग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे—

'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥

डा० पुसालकर ने भास को 'धर्मभीरु ब्राह्मण' कहा है। भास के स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों के भरतवाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भास दक्षिण भारत के न होकर उत्तर भारत के निवासी थे।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

कवि भगवान् से प्रार्थना करता है—हमारे राजा ससागर उस सम्पूर्ण भूमण्डल के मध्य एकच्छत्र राज्य करें जिसके एक ओर हिमालय तथा दूसरी ओर विन्ध्य पर्वत दो कर्ण–कुण्डलों के समान अलङ्कृत हो रहे हैं। भास की वसुन्धरा उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक शीर्ष स्थानीय है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी।

भास के नाटकों की खोज

संस्कृत–साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के नाटक प्रेक्षकों की दृष्टि से ओझल क्यों हो गये ? जब कि भास उस समय इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि कालिदास जैसे कवि भी भास के

नामोल्लेख से अछूते नहीं रह सके। भास के नाटकों के विलुप्त होने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थ और शाखायें जिनका कुल परम्परा में अध्ययन आवश्यक था विलुप्त हो गये तो लोकानुरञ्जक इन नाटकों का क्या? सौमिल्ल आदि के नाटक आज तक विलुप्त ही हैं। विद्वानों ने नाटकों के विलुप्त होने के कारणों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है वे निम्नलिखित हैं—

(१) भारत में मुसलिम शासकों के आक्रमण एवं राज्य स्थापना तथा साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का विनाश एवं उस समय के कवियों की कृतियों को विनष्ट करने का खेल प्रारम्भ हो गया था। फिर देश की समृद्धि एवं राजसिंह को हिमालय एवं विन्ध्य के बीच एकच्छत्र राज्य का निर्देश देने वाले तथा वैदिक संस्कृति एवं धर्म के पोषक कवि के ऊपर मुसलमानों की दृष्टि पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तरी भारत में रहने वाले देशी सरदार एवं मुसलमानों ने विदेशी आक्रमणकारियों को देवनागरी लिपि में लिखित सरल पाठ को विनष्ट करने में पर्याप्त सहयोग दिया जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में देवनागरी लिपि में भास की कृतियाँ काल की चपेट में समाहित होकर अनुपलब्ध हो गयी। प्रो० वी० राघवन् ने जो भास के नाटकों के हस्तलेखों की खोज की है वह देवनागरी लिपि में नहीं है। दक्षिण में जो लेख प्राप्त हुए है उसका कारण है कि दक्षिण केरल में मुसलमानों का प्रचार-प्रसार कम था तथा ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुलभ सुगम नहीं थी।

(२) ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि विदेशियों से बार-बार पदाक्रान्त होने के कारण भारतीय जनता का ध्यान शौर्यपूर्ण अभिनयों को देखने की अपेक्षा धर्म की ओर उन्मुख हो गया था।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के निकट मल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूत घटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्ण

भार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले इसके अतिरिक्त दूतवाक्य की खण्डित ताड़पत्र पत्र लिखित हस्तलिपि प्राप्त हुई। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने अपने प्रयासों को आगे भी जारी रखा एवं कैलाशपुरम् के एक ज्योतिषी के यहाँ से अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक की हस्त प्रतियाँ प्राप्त की। इन दोनों प्रतियों के समान ट्रिवेण्ड्रम पुस्तकागार में भी दो प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गणपति शास्त्री ने कृष्णतन्त्री से भी हस्तलेख प्राप्त किये तथा मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी गणपति शास्त्री को दीं। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बाद भी शास्त्री जी को चारुदत्त की कोई पूर्ण प्रति यहीं प्राप्त हो सकी।

३ जनवरी १९०६ को सम्पत कुमार चक्रवर्ती ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्टस्, मद्रास के पुस्तकालय के लिए देवनागरी लिपि में स्वप्नवासवदत्तम् की एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने पश्चात् ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय हेतु प्रतिज्ञायौगन्धरायण की एक प्रति की नकल की।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया वे निम्न लिखित हैं—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायण	२. अविमारक	३. स्वप्नवासवदत्ता
४. प्रतिमा नाटक	५. मध्यम व्यायोग	६. पञ्चरात्र
७. अभिषेक	८. दूत वाक्य	९. दूत घटोत्कच
१०. कर्णभार	११. ऊरुभङ्ग	१२. बाल चरित
१३. चारुदत्त		

गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ में 'यज्ञफल' नामक एक रूपक का प्रकाशन करके भास के नाटकों की संख्या एक और बढ़ा दी है। परन्तु इस नाटक के प्रकाशन के बाद इस पर बहुत विवाद हुआ और एक व्यक्ति ने उसे अपनी कृति होने का दावा किया।

बाद में विद्वानों ने अन्वेषण कर यह सिद्ध किया कि इस नाटक का एक हस्तलेख बहुत प्राचीन है और अपनी कृति का दावा करने वाले मज्जन का विचार मिथ्या है। इस विषय में प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने एक प्रमाणिक निबन्ध लिखकर यह प्रमाणित किया कि अपनी कृति होने का दावा करने वाले मज्जन का मत मिथ्या है और यह कृति प्राचीन है।

रूपकों का एककर्तृत्व

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाशित भास के तेरह नाटकों की प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतैक्य है। भास के नाटकों के ऊपर यह प्रश्नचिह्न लगाया जाता है कि सम्पूर्ण नाटक भास के हैं या इसमें से कुछ ही नाटक भास के हैं। सम्पूर्ण नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि सभी नाटक भास के हैं क्योंकि उनमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है—

(१) भास के सभी नाटकों में (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के बाद सूत्रधार मंगल पाठ से इनका प्रारम्भ करता है—

(क) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधार—उदयनवेन्दुसवर्णा।

—स्वप्नवासवदत्ता।

(ख) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। सूत्रधारः—पातु वासव-दत्तायो····प्रतिज्ञायौ०।

इत्यादि।

(२) कर्णभार में प्रस्तावना शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(३) अङ्कों के बीच में घटित घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए अङ्कों के मध्य में विष्कम्भकों तथा लघुविस्तारी प्रवेशकों का समावेश हुआ है।

(४) सम्पूर्ण नाटकों में कहीं पर भी नाटक के प्रणेता के नाम का उल्लेख नहीं है।

(५) चारुदत्त एवं दूतघटोत्कच के अतिरिक्त सम्पूर्ण नाटकों के भरत

वाक्य में राजसिंह राजा के सागर पर्यन्त एकच्छत्र राज्य की कामना व्यक्त की गयी है जिसके हिमालय और विन्ध्य दो कुण्डल हैं।

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

—स्वप्न० ६-१९ तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य।

(६) भरत द्वारा निर्दिष्ट भारतीय नाट्य साहित्य परम्परा में नियमों का भास के नाटकों में उल्लघन हुआ है। उदाहरणार्थ—रङ्गमञ्च पर ही मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े का प्रदर्शन किया है।

(७) नाटकों के पात्रों में नाम साम्य पाया जाता है।

(८) सभी नाटकों के पात्रों ने आकाशभाषित वाक्यों का प्रयोग किया है।

(९) भास ने भरत के नाट्य शास्त्र मे अविहित कुछ शब्दो का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न किया है। जैसे—आर्यपुत्र का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों मे हुआ है।

(१०) सभी रूपकों का नाम केवल ग्रन्थ की समाप्ति पर ही पाया जाता है।

(११) नाटकों में विभिन्न छन्दों के प्रयोग होने पर भी उनमें साम्य है।

(१२) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत साम्य है।

(१३) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में मिलती है एवं जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' यहाँ निकलना तथा प्रवेश करना साथ ही निर्दिष्ट है।

(१४) अधिकतर नाटकों में पताका स्थान तथा मुद्रालङ्कार का प्रयोग एक समान किया गया है।

(१५) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों पर जोर नहीं दिया गया है।

(१६) कई नाटकों में प्रभावशाली पद्धति के द्वारा किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। जैसे—जब महासेन और अङ्गारवती आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन सा राजा उपयुक्त वर होगा उसी समय कञ्चुकी उपस्थित होकर 'वत्स-राज' का नाम लेता है। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर प्राप्त हो जाता है जबकि कञ्चुकी यह सूचना देने आता है कि 'वत्सराज' बन्दी बना लिया गया।

इसी प्रकार जब अभिषेक नाटक में रावण सीता को यह बताता है कि इन्द्रजित् के द्वारा राम एवं लक्ष्मण का वध हो गया अब तुम्हें कौन मुक्त करायेगा, उसी समय एक राक्षस आकर यह कहता है कि 'राम'। जबकि राक्षस यह सूचना देना चाहता है कि राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।

(१७) कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे—'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह'। (हटिये, हटिये—श्रीमानों !) का प्रयोग कई स्थानों पर हैं।

(१८) एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के पद्यों या वाक्यों को खण्डित या पूर्ण किया गया है।

(१९) सम्पूर्ण नाटकों में से पाँच नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग कर देवस्तुति, पात्र नामोल्लेख एवं कथानक संकेतित है।

(२०) नाटक में नाटकीय घटनाओं के प्रयोग में समानता पायी जाती है। जैसे अभिषेक तथा प्रतिमा नाटक में सीता द्वारा रावण की प्रार्थना का अस्वीकार किया जाना तथा उसे शाप देना। इसी प्रकार चारुदत्त में शकार के निवेदन को अस्वीकृत करते हुए वसन्तसेना द्वारा उसे शाप देना। बालचरित तथा पञ्चरात्र में सैनिकों द्वारा राजा के विषय में प्रश्न करना कि यह किसका राजा है ? एवं प्रणाम न करना। अविमारक एवं प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए एक समान वर्णन है।

(२१) प्रायः भास के नाटकों में युद्ध की सूचना भटों और ब्राह्मणों के माध्यम से दिखायी गयी है।

(२२) किसी घटना की जानकारी देने के लिए 'निवेद्यतां-निवेद्यता महाराजाय।' इत्यादि वाक्य की उद्भावना पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में एक समान है।

(२३) नाटक में भावों की समानता पायी जाती है। जैसे—नारद को कलहप्रिय तथा स्वतन्त्री का साधक बताया गया है—

(क) "तन्त्रीषु स्वरगणान् कलहांश्च लोके।"—अविमारक ४।२

(ख) "तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।"—बाल १।३

(२४) मृत्यु के बाद राजाओं का स्थूल शरीर तो नहीं रहता परन्तु उनका यशरूपी शरीर चिरकाल तक रहता है, इस प्रकार के विचारों की उद्भावना हुई।

"नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते"।—पञ्चरात्र १।२५

"हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते"—कर्ण० १७

(२५) लक्ष्मी का निवास साहसियों के पास दर्शाया गया है एवं वह सन्तोष नहीं करती। इस प्रकार का वर्णन चारुदत्त, दूतवाक्य, पञ्चरात्र और स्वप्नवासवदत्तम् में पाया जाता है।

उपर्युक्त समताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

नाटकों का प्रणेता कौन था ?

भास के नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। भास के नाटकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग—ए० डी० पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ, गणपति शास्त्री, पराञ्जपे ये सभी नाटकों को भास कृत मानते हैं।

द्वितीय वर्ग—पिशरोटो, कुन्हनराजा, देवधर तथा विण्टरनित्ज,

डा० बार्नेट–ये सभी विद्वान् इन नाटकों को भास कृत नहीं मानते हैं।

तृतीय वर्ग—डॉ० सुकथानकर आदि विद्वानों का विचार है कि जो नाटक उपलब्ध हैं उनमें कुछ नाटक भासकृत हैं तथा कुछ नाटकों को सम्पादन के पश्चात् भास के साथ नाम जोड दिया गया है।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?

कुछ समीक्षकों का विचार है कि इन नाटकों की रचना केरल रंगमंच अभिनेता चाक्यारों ने की है। इसके सम्बन्ध में इन लोगों का विचार है, कि—

(अ) नाटकों की हस्तप्रतियों का केवल केरल से प्राप्त होना।

(ब) यदि नाटकचक्र भासकृत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नामोल्लेख अवश्य होता।

(स) रीति ग्रन्थों में 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण दिये गये हैं उनका वर्तमान नाटकों से कोई मेल नही है।

(द) महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का विचार है कि 'स्वप्न. वासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा' नाटकों में 'विवाह' के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है जो केरल के चाक्यारों में आज भी इसी अर्थ का द्योतक है। इसी आधार पर चाक्यारों की रचना प्रामाणिक सिद्ध होती है।

चाक्यारों की रचना की अप्रामाणिकता ?

नाटकों की भाषा, शैली, समृद्धि को देखते हुए चाक्यारों की रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इस प्रकार के नाटकों की सृजन शक्ति चाक्यारों के अन्दर थी तो उन्होंने इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों का सृजन क्यों नहीं किया? क्या इन तेरह नाटकों के बाद उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो गई? अतः इन नाटकों के प्रणेता चाक्यार नहीं थे। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्दिष्ट हैं—

(अ) प्राचीन प्रतियों के केरल में प्राप्त होने से प्रामाणिकता असिद्ध नहीं होती, क्योंकि उत्तर भारत में राजनीतिक उथल पुथल भी उसके अभाव

का कारण हो सकता है। इसके साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी कवि की कृति किसी देश विदेश मे प्रचलित हो तथा अन्य प्रान्तों में उसका प्रचार प्रसार न हो।

(ब) नाटकों में भास का नामोल्लेख न होने से इसकी अप्रामाणिकता तथा नवीनता नहीं सिद्ध होती, क्योंकि यह निश्चित है कि भास कालिदास से प्राचीन है, एवं यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय के कवियों में नामोल्लेख की परम्परा का अभाव हो। इसके साथ यह भी है कि यदि ये नाटक चाक्यारों के होते तो वे अवश्य अपना नामोल्लेख करते।

(स) प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त उद्धरणों के सम्बन्ध में यह हो सकता है कि लेखक के प्रमादवश ये अंश छूट गये हो एवं जहाँ पर ये अंश छूटे हैं वहाँ पर उन अंशों को समाविष्ट करने का पर्याप्त स्थान है।

(द) 'विवाह' के अर्थ में 'सम्बन्ध' का प्रयोग मिताक्षरा पद्धति मे आज भी दिखलायी पड़ता है।

इन नाटकों की रचना पल्लव दरबार में नहीं हुई

कुछ लोगों का मत है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह बर्मन या तेन मारन के किसी सभा पण्डित ने इन नाटकों की रचना की है, क्योंकि दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखा था, अतः 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नाटक में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में या दक्षिणात्य अर्थ रखते हैं।

यह तर्क इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि इन राजाओं की सभा में ऐसे प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही कवि यदि इन राज सभाओं में रहता तो अपनी कृतियों अपने नाम का उल्लेख अवश्य करता। क्योंकि विक्रम की प्रथम शताब्दी से ही नाम उल्लेख की परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया था। जैसे—कालिदास, अश्व

घोष, भवभूति, आदि, औदीच्य एवं शक्तिभद्र, महेन्द्र वर्मन् आदि दक्षिण के नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं जिसमें एक वर्ग नाटको की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। राजशेखर का भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' के विषय में उल्लिखित मत प्रामाणिक रूप से लिया जा सकता है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

अग्नि-परीक्षा के समय और नाटकों के साथ स्वप्नवासवदत्ता का परीक्षण होता है परन्तु वह बच जाता है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य नाटक भी भासकृत हैं।

दूसरा वर्ग भास के नाटकों को बिल्कुल अप्रमाणिक मानते हुए उसे किसी परवर्ती लेखक, चाक्यार, पल्लव नरेश का सभा पण्डित या किसी अन्य कवि को स्वीकार करता है।

तीसरा वर्ग भास के नाटकों को अर्धप्रमाणिक स्वीकार करता है। इनके अनुसार कुछ नाटक भास रचित हैं लेकिन सभी नहीं। इस मत के समर्थन में महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का विचार है कि कुछ नाटकों के कतिपय अंश भास रचित तो अवश्य है परन्तु सभी नाटकों की रचना भास कृत नहीं है। विभिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये नाटक अंशतः भास द्वारा लिखे गये हैं।

भास का समय

संस्कृत-साहित्य के नाट्य जगत् को आलोकित करने वाले महाकवि भास के समय निर्धारण में विद्वानों में भी मतभेद है। इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय के कवियों में जीवन-परिचय लिखने की परम्परा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भास के समय सम्बन्ध में विद्वानों में जितना मतभेद है उतना अधिक सम्भवतः संस्कृत जगत् के किसी कवि के सम्बन्ध

में नहीं होगा। यदि एक वर्ग भास को ई० पू० चौथी शती में मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें ईसा की दसवीं सदी में। इस प्रकार भास के समय में १४०० वर्षों का अन्तर पडता है। भास को दसवीं शदी में मानने वाले विद्वान् भास नाटक चक्र कालिदास द्वारा वर्णित भास के नाटक को न मानकर किसी अन्य चाक्यार या केरलीय कवि द्वारा निर्मित स्वीकार करते है।

अन्त. साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के तथ्यों के आधार पर भास को चतुर्थ ई० पू० तथा ई० सन चतुर्थ शतक के बीच स्वीकार किया जा सकता है।

महाकवि भास का देश

दक्षिण के विद्वान् महाकवि भास को दक्षिण देश का निवासी मानते हैं। इसके सम्बन्ध मे उन लोगों का तर्क है कि—

(१) भास के नाटकों के सभी हस्तलेख केरल में प्राप्त हैं।

(२) सम्पूर्ण भारत को छोड़कर केरल में ऐसा नियम है कि संस्कार के समय पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है, इसी प्रकार का चित्रण भास ने अपने प्रतिमा नाटक में संस्कार के समय राम के साथ सीता का चित्रण नहीं किया है। अत: इस प्रकार के वर्णन के आधार पर भास केरल के निवासी ठहरते हैं।

(३) भास ने मामा का अधिक सम्मान के साथ उल्लेख किया है, जिसका कारण दक्षिण भारत का ही प्रभाव है।

मत की अप्रामाणिकता

किसी कवि के किसी स्थान पर प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसको उस देश का निवासी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी कवि की रचनाओं को ख्याति दूसरे देशों में हों तथा कवि दूसरे देश का निवासी हो। उत्तर भारत में मुसलिम शासकों का क्रूर नर्तन तथा राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। इसलिए भास के नाटकचक्र के हस्तलिपियों का उत्तर भारत में अभाव है। प्रतिमा नाटक में अभिषेक

संस्कार में राम के साथ सीता की अनुपस्थिति नाटकीय विशेषताओं के लिए दर्शायी गयी है।

भास के द्वारा मामा को अधिक सम्मान देने वाली बात धर्मशास्त्र पर अवलम्बित है।

वस्तुत: भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। भास ने अपने नाटकों में अनेकों देशों का वर्णन किया है। उनमें प्रमुख है—अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तरकुरु, कोशल, विराट्, सौवीर, कम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह), अंग, बंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का आदि। इन नामो के आधार पर कहा जा सकता है कि भास उत्तर भारत के ही निवासी थे। उन्होने लङ्का, दक्षिणापथ, सिंहल का वर्णन किया है, वह रामायण एवं महाभारत के आधार पर किया है।

भास ने उत्तर भारत के ही पर्वतों हिमालय, विन्ध्य, चित्रकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलाश आदि का वर्णन मुख्यत: किया। अन्य स्थानों का वर्णन प्रकरणोपात्त है।

भास का धर्म

महाकवि भास गो-ब्राह्मण संरक्षक वैष्णव मतावलम्बी थे, वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त, वैदिक कर्मकाण्डों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले वैष्णव धर्म के अनन्य अनुयायी थे।

भास ब्राह्मण थे ?

भास के नाटकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।[1] परम्परा से भी ब्राह्मण का विद्या के अध्ययन-अध्यापन पर आधिपत्य था। ब्राह्मण धर्म एवं समाज व्यवस्था को मानना तथा अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य भास को ब्राह्मण ठहराते हैं।

---

1. ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ६ यही मत डा० पुसालकर का भी है। द्र० भास : ए० स्टडी।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का संक्षिप्त कथानक

महाकवि भास के नाटकों मे यह नाटक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह छः अङ्कों में विभक्त है। घटना क्रम की दृष्टि से यह प्रतिज्ञायौगन्धरायण का परवर्ती भाग है तथा इसके कथानक का आधार वत्सराज उदयन का चरित्र है। नाटकीय कथावस्तु इस प्रकार है—

प्रथम अङ्क मे मङ्गलाचरण के बाद सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है। वह सब की मंगल कामना करते हुए कहता है कि उदय कालीन चन्द्र के समान वर्ण वाले, मदिरा सेवन से निर्बल, कमल सदृश कोमल तथा वसन्त ऋतु के समान मनोहर बलराम की भुजाए आप लोगो की रक्षा करें। उसी समय नेपथ्य में 'हटिये–हटिये, शब्द सुनाई पड़ता है। उस शब्द को सुन कर वह कहता है कि अच्छा मैं जान गया कि राजकुमारी पद्मावती का अनुसरण करने वाले मगधेश्वर के सेवकों से तपोवन में रह रहे सब लोग ढिठाई से हटाये जा रहे हैं। उसके पश्चात् तपोवन का दृश्य है। यौगन्धरायण परिव्राजक के वेष में तथा वासवदत्ता अवन्ति देश की स्त्री के वेष मे दिखाई पड़ती हैं। मगध नरेश दर्शक की माता तपोवन में निवास कर रही है, उन्हीं से मिलने के लिए मगधेश्वर की बहन पद्मावती आ रही है। इसीलिए उसके संरक्षक लोगों को हटा कर मार्ग खाली करा रहे हैं। तपोवन में निःसारण की क्रिया को देख कर यौगन्धरायण को आश्चर्य होता है, वह सोचता है कि तपोवन में रहने वाले कन्दमूल फलों से सन्तुष्ट सम्मान के योग्य और वल्कल धारण करने वाले जनों को भी नगर के समान भयभीत किया जा रहा है। यौगन्धरायण से वासवदत्ता पूछती है कि कौन हटा रहा है? तब वह कहता है कि जो धर्म से अपने को हटा रहा है। वासवदत्ता पूछती है कि क्या मैं भी हटाई जाने वाली हूँ तब यौगन्धरायण कहता है कि इसी तरह अपरिचित देवता भी तिरस्कृत होते हैं। वासवदत्ता इस प्रकार के तिरस्कार भाव को देख कर खेद प्रकट कर रही है। परन्तु यौगन्धरायण उसे सान्त्वना देते हुए कहता है कि समय के क्रम से जगत् की परिवर्तनशील भाग्य पङ्क्ति पहिए के तीलियों के

समान ऊपर-नीचे चलती है। आपको इस प्रकार से चलना अभीष्ट था, फिर पति उदयन के अभ्युदय से श्लाघ्य रूप से उसी तरह गमन करेंगी। इसी समय मगधराज का काञ्चुकीय वहाँ आता है और भटों को निःसारण क्रिया से विरत करते हुए कहता है कि तपोवन में रहने वालों से कठोर वचन का प्रयोग मत करो, क्योंकि ये तपोवन वासी शहर मे होने वाले तिरस्कारों को छोड़ने के लिए ही तपोवन में आकर रहते हैं।

पद्मावती अपने सखियों और दासी के साथ आती है। वह तपोवन के तापसियों का अभिवादन तथा राजमाता का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करती है। पद्मावती के रूप और यौवन को देख कर एक तापसी दासी से पूछती है कि ऐसी सुन्दर आकृति वाली को क्या कोई राजा वरण नहीं करता? दासी बतलाती है कि उज्जयिनी के प्रद्योत नामक राजा ने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है। पद्मावती तपोवन वासियों को दान देना चाहती है। उसकी आज्ञा से काञ्चुकीय घोषणा करता है कि किसे क्या अभीष्ट है? किसे कलश का प्रयोजन है? कौन तपस्वी वस्त्र चाहता है? अध्ययनार्थ व्रत को समाप्त करने वाला कौन सा स्नातक गुरु दक्षिणा देना चाहता है? जिसको जो वस्तु अभीष्ट हो उसे वह कहे। वहा के तपस्वियों में कोई भी याचना नही करता परन्तु यौगन्धरायण आगे बढ़ कर याचना करता है कि राजकुमारी कुछ समय तक मेरी बहन को अपने संरक्षण में रखें। इनके पति परदेश में गये हुए हैं। मुझे धन से काम नही है इसी तरह न भोगों से और न वस्त्रों से ही काम है, मैंने जीविकोपार्जन के लिए गेरुवा वस्त्र नहीं पहना है। 'विदुषी और धर्म प्रचार को देखने वाली यह राजकुमारी मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती है।' पद्मावती का परिचर पहले उस भार को वहन करने में उत्सुकता नही प्रकट करती बल्कि ढील प्रदर्शित करता है परन्तु पद्मावती अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर उसे अपने पास रखना स्वीकार कर लेती है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को राजकुमारी पद्मावती को सौंपता है तथा वह मन में सोचता है कि आधा बोझ उतर गया। जैसा मन्त्रियों के साथ निश्चय किया था, वैसा ही परिणाम होगा। तब महाराज के फिर प्रतिष्ठित

सिंहासन पर आरुढ़ होने पर महारानी वासवदत्ता को सौंपने पर मेरी साक्षिणी ये मगध राजकुमारी पद्मावती होगी क्योंकि—जिन पुष्पक आदि सिद्धों ने पहले ही राजा उदयन की आने वाली विपत्ति को सूचित किया था। उसे हम लोगों ने प्रत्यक्षतः देख लिया। अब उन्होंने पद्मावती महाराज की महारानी होगीं ऐसा कहा है। उन्हीं वचनों के विश्वास से आज मैंने पद्मावती के हाथों वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखा। क्योंकि भाग्य परीक्षित सिद्ध जनो के वाक्यों का उल्लङ्घन नहीं करता, अर्थात् सिद्ध जन की वाणी मिथ्या नहीं होती है।

इसी समय एक ब्रह्मचारी आता है। वह आश्रम में प्रवेश करता है परन्तु तपस्वी जनो के अलावा स्त्रियों को देख कर आश्चर्य तथा सङ्कोच करता है। काञ्चुकीय उससे कहता है कि आप निर्भय प्रवेश करें क्योंकि आश्रम स्थान सब लोगों के लिए है। यौगन्धरायण ब्रह्मचारी से परिचय पूछता है कि आप कहाँ से आये है? कहाँ जाना है? और कहाँ रहते हैं? ब्रह्मचारी बतलाता है कि मैं राजगृह से आया हूँ। वेद का अध्ययन करने के लिए वत्सराज के राज्य मे लावाणक नामक ग्राम है, वहां रहता था। यौगन्धरायण पूछता है कि अध्ययन के समाप्ति की पूर्व ही आप क्यों चले आये? ब्रह्मचारी बताता है कि वहाँ पर बडी भारी विपत्ति आ पड़ी है। उस ग्राम में वत्सराज उदयन अपनी प्राण प्यारी पत्नी वासवदत्ता तथा अमात्यों के साथ ठहरे हुए थे। एक दिन जब वे शिकार खेलने के लिए निकले तब उनके आवास में आग लग गई। वत्सराज उदयन की पत्नी वासवदत्ता उसमें जल कर मर गई और उनको बचाने का प्रयास करते हुए मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी आग में जल गया। जब राजा शिकार से लौटे तब उस वृत्तान्त को सुन कर महारानी और यौगन्धरायण के वियोग में सन्तप्त होकर उसी आग में प्राण छोडने की इच्छा से उद्यत हुए। तब मन्त्रियों ने बहुत यत्न पूर्वक उन्हें रोका। तब राजा वासवदत्ता के शरीर में पहने गये जलने से बचे आभूषणों का आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गये। यह कथन सुन कर अवन्तिका (वासवदत्ता) रो पड़ती है। ने यौगन्धरायण

कहता है कि मेरी बहन अवन्तिका स्वभाव से दयालु है इसलिए रो रही है। आगे ब्रह्मचारी बतलाता है कि राजा उदयन अपने पत्नी के वियोग में इतना अधिक शोक सन्तप्त हैं कि चकवा भी चकवी के वियोग में इतना दुःखित नहीं रहता है। वह स्त्री वासवदत्ता धन्य है जिसका पति उसे इतना असाधारण प्रेम करता है। पति के प्रेम से वह जलने पर भी नहीं जली है। यश: शरीर में से जीवित है। आगे वह कहता है कि राजा को सम्भालने के लिए उनके मन्त्री रुमण्वान कठोर परिश्रम कर रहे है क्योंकि भोजन करने में राजा के सदृश हैं, निरन्तर रोने से दुबले मुख वाले राजा के समान दुःख का अनुभव कर रहे हैं। शरीर में स्नान आदि संस्कारों को करते हुए, अनेक यत्नों से राजा की दिन–रात सेवा करते हैं। राजा प्राण छोड़ दें तो तत्क्षण उनकी भी मृत्यु हो जायेगी। राजा उस स्थान पर हमेशा विलाप–प्रलाप किया करते थे कि वासवदत्ता के साथ उस स्थान पर हर्मा, इस स्थान पर बातचीत की, यहाँ पर उनके साथ था, यहाँ पर उनके साथ सोया था, इसलिए मन्त्री लोग बड़े यत्न पूर्वक उस ग्राम से उन्हें लेकर चले गये राजा के चले जाने पर वह गाँव नक्षत्र और चन्द्रमा से रहित आकाश के समान सौन्दर्यहीन हो गया। तब मैं वहाँ से निकला हूँ। यह वृत्तान्त सुना कर ब्रह्मचारी चला जाता है योगन्धरायण भी राजकुमारी पद्मावती की आज्ञा लेकर चला जाता है।

द्वितीय अङ्क में पद्मावती और वासवदत्ता कन्दुक क्रीड़ा करती हुई दिखलाई पड़ती है। वासवदत्ता, पद्मावती के साथ हास–परिहास भी करती है, वह पद्मावती को महासेन की होने वाली बहू कहती है। वासवदत्ता बतलाती है कि उज्जयिनी के प्रद्योत नाम के राजा हैं। उनकी सेना के परिमाण से "महासेन" ऐसा नाम हुआ है। इसी समय चेटी कहती है कि राजकुमारी पद्मावती उसके साथ सम्बन्ध नहीं चाहती हैं यह गुणवान् तथा दयालु वत्सराज उदयन को चाहती है। वासवदत्ता मन में सोचती है कि इसी प्रकार मैं भी उन्मत्त हो गई थी। चेटी कहती है कि यदि राजा उदयन कुरूप हों तो? वासवदत्ता कहती है कि नहीं वे सुन्दर हैं। पद्मावती

वासवदत्ता से पूछती है कि आप कैसे जानती हैं कि वत्सराज उदयन सुन्दर है। वासवदत्ता कहती है कि उज्जयिनी के लोग ऐसा ही कहते हैं। उसी समय धात्री आती है और कहती है कि पद्मावती वत्सराज उदयन को दे दी गयी। अचानक इस प्रकार के समाचार को सुन कर वासवदत्ता के भावनाओं को आघात लगता है और सहसा यह कह देती है कि अच्छा नहीं हुआ, तत्क्षण अपने मनोवेगों पर काबू पा जाती है और जब धात्री पूछती है कि क्यों आप ऐसा कह रही है तो वह कहती है कि पहले वह अपने स्त्री के प्रति इतना आसक्त तथा उन्मत्त था, और अब विरक्त हो गया है। वासवदत्ता यह भी पूछती है कि क्या आर्यपुत्र ने स्वयं पद्मावती का वरण किया? धात्री बतलाती है कि नहीं वे किसी कार्यवश यहा आये थे, उनकी कला निपुणता, अवस्था और रूप को देख कर महाराज ने उन्हें पद्मावती को सौंपा। यह सुन कर वासवदत्ता मन में सोचती है कि आर्यपुत्र दोषी नहीं है। उसी समय एक चेटी आकर कहती है कि आर्या जल्दी करें आज ही मंगल मुहूर्त हैं। वासवदत्ता मन में सोचती है कि यह जैसे-जैसे जल्दबाजी करती हैं, वैसे-वैसे मेरे हृदय को अन्धा बना रही हैं। धात्री के साथ सभी चली जाती है।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में मानसिक द्वन्द्व में उलझी हुई चिन्तातुर वासवदत्ता दिखायी पड़ती है। वह मन ही मन अपने भाग्य तथा विधाता के विधान के सम्बन्ध में सोचती है। वह आज बहुत दुःखित है कि पतिदेव भी दूसरी के हो गये। मैं अभागिन आर्यपुत्र के देखने की अभिलाषा से अपने प्राणों को धारण किये हुए हूँ। मुझसे तो वह चकवी धन्य है जो परस्पर में बिछुड़ने पर नहीं जीती है। उसी समय फूलों को लिए हुए एक दासी आती है और कहती है कि आर्ये अवन्तिके, मैं बहुत समय से आप को ढूंढ रही हूँ क्योंकि हमारी मालकिन ने कहा है कि आप महाकुल में उत्पन्न, स्निग्धा और निपुण हैं इसलिए आप इस विवाह की माला को गूँथे। वासवदत्ता मन में सोचती है कि देव कितना निष्ठुर है कि माला भी मुझे ही गूँथनी पड़ रही है। वासवदत्ता दासी से पूछती है कि तुमने दामाद (आर्य-

पुत्र) को देखा है ? वह कैसे हैं ? दासी बतलाती है कि ऐसा सुन्दर पुरुष मैंने पहले कभी नही देखा था, वे धनुष और बाण से रहित कामदेव के समान है। वासवदत्ता माला गूँथती है और उसमें लगने वाले जड़ियो के सम्बन्ध में दासी से पूछती है। एक जड़ी के सम्बन्ध मे जब दासी बतलाती है कि यह सौभाग्य करने वाली है तो वासवदत्ता कहती है कि इसे मेरे तथा पद्मावती के लिए बार-बार गूँथना चाहिए, परन्तु जब दूसरी जड़ी के सम्बन्ध में दासी बतलाती है कि यह सौत का मर्दन करने वाली है तब वासवदत्ता कहती है कि इसे नहीं गूँथना चाहिए क्योंकि उसकी पत्नी मर गई हैं। उसी समय दूसरी दासी प्रवेश करती है और कहती है आर्या जल्दी करें। माला लेकर दोनो दासी चली जाती है। वासवदत्ता सोचती हैं आर्यपुत्र दूसरी के हो गये। शय्या पर लेट कर नीद आ जाती तो इस दुःख को कुछ भुलाती।

चतुर्थ अङ्क में प्रसन्नचित्त विदूषक रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है, वह उदयन के विवाह के सम्पन्न हो जाने की सूचना देता है। वह कहता है कि भाग्य से वत्सराज उदयन के अभीष्ट विवाह मङ्गल जो सुन्दर कार्य देख लिया। कौन जानता था कि राज्य अपहरण और वासवदत्ता दाह रूपी सङ्कट के भँवर में डूब कर फिर निकल आयेगें। इस समय महल में रहते हैं, अन्तःपुर की बावलियों में स्नान करते हैं। मीठे और कोमल खाद्य पदार्थो का सेवन करते है। अप्सरा के सहवास से रहित देवभूमि विशेष के निवास को मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। इसके अनन्तर पद्मावती और अवन्तिका वेश धारिणी वासवदत्ता शेफालिका गुच्छो का अवलोकन करने के लिए अन्तःपुर के बगीचे में आती है, उसके साथ में चेटी भी है। वासवदत्ता पद्मावती से पूछती है कि सखि ! आपको पति उदयन प्रिय है ? पद्मावती इस प्रश्न का उत्तर यह कह कर देती है कि आर्ये ! यह मैं नही जानती हूँ, परन्तु आर्यपुत्र के बिना उत्कण्ठित हो जाती हूँ। पद्मावती अवन्तिका वेश-धारणी वासवदत्ता से यह पूछती है कि जैसे मुझे आर्यपुत्र प्रिय हैं क्या उसी प्रकार वासवदत्ता को भी प्रिय है ? वासबदत्ता के मुख से स्वभावतः

यह निकल जाता है कि इससे भी अधिक प्रिय थे। पद्मावती तुरन्त पूछती है कि तुम्हें यह कैसे ज्ञात है? वासवदत्ता कहती है कि यदि ऐसा न होता तो वह आत्मीय जनों को क्यों छोड़तीं? वे इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर रहीं है उसी समय विदूषक के साथ उदयन वहां पहुँचते है। उसे देख कर पद्मावती तथा वासवदत्ता वासन्तीलता मण्डप में छिप जाती है। उदयन विदूषक के साथ वहीं शिलातल पर बैठ जाता है और वहाँ की छटा का अवलोकन करने लगता है। उसी समय विदूषक राजा से पूछता है कि आपको उस समय की महारानी वासवदत्ता तथा इस समय की पद्मावती इन दोनों में कौन ज्यादा प्रिय हैं? पहले तो वत्सराज उदयन इस प्रश्न का उत्तर देने में आनाकानी करते हैं परन्तु जब विदूषक यह विश्वास दिलाता है कि आप निःसङ्कोच बताएं मैं किसी से नहीं कहूँगा; तब वत्सराज उदयन कहते हैं कि रूप, गुण, उत्तम चरित्र और प्रीति विशेष से पद्मावती मुझे बहुत अच्छी लगती है परन्तु वह वासवदत्ता में आकृष्ट मेरे मन को आकृष्ट नहीं कर पाती है। यह सुन कर वासवदत्ता को परम प्रीति होती है और मन ही मन कहती है कि आपने इस बिरह रूप दुःख का पारितोषिक दे दिया और राजा की उदारता की पद्मावती भी प्रशंसा करती है। अब उदयन भी विदूषक से पूछता है कि तुम्हें अधिक प्रिय कौन है? विदूषक कहता है कि वासवदत्ता मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। पद्मावती भी युवती, सुन्दरी, क्रोध और अहङ्कार न करने वाली मृदुभाषी और उदार हैं। यह भी दूसरा महान् गुण है। वासवदत्ता आर्य वसन्तक कहाँ गये? ऐसा कह कर स्निग्ध भोज्य-पदार्थों से मुझे ढूंढ़ती थीं। राजा उदयन अनजाने में ही कहता है कि मै वासवदत्ता से कहूँगा। विदूषक उसे बताता है कि वासवदत्ता का बहुत पहले ही स्वर्गवास हो गया। उदयन को सहसा वासवदत्ता के मृत्यु का स्मरण हो जाता है और वह उसके वियोग में रोने लगता है। विदूषक उदयन से कहता है कि आप अपने को सम्भालें। राजा उदयन कहते हैं कि तुम मेरी अवस्था को नहीं जानते क्योंकि—दृढ़ मूल वाला प्रेम छोड़ना कठिन है। बारम्बार याद करने से दुःख नया हो जाता है। परन्तु

यह लोक स्थिति है, जो कि यहाँ पर आँसू बहा कर चित्त प्रियजन के ऋण से उन्मुक्त होकर नैर्मल्य को प्राप्त होता है। विदूषक उदयन के आँसुओं से आर्द्र मुख को धोने के लिए जल लेने चला जाता है, उसी समय उपयुक्त अवसर पाकर वासवदत्ता भी वहाँ से चली जाती है। पद्मावती अब उदयन के पास जाती है। उदयन बहाना बनाते हुए पद्मावती से कहता है कि शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान सफेद वायु से उड़ाये गये काश पुष्प के पराग से मेरे मुख में अश्रुपात हुआ है। राजा उदयन मन में सोचता है कि नव–विवाहिता यह युवती सच्ची बात सुन कर दुःखित होगी। यद्यपि यह बाला पूर्ण रूप से धैर्यवाली है परन्तु स्त्री स्वभाव से कातर होती है।

पञ्चम अङ्क में ज्ञात होता है कि पद्मावती शिर की वेदना से दुःखित हैं। यह समाचार पद्मिनिका मधुरिका से बतानी है और मधुरिका इस समाचार को वासवदत्ता को बताने जाती है। जिससे आकर वह मनोहर कहानियों के द्वारा राजकुमारी पद्मावती की शिरोवेदना को दूर करेंगी। पद्मिनिका इस समाचार को उदयन से बतलाने जाती है, मार्ग में विदूषक मिल जाता है, वह विदूषक को बताती है कि इस समय राजकुमारी पद्मावती सिर की वेदना से व्यथित हैं आप इस समाचार को राजा से निवेदन करें। विदूषक जाकर यह समाचार उदयन से कहता है और समुद्र गृह में जल्दी चलने के लिए कहता है। उदयन कहता है कि सौन्दर्य–सम्पत्ति और गुणों से युक्त प्रिया पद्मावती को पाकर मेरा पूर्व शोक कम हुआ था, परन्तु इस समाचार को सुन कर दुःख का अनुभव कर रहा हूँ। उदयन समुद्र गृह में जाता है और वहां जाकर देखता है कि पद्मावती अभी वहां नही आई है। वह वहीं शैय्या पर लेट कर पद्मावतो की प्रतीक्षा करने लगता है और विदूषक उसे कहानी सुनाता है। कहानी सुनते–सुनते उसे नींद आ जाती है और विदूषक भी प्रवारक (चादर) लेने के लिए वहां से चला जाता है। उसी समय अवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता वहां पर आती है वह उदयन को सोता देख कर समझती है कि पद्मावती ही सोयी है और वह भी उसके पार्श्व में लेट जाती है। राजा उदयन स्वप्न में वासवदत्ता का नाम लेकर

पुकारने लगते है तब वासवदत्ता को पता लगता है कि यह पद्मावती नहीं बल्कि उदयन हैं। वह वह कुछ समय तक वहां पर रहती है और स्वप्नावस्था में उदयन द्वारा किये गये प्रश्नो का उत्तर भी देती है और कोई देख न ले इस भय से वह वहां से चली जाती है। जाते समय वह वत्सराज उदयन की नीचे लटकती बाँह को ऊपर उठा देती है। उसके जाते ही उदयन की नींद टूट जाती है और वह स्वप्नावस्था में ही उसका पीछा करता है परन्तु पार्श्व भाग से ठोकर लगने के कारण गिर जाता है। उसी समय वहां विदूषक आ जाता है उदयन उसे बताता है कि वासवदत्ता जीवित है। वह शैय्या पर सोये हुए मुझे जगाकर चली गयी, वासवदत्ता जल गई ऐसा कथन कह कर रुमण्वान् नामक मन्त्री ने मुझे ठगा है। विदूषक कहता है कि यह असम्भव है। आपने उन्हें स्वप्न में देखा है, उदयन कहता है कि यह स्वप्न है तो न जागना भाग्य की बात है अथवा यह भ्रान्ति है तो बहुत समय तक मुझे भ्रान्ति ही होती रहे। उनके इस प्रकार के वार्तालाप के समय मगधराज का काञ्चुकीय वहां पर आता है और कहता है कि आपके मन्त्री रुमण्वान् बड़े सेनासमूह के साथ आरुणि को मारने के लिए आए हुए हैं और मगधराज की सेना भी विजय के अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैन्य के साथ उन्हीं का अनुगमन कर रही है। इसलिए आप तैयार हो जाइये। राजा उदयन कहते है अच्छी बात है मैं अभी समुद्र के समान युद्ध में भयङ्कर कर्म में निपुण उस आरुणि शत्रु को मारता हूँ।

षष्ठ अङ्क में महासेन का काञ्चुकीय रैभ्य तथा महारानी अङ्गारवती से भेजी गई आर्या वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाय उदयन से मिलने के लिए आती है। प्रतीहारी के द्वारा यह भी सूचना मिलती है कि किसी व्यक्ति ने नर्मदा नदी के किनारे, कुशो की झाड़ी में घोषवती नामक वीणा पायी थी। जिसकी ध्वनि को सुन कर महाराज उस व्यक्ति के पास गये और उससे वीणा ले लिए, और उस वीणा को लेकर वासवदत्ता को याद कर विलाप कर रहे हैं। राजा उदयन विदूषक से बात करते समय भी बहुत दुःखित हैं वह कहते हैं कि बहुत समय से सोये हुए मेरे अभिलाषा को

वीणा ने जगा दिया। जिसे घोषवती वीणा प्रिय थी, उस महारानी वासवदत्ता को नहीं देख रहा हूँ। उसी समय प्रतीहारी आकर उदयन को यह बताता है कि महासेन के यहां रैभ्य नामक काञ्चुकीय तथा वसुन्धरा नामक धात्री आपसे मिलने के लिए आये हैं। उदयन पद्मावती के साथ उनसे मिलता है। महासेन की महिषी अङ्गारवती का सन्देश सुनाते हुए धात्री वसुन्धरा कहती है कि महारानी कहती है 'मेरे और महासेन के लिए जैसे गोपाल और पालक हैं वैसे ही पहले ही सोचे गये आप दामाद हैं। इसलिए आप उज्जयिनी में लाये गये। आपको अग्नि के साक्ष्य बिना ही वीणा सिखाने के बहाने से कन्या दी गई। अपनी अधीरता के कारण विवाह संस्कार के पूर्व ही आप चले गये। तब हम लोगों ने चित्रफलक के द्वारा तुम दोनों की शादी कर दी। यह चित्रफलक आपके पास भेजा गया है, इसे देख कर आप धैर्य धारण करें। उस चित्र फलक को देख कर पद्मावती कहती है कि ऐसी आकृति वाली एक स्त्री मेरे यहां है जिसे एक ब्राह्मण ने अपनी बहन कह कर न्यास के रूप में मेरे यहां रखा था, उनके पति प्रवास में है इसलिए वह परपुरुष को नही देखती है। उदयन कहता है कि जब वह ब्राह्मण की बहन है तो निश्चित ही दूसरी स्त्री होगी क्योंकि संसार में परस्पर रूप की समानता देखी जाती है।

इसी समय अपना न्यास लौटाने ब्राह्मण (यौगन्धरायण) आ जाता है, वासवदत्ता वहां पर बुलायी जाती है, अवन्तिका नामधारिणी वासवदत्ता को देखते ही धात्री वसुन्धरा उसे पहचान जाती है और राजकुमारी वासवदत्ता कह कर सम्बोधित करती है। उसके बाद वासवदत्ता का घूंघट हटाया जाता है और सभी लोग उसे पहचान जाते हैं। वासवदत्ता को छिपाने के अपराध के कारण यौगन्धरायण महाराज उदयन के पैरों पर गिर कर अपराध क्षमा हेतु प्रार्थना करता है। राजा उदयन उसे उठाते हैं। पद्मावती भी वासवदत्ता के साथ सदाचार के व्यवहार का उल्लङ्घन करने के कारण उसके चरणों में गिर कर प्रणाम करती है। वासवदत्ता उसे उठा कर सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देती है और अपने को स्वयं

अपराधी कहती है। वत्सराज उदयन यौगन्धरायण से इस प्रपञ्च के रहस्य का कारण पूछते हैं, यौगन्धरायण बताता है कि—पुष्पक, भद्र आदि ज्योतिषियों ने कहा था कि "पद्मावती महाराज की रानी होगी" अतएव यह परिणय और मगधराज की सहायता से खोयी वत्सभूमि की प्राप्ति, दोनों ही कार्य सम्पन्न हो गये। यौगन्धरायण कहता है कि वासवदत्ता जीवित है यह सुसमाचार सुनाने के लिए काञ्चुकीय रैभ्य तथा धात्री वसुन्धरा को शीघ्र महासेन के पास लौट जाना चाहिए, परन्तु उदयन कहते हैं कि यह प्रिय संवाद सुनाने के लिए हम सभी लोग वासवदत्ता तथा पद्मावती के साथ चलेंगे। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण

इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' राजा उदयन के द्वारा स्वप्न मे वासवदत्ता के दर्शन तथा वार्तालाप पर आधारित है। रूपक के दस भेदों 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक नामक भेद के अन्तर्गत आता है। नाटक में घटित किसी विशेष घटना के आधार पर ही नाटक का नाम होना चाहिए—

"नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।"

(साहित्यदर्पण, ६।१४८)

प्रस्तुत नाटक के पञ्चम अङ्क में उदयन को यह सूचना मिलती है कि पद्मावती शीर्ष वेदना से पीड़ित होकर समुद्र गृह में है। वह उससे मिलने के लिए समुद्र गृह में जाता हैं परन्तु पद्मावती को वहां न पाकर उदयन वहीं पद्मावती की शैय्या पर बैठ जाता है और थोड़ी देर बाद नींद आने पर उसी शैय्या पर सो जाता है। इसी समय पद्मावती से मिलने के लिए वासवदत्ता भी वहा पर आती है और वह चादर ओढे उदयन को सोया देख कर समझती है कि पद्मावती सोयी है इसलिए वासवदत्ता भी उसके पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता और उससे बात करता है। वासवदत्ता उदयन को पहचान कर कुछ बात तो अवश्य करती

है परन्तु तुरन्त वहां से चली जाती है। राजा उदयन भी सहसा उठ कर उसके पीछे दौड़ता है परन्तु दरवाजे पर ठोकर लगने के कारण गिर जाता है। यह घटना बड़ी ही सरस, मार्मिक एवं हृदयावर्जक है।

महाकवि भास की उच्च कल्पना शक्ति प्रस्तुत नाटक में देखने को को मिलती है। एक व्यक्ति स्वप्नावस्था में बोल रहा है और दूसरा जाग्रत-अवस्था में उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा है कवि ने पद्मावती के शीर्ष वेदना के माध्यम से उदयन तथा वासवदत्ता का मिलन कराया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार नाटक का नामकरण 'पद्मावती—परिणय' अथवा 'उदयनोदय' होना चाहिए। परन्तु सरसता, मञ्जुलता एवं कल्पना की को विलक्षणता स्वप्न दृश्य में ही है जो इस नाटक का प्राण है। इसलिए कहा जा सकता है कि नाटक का प्रस्तुत नाम यथार्थ तथा सहृदयहृदयावर्जक होने से सार्थकता का प्रतिपादक है।

नाटक का आधार

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के समान 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कथा का आधार उदयन से सम्बन्धित लोक कथा है। कथा प्रसिद्ध यह है कि यौगन्धरायण ने उदयन को चक्रवर्ती सम्राट् बनाने के निमित्त वासवदत्ता दाह की झूठी अफवाह फैलाया और पद्मावती के साथ उदयन का परिणय करा दिया। परन्तु नाटककार महाकवि भास ने प्रचलित लोक—कथा में परिवर्तन किया है। नाटककार ने आरुणि से पदाक्रान्त कौशाम्बी की रक्षा के निमित्त वासवदत्ता—दाह की झूठी अफवाह का कथानक बनाया है। स्वप्न वाला दृश्य भी लोक कथा में प्रचलित नहीं है। इस प्रकार भास ने अपनी नवीनोद्भावना शक्ति के द्वारा प्रचलित लोक कथा को एक नया कलेवर प्रदान कर नाटक को स्थापित दिया है।

नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

महाकवि भास पात्रों के चरित्राङ्कन में सिद्ध हस्त हैं। इनके नाटकीय

पात्र नाटक मे भार स्वरूप न होकर नाटक कोजीवन्तता प्रदान करते हैं। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण द्रष्टव्य है—

उदयन

प्रस्तुत नाटक का नायक उदयन है। उसके चरित्र में अनुपम सौन्दर्य अद्वितीय कला, कोमल हृदय, अगाध प्रेम आदि गुणों का मञ्जुल समन्वय है। धीर ललित नायक के सभी गुण इसके चरित्र मे विद्यमान है। साहित्य-दर्पणकार के अनुसार धीर ललित नायक—निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्" होता है। ये सभी गुण उसमे है। उदयन के रूप की प्रशंसा सभी लोग समान रूप से करते है। द्वितीय अङ्क मे वासवदत्ता उसे दर्शनीय कहती है—("दर्शनीय एव" द्वितीय अङ्क) उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध में तो चेटी यहाँ तक कहती है कि इससे पहले मैं ऐसा पुरुष नहीं देखी थी—"आर्ये भाणामि तावत् नेदृशो दृष्टपूर्वं" (तृतीय अङ्क) तथा उसे धनुष-बाण रहित कामदेव के समान कहती है—'शक्यं भणितुं शरचाप-हीन कामदेवः इति।' (तृतीय अङ्क)

उदयन वत्सदेश का राजा है। वह वीणा वादन में इतना निपुण है कि उसकी प्रसिद्ध सर्वत्र फैली हुई है। वह वासवदत्ता से इतना अधिक प्रेम करता है कि उसके जलने का समाचार सुनने पर अपने प्राणोत्सर्ग के लिए उद्यत हो जाता है परन्तु उसके मन्त्री उसे रोकते हैं—

"राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनित सन्तापस्तस्मिन्ने-वाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।"

(प्रथम अङ्क)

उदयन के विरहावस्था का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी कहता है—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा॥ १।१३

अर्थात् इस समय राजा के समान (पत्नी के विरह दुःख को सहने में असमर्थ) चकवे नही है। श्रेष्ठ स्त्रियों से बिछुड़े हुए और भी (राम आदि भी) वैसे (उदयन के समान) नही है। वह स्त्री धन्य है जिसे पति उस तरह असाधारण प्रेम करता हो। पति के प्रेम से वह जलने पर भी नहीं जली है, कीर्ति शरीर से जीवित है।

उदयन के हृदय में पद्मावती के प्रति भी प्रेम है परन्तु वासवदत्ता की स्मृति उसे सदैव बनी रहती है। पद्मावती–परिणय के अनन्तर भी विदूषक के पूछने पर कहता है कि रूप–गुण से पद्मावती मुझे अच्छी लगती है परन्तु वासवदत्ता में आकृष्ट मेरे मन को वह आकृष्ट नही कर पा रही है। उदयन के हृदय की दुर्बलता पूरे नाटक में झलकती है वह वासवदत्ता के लिए हमेशा रोता–तड़पता है।

उदयन के चरित्र में प्रशासनिक क्षमता की कमजोरी झलकती है। वह बार–बार शत्रुओं के आक्रमण से पराजित होता है, राज्य का सम्पूर्ण भार मन्त्रियों के ऊपर छोड़ देता है। इस प्रकार राजा का प्रेम में उन्मुक्त होकर कि कर्तव्यविमूढ़ होना उचित नही है।

उदयन के चरित्र मे इन कमजोरियों के होते भी शौर्य भाव दिखलायी पड़ता है। पञ्चम अङ्क में जब उसे यह सूचना मिलती है कि आपके मन्त्री रुमण्वान् ने आरुणि पर आक्रमण कर दिया है और उनकी सहायता के लिए मगध नरेश की सेना तैयार है तो वह भी उद्यत हो जाता है और कहता है—

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ ५।१३

अर्थात् हाथी और घोड़ों से पार किये गये और बिखरे हुए बाण रूप भयङ्कर तरङ्गों से भययुक्त महान् समुद्र के समान युद्ध में भयङ्कर कर्म में निपुण उस आरुणि नाम के शत्रु को मारता हूँ।

वह बड़ों तथा गुरुजनों का सम्मान करता है। जब महासेन तथा

अङ्गारवती के यहां से आया ब्राह्मण एवं धात्री सन्देश सुनाते हैं तो वह 'क्या आज्ञा है' कह कर खड़ा हो जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उदयन के चरित्र में धीर ललित नायक के सभी गुण विद्यमान है परन्तु साथ ही उसे शौर्य तथा बड़ों के प्रति शिष्टाचार का गुण भी विद्यमान है।

वासवदत्ता

प्रस्तुत नाटक की नायिका वासवदत्ता है। उसके चरित्र मे उदारता, महत्ता, शील, संयम, धैर्य और प्रेम का सम्मिश्रण कूट-कूट कर भरा है। महाकवि भास ने वासवदत्ता के चरित्र-चित्रण के माध्यम से एक ऐसी भारतीय ललना का चित्रण किया है जो पतिव्रता रमणियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है। उसका सब कुछ पति पर ही अवलम्बित है, पति के सुख में ही अपना सुख तथा दुःख मे अपना दुःख मानती है पति के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग देती है। उदयन के प्रेम में आसक्ति है परन्तु वासवदत्ता का प्रेम त्याग, बलिदान एवं कर्त्तव्य बोध पर आश्रित है। वह उदयन के हित के लिए यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार कर कुछ समय के लिए उदयन से अलग हो जाती है। वासवदत्ता उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री बन्दी अवस्था में उदयन के रहते समय उसका परिचय हुआ और यही परिचय प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया, और प्रेम की अधीरता के कारण उदयन वासवदत्ता को लेकर पलायन कर जाता है जबकि महासेन दोनों को परिणय सूत्र में बांधने ही वाले थे।

वासवदत्ता गुण ग्राहिणी है वह दूसरे के गुणों की प्रशंसा दिल खोल कर करती है। वह पद्मावती के रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है—

अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।'

पद्मावती के यहां रहती हुई भी वह हमेशा अपने शील का परिचय देती है, उदयन के साथ पद्मावती का विवाह हो जाने पर न तो वह अपने

पर नाराज होती है और न ही पद्मावती से सौतियाडाह या (ईर्ष्या) करती है। जब उदयन का पद्मावती से विवाह होता है और उस समय विवाह की माला को वासवदत्ता को गूंथना पड़ता है तब भी वह अपने धैर्यशीलता को न छोड़ कर माला गूंथती है तथा देवता को निर्दय कहती है—

अहो ! अकरुणा खल्वीश्वराः ।

(तृतीय अङ्क)

वासवदत्ता धीरा वर्ग की नायिका है। सदैव अपने पति उदयन की मङ्गल कामना करती रहती है, तथा पति परायण धर्म का पालन करते हुए सदैव पर पुरुष दर्शन का निषेध करती है। वह उदयन के मुख से अपनी प्रशंसा सुन कर फूले न समाती है। यह सब कुछ होते हुए भी 'आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृतः' का स्मरण रह रह कर उसे खल जाता है, परन्तु विरहावस्था में कभी भी वह अपने कर्त्तव्य मार्ग से च्युत नहीं होती है।

पद्मावती

पद्मावती मगध नरेश दर्शक की बहन है। वह अत्यन्त सौन्दर्यशाली, उदार तथा विनम्र है। उसके रूप की प्रशंसा करती हुई वासवदत्ता कहती है—

"अभिजनानुरूप खल्वस्या रूपम् ।"

उदयन उसके रूप की प्रशंसा करते हुए कहता है—

"पद्मावती बहुमता मम रूप शील माधुर्यैः । ४।४

विदूषक तो उसमें सभी गुण देखता है। उसके शब्दों में तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कार, मधुर भाषिणी और उदार है—

"तत्र भवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया, (अकोपना) अनहङ्कारा, मधुर वाक् सदाक्षिण्या ।"

(चतुर्थ अङ्क)

उसके मधुर वाणी की प्रशंसा करती हुई वासवदत्ता कहती है—

"नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा।"

पद्मावती धर्मप्रिय, उदारमना तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागरूक रहने वाली है। वन में सभी के अभीष्ट को पूरा करने की घोषणा करती है। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखे जाने का प्रस्ताव रखता है और उस प्रस्ताव का स्वीकार करने में कञ्चुकी आना कानी करने लगता है तब अपने द्वारा की गई घोषणा का ध्यान मे रखती हुई वह तुरन्त उसे स्वीकार कर लेती है। वह वासवदत्ता को माता–पिता के समान अपने संरक्षण में रखती है और उसके प्रति व्यवहार सहेलियों जैसा करती है। वह हमेशा ध्यान रखती है कि वासवदत्ता को कोई कष्ट न हो। वासवदत्ता परपुरुष दर्शन का वर्जन करती है जिसके कारण वह उदयन के पास नही जाती है। वह संवेदनशील भी है। जब ब्रह्मचारी उदयन की शोकावस्था तथा मूर्छा का वर्णन करता है तो वह दुःखी हो जाती है।

पद्मावती बुद्धिमती नारी है। जब विदूषक उदयन से पूछता है कि वासवदत्ता और पद्मावती में कौन अधिक प्रिय हैं तो उदयन कहता है कि नहीं बताऊँगा, परन्तु जब विदूषक पुनः पूछता है तो वह कहतो है कि यह इतने से भी नहीं समझा। उसमें दम्भ जरा भी नहीं है, बल्कि वह विनयशीलता की प्रति मूर्ति है। जब उसे ज्ञात होता है कि यह वासवदत्ता है तो वह उनके प्रति किये गये अपने पूर्व व्यवहारों के लिए क्षमा मांगते हुए पैरों पर गिर पड़ती हैं।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि उदयन की दोनों पत्नियां आदर्श गुणों वाली हैं।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण उदयन का मन्त्री है। वह राजनीतिज्ञ, विवेकशील, तथा

व्यवहार कुशल है। वह कर्त्तव्यनिष्ठता की देदीप्यमान मूर्ति है। सम्पूर्ण नाटक का घटनाक्रम उसी को धुरी मान कर चल रहा है। उसके चरित्र में राज्य-भक्ति तथा स्वामी की भक्ति का भाव भरा है। राज्य के प्रति उदासीन, विलासी तथा कलाप्रिय राजा उदयन का उत्कर्ष एवं मङ्गल-निष्पादन सरल कार्य नहीं हैं। परन्तु वह अपने बुद्धि-कौशल के द्वारा अपनी योजना में सफलहोता है। वह केवल राजा की हा में हां मिलाने वाला नहीं बल्कि राजा के हित के निमित्त वासवदत्ता को अलग करने जैसा दुःसाहसिक कार्य भी कर बैठता है।

यौगन्धरायण बुद्धि-कौशल पूर्ण व्यक्ति है। उदयन को वासवदत्ता से अलग करना तथा पद्मावती के साथ उदयन का विवाह, मगध राज की सहायता से आरुणि द्वारा अपहृत अपने राज्य को वापस लेने आदि कार्य उसके बुद्धि-कौशल के ही परिचायक हैं। स्वामिभक्ति की भावना उसमें इतनी भरी हुई है कि ज्योतिषियों के मुख से उसने सुन रखा है कि पद्मावती उदयन की पत्नी होगी। इतने से ही वह उसे अपना मानने लगा है—

भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता।

जब खोयी हुई वत्स भूमि पर पुनः आधिपत्य कर लेता है और वासवदत्ता भी मिल जाती है तो वह उदयन के पैरों पर गिर कर क्षमा याचना करता है। जब उदयन इस सारे प्रपञ्च का कारण पूछते हैं तो वह कहता है कि कौशाम्बी की रक्षा, अपहृत राज्य की प्राप्ति तथा पद्मावती का विवाह आदि ही कारण है। धन्य है उसकी स्वामिभक्ति।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यौगन्धरायण राज्य का अत्यन्त विश्वसनीय, कर्मठ, प्रकृष्ट बुद्धिसम्पन्न, कूटनीति में पटु, कर्त्तव्यनिष्ठ, राज्यभक्त तथा स्वामभिक्त सेवक आदि गुणों से युक्त आदर्श अमात्य है।

विदूषक (वसन्तक)

विदूषक वत्सराज उदयन का मित्र है। यह नटखट, विनोदी, अल्पज्ञ तथा भोजनभट्ट है। उसे अपने भोजन का हमेशा ध्यान रहता है। वह

उदयन से कहता है कि स्निग्ध भोज्य पदार्थों के द्वारा वासवदत्ता मुझे ढूंढती थी—

"स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद् गच्छति वासबदत्ता कुत्र न खलु गत आर्य वसन्तक इति।"

मगध राज के यहां सुन्दर-सुन्दर खाद्य पदार्थों को खाने से वह बीमार पड़ जाता है।

विदूषक का ज्ञान कम है तथा उसकी स्मरण शक्ति भी कमजोर है। समुद्र गृह में वह उदयन को कहानी तो सुनाना प्रारम्भ करता है परन्तु उसे यह पता नही कि ब्रह्मदत्त नाम नगर का है या व्यक्ति का। दूसरो के प्रेम को समझना तथा उसे बढ़ावा देना तो उसे आता है।

समीक्षण

महाकवि भास के द्वारा विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' उनकी नाट्य कला की सर्वोत्तम परिणति है। नाटकीय संविधान, कथोपकथन, उनका पात्रों का सजीव चित्रण तथा चरित्राङ्कन, प्राकृतिक वर्णन, भाषा-शैली, रसोन्मेष आदि सभी दृष्टियो से यह नाटक पूर्ण सफल है। नाटक में स्वप्न वाला दृश्य तो नाटक का प्राण ही है। उस दृश्य को देख कर दर्शक भास के व्यक्तित्व एवं उच्च कल्पना शक्ति तथा कला कौशल से अभिभूत हुए बिना नही रह सकता। धीर ललित नायक उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक बन कर सहृदय-हृदय को आकृष्ट करता है तो उसी प्रेम की बलिवेदी पर न्योछावर होने वाली वासवदत्ता त्याग एवं तपस्या का उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक तरफ नीतिज्ञ यौगन्धरायण अपने बुद्धि कौशल के द्वारा लोगों को आश्चर्य चकित करता है तो दूसरी ओर पद्मावती अपने सहजता से लोगों को प्रभावित करती है। यह भास की चरित्र-चित्रण निपुणता का उत्कृष्ट निदर्शन है।

महाकवि भास भावुक कवि हैं। उनके लघु विस्तारी वाक्यों में जितना

सरस पद–विन्यास प्रभावित करता है, उतने ही भाव भी रसाप्लावित करते हैं। मानवहृदय की भाव दशाओं का चित्रण करने में महाकवि भास सिद्ध हस्त है। वे विरह व्याकुल उदयन की मनोव्यथा का वर्णन ब्रह्मचारी के मुख से करवाते हैं। देखिए—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १।१२

अर्थात्—

इस समय राजा के समान दुःखित चकवे भी नहीं है। श्रेष्ठ स्त्रियों से बिछुड़े हुए (राम आदि भी) उदयन के समान नहीं हैं। वह स्त्री धन्य है जिसे पति इस तरह प्रेम करता है। वह स्त्री जलने पर भी नहीं जली, अपने कीर्ति रूप से जीवित है।

इसी प्रकार का मार्मिक वर्णन उदयन स्वयं करता है। जब उसे घोषवती नामक वीणा मिल जाती है तब उसे वासवदत्ता का वियोग असह्य जान पड़ने लगता है। वह वीणा को उलाहना देते तथा अपनी मर्म दना व्यक्त करते हुए कहता है कि—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ ६।१

तथा—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥ ६।२

तथा—

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधित ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ६।३

अर्थात्

बहुत समय से सोये हुए मेरी अभिलाषा को वीणा ने जगा दिया। जिसे घोषवती वीणा प्रिय थी उस महारानी वासवदत्ता को नहीं देख रहा हूँ।

भास ने नाटक में प्राकृतिक दृश्यों का भी बड़े ही सुन्दर, सजीव हृदयावर्जक एवं मनोहारी ढंग से वर्णन किया गया है। तपोवन का वर्णन द्रष्टव्य है—

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिता ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १।१२

अर्थात्—

अपने स्थान के विश्वास से निर्भय मृग विश्वस्त होकर चर रहे हैं। सभी वृक्ष फूल और फलों से समृद्ध शाखाओं से युक्त होकर दया से रक्षित हैं। कपिला गायें बहुत दिखाई पड़ रही है। दिशाएं भी खेत वाली नहीं है अर्थात् चतुर्दिक् वन्य प्रदेश ही है। धूआं चारो तरफ बहुत फैला हुआ है, इसलिए निश्चय ही यह तपोवन है।

सन्ध्याकाल का वर्णन देखिए—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १।१६

अर्थात्—

पक्षिगण घोसलों में चले गये है। तपस्विगण स्नानार्थ जल में प्रविष्ट हो गये हैं। प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है। धुआं जंगल में फैल रहा है। दूर से गिरे हुए ये सूर्य भी किरणों को इकट्ठा कर रथ को मोड़ कर धीरे-धीरे अस्त पर्वत की चोटी में प्रवेश कर रहे हैं।

नाटक में छन्दों तथा अलङ्कारों का प्रयोग भी समुचित रूप में हुआ है। पात्रों का संवाद भी नाटक में भार स्वरूप न होकर कथानक की जीवंतता को बनाये रखता है। नाटक में प्रयुक्त छोटे-छोटे संवाद-वाक्य भी नाटक की अभिनेयता में वृद्धि करते है। नाटक में सर्वत्र सूक्तियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ये सूक्तियां इतनी हृदयग्राही, मार्मिक एवं सार्वभौम हैं कि पाठक के हृदय पर बरवस अपना स्थान बना लेती हैं। नाटक का प्रधान रस शृङ्गार है। उदयन और वासवदत्ता की दृष्टि से विप्रलम्भ शृङ्गार का ही प्राधान्य है। शृङ्गार के अतिरिक्त उत्साह तथा शिष्ट हास्य भी दिखलाई पड़ता है। मनुष्य की विभिन्न मनोदशाओं-चिन्ता, स्मृति, शङ्का, सम्भ्रम आदि का भी वर्णन प्रशस्त रूप से हुआ है। भाषा सरल तथा प्रवाहमयी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि भास का यह नाटक नाट्य कला की सभी दृष्टियों से सफल है तथा संस्कृत नाट्य जगत् का एक शिखर स्थानीय रत्न है।

स्वप्नवासवदत्ते पात्राणि

पुरुष-पात्र

राजा—वत्सदेश का राजा उदयन ।

यौगन्धरायण—उदयन का मुख्यमन्त्री ।

रुमण्वान्—उदयन का दूसरा मन्त्री ।

विदूषक—वसन्तक नामक उदयन का मित्र ।

ब्रह्मचारी—लावाणक ग्राम का निवासी छात्र ।

प्र० काञ्चुकीय—मगध के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।

द्वि० काञ्चुकीय—उज्जयिनी के राज प्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।

सम्भाषक, भट—पद्मावती के भृत्य ।

स्त्री-पात्र

वासवदत्ता—उदयन की प्रथम पत्नी, गुप्त वेश में यही अवन्तिका है ।

पद्मावती—मगधराज दर्शक की बहन, उदयन की द्वितीय पत्नी ।

तापसी—मगधराज के तपोवन में रहने वाली तपस्विनी ।

अङ्गारवती—प्रद्योत की रानी, वासवदत्ता की माता ।

मधुकरिका—पद्मावती की सखी एवं परिचारिका ।

पद्मिनिका— ,, ,, ,,

धात्री—पद्मावती की उपमाता ।

वसुन्धरा—वासवदत्ता की उपमाता (धात्री) ।

विजया—वत्सराज की प्रतिहारी ।



भास की प्रशस्तियां

(१) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
(बाणभट्टः हर्षचरित, १।१२)

(२) भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
(राजशेखर)

(३) सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥
(दण्डी : अवन्तिसुन्दरी ११)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ वन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिश्चन्द्रे च आनन्दे ॥]
(गउडवहो)

(५) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
(जयदेव : प्रसन्नराघव)

(६) प्रथितयशसां भाससोमिल्लकिपुत्रादीनां प्रबन्धान-
तिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ
बहुमानः ।
(कालिदासः मालविकाग्निमित्र)

(७) यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिला
तलमवलोक्य वत्सराजः ।
(नाटयदर्पण ले० रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र १२ वीं सदी)

(८) क्वचित्क्रीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।
(नाटयशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका)

श्लोकानुक्रमणिका



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

'गङ्गा'संस्कृत हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

नमो मङ्गलरूपाय प्रत्यूहव्यूहभेदिने ।
हेरम्बायैकदन्ताय भवानीसूनवे नमः ॥ १ ॥
स्वप्नवासवदत्तायाः भासनाम्नो महाकवेः ।
रचितायाः नवा टीका गङ्गानाम्नी विधीयते ॥ २ ॥

अथ तत्र कविकुलकीर्त्तिप्रकाशकरो महाकविर्भासः लोकानुरञ्जनाय 'वासवदत्ताख्यं' नाटकमारभमाणः स्थापनामुपस्थापयति नान्द्यन्ते तत इत्यादिना । तत्र तावन्नाटकं नाम—

'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥ १ ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः ।

(नाटक में होने वाले मङ्गलाचरण (नान्दी) के अनन्तर
सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—तत्काल उदय होते हुये चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त,

इत्यादिसाहित्यदर्पणोक्तलक्षणलक्षितं ज्ञेयम् । प्रारम्भे हि विघ्नविघातैकप्रयोजनं मङ्गलं नितरामावश्यकं नाटकीयरचनानियमप्राप्तं च कर्त्तव्यमुद्दिशन् कविर्नान्दीं सूचयति तत्र का नाम नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

नन्दयति हर्षयति देवानिति नान्दी सा च स्तुतिरूपेत्यर्थः । तस्या अन्ते अवसाने नान्दीविधानानन्तरमित्यर्थः । नान्द्यां च नेपथ्ये एवावसितायां ततः तस्मात्स्थलात् नेपथ्यादिति यावत् अथवा ततो नान्दीविधानानन्तराव्यवहितानन्तरकाल इति । तसिल्प्रत्ययस्य सार्वविभक्तिकत्वात् सप्तम्याश्रयणम् । कस्यात्र प्रवेश इत्याकाङ्क्षायामाह सूत्रधार इति सूत्रधारः प्रधाननटः । सूत्रं नाटकबीजं तद् धारयति वहति उपन्यस्यतीति व्याख्यानात् । तल्लक्षणं यथा—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम् । रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इहोदितः ॥ इति सूत्रयेद्वस्तु बीजं वा इत्युक्तदिशा प्रधानपात्रम् । तत्र मङ्गलं निबध्नन् ग्रन्थनिर्विघ्नसमाप्तिकामः कविः पादविन्यासकौशलेन सूत्रधारद्वारा पात्रोपक्षेपरूपं वस्त्वंशनिर्देशात्मकं मङ्गलं समाचरति उदयेति—

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वाम् पाताम् ॥ १ ॥

व्याख्या—उदयनवेति—उदयनवेन्दुसवर्णौ उदये उदयकाले यो नवो नूतनः बाल इति यावत् इन्दुः चन्द्रः तेन समानौ सदृशौ वर्णौ ययोस्तौ, आसवदत्ताबलौ आसवेन मद्येन दत्तम् उत्पादितं अबलं बलाभावो अलसता याभ्यामेवं भूतौ मद्यपानजनितशैथिल्यभाजौ पद्मावतीर्णपूर्णौ पद्मस्य कमलस्य अवतीर्णमवतारः तेन पूर्णौ, वसन्तकम्रौ वसन्त इव कम्रौ मनोहरौ वसन्त इव

मदिरापान से शिथिलता को प्राप्त, कमल के समान कोमल तथा वसन्त ऋतु के सदृश सौन्दर्यपूर्ण बलराम की भुजायें आप सभी सामाजिक जनों की रक्षा करें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग पश्यामि ।

नेपथ्ये)

शोभाकरावित्यर्थः । बलस्य बलरामस्य भुजौ बाहू त्वाम् सामाजिकवर्गम् पाताम् रक्षताम् ॥ १ ॥

अत्र कवेः पदरचनाचातुर्यविषया उदयनवासवदत्ता-पद्मावती-वसन्तकानां मुख्यपात्राणां सूचना दत्ता । मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।

आर्याच्छन्दः तल्लक्षणं यथा—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या । इति

इदानीं सूत्रधारः प्रधानपात्रनामधेयसूचनसहचरितं मङ्गलं निबध्य प्रकृतनाटकीयवस्तुसूचनोपक्रमं प्रतिजानान आह—एवमिति—आर्यमिश्रान् कुलशीलाद्यार्यगुणसम्पन्नान् सामाजिकान् । एवम् इत्थं निवेदयामि विज्ञापयामि । नाटकावलोकनकौतूहलेन समुपस्थितानां सामाजिकानां हृदयमभिधास्यमानविषयानुरञ्जयामीत्यर्थः । तदानीमेव नेपथ्ये कमपि शब्दविशेषमनुनिशम्य तदर्थं जानन्नपि अज्ञानमभिनयति अये इति आश्चर्याभिधानसूचकमव्ययपदमिदम् । किन्नु खलु किं कारणम् किं नामेदं वा । मयि सूत्रधारे विज्ञापनव्यग्रे निवेदनोन्मुखे । सामाजिकान् प्रति कथावस्तुविज्ञापयितुं मनसि कृतविचारे सतीत्यर्थः । शब्द इव श्रूयते कुतोऽपि कोऽपि ध्वनिरिवाकर्ण्यते । अङ्ग भोः पश्यामि जानामि दृशेर्ज्ञानार्थकत्वादयमर्थः । कुतः कीदृशोऽयं शब्द इति निश्चिनोमीत्यर्थः ।

आप सभी सामाजिक सज्जनों से मैं निवेदन करता हूँ । अरे ! यह मेरे निवेदन करने के लिए उद्यत होते ही यह शब्द जैसा सुनाई पड़ रहा है । अच्छा इसका पता लगाता हूँ ।

उस्सरह उस्सरह अय्या! उस्सरह। [उत्सरतोत्सरतार्याः! उत्सरत।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

नेपथ्ये शब्दाकाग्माह—उत्सरतेत्यादि—नेपथ्ये वेशपरिवर्त्तनस्थाने आर्याः श्रेष्ठाः उत्सरत अपसरत अस्मात्स्थानादिति शेषः। मध्येमार्गं भवद्भिः न स्थातव्यमित्युत्सारणकारणम्। तदेवाह भवतु विज्ञातमिति—

अन्वयः—स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः मगधराजस्य भृत्यैः तपोवनगतः सर्वः जनः धृष्टम् उत्सार्यते ॥ २ ॥

व्याख्या—भृत्यैरिति—स्निग्धैः स्नेहपूर्णैः आप्तैर्विश्वस्तैरित्यर्थः। कन्यानुगामिभिः कन्यायाः पद्मावत्याः कुमार्याः अनुगामिनः अनुचराः तैः। मगधराजस्य मगधदेशाधीश्वरस्य भृत्यैः सेवकैः भटैरिति यावत् तपोवनगतः तपोवने आश्रमे गतः प्राप्तः सर्वः निखिलः बालवृद्धादिः जनः मानवः धृष्टम् निःशङ्कं यथा स्यात्तथा उत्सार्यते दूरीक्रियते मध्यमार्गादिति शेषः ॥ २ ॥

उत्सारणाया धृष्टत्वकारणम् प्रभुनिदेशवर्तित्वमस्वातन्त्र्यं च भटानाम्। पद्मावतीसौकर्यपूर्वकप्रवेशार्थमुत्सारणं भटैः क्रियमाणं युज्यते तदर्थमेवायं शब्दः श्रूयमाणोऽस्तीत्याशयः सूत्रधारस्य। अनुष्टुप् वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।

हटिये हटिये महाशयगण! हटिये।

सूत्रधार—अच्छा मालूम हो गया। राजकुमारी पद्मावती के अनुसरण करने वाले मगधेश्वर के स्नेहयुक्त सेवक तपोवन में रहने वाले सभी लोगों को धृष्टतापूर्वक हटा रहे हैं ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(प्रविश्य)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः । उत्सरत ।]

निष्क्रान्त इति—भाविनं पात्रप्रवेशं संसूच्य सूत्रधारो रङ्गस्थलान्निर्गतोऽभूदिति भावः ।

स्थापनेति—प्रारप्स्यमानस्य कथावस्तुनः स्थापनात् प्रस्तावनापरपर्याया स्थापनेत्यभिधीयते । सा प्रस्तावनापरपर्याया । आमुखमपि एतस्या नामान्तरम् । तल्लक्षणं यथा—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः सलाप यत्र कुर्वते ॥ १ ॥
चित्रैः वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥ २ ॥

अन्यत्रापि—

विधेयैर्यथैव संकल्पो मुखतां प्रतिपद्यते ।
प्रधानस्य प्रबन्धस्य तथा प्रस्तावना मता ॥ २ ॥

उत्सारणं कुर्वतो भटद्वयस्य प्रवेशं प्रतिपादयति—प्रविश्येति भटौ योद्धारौ ।

(सूत्रधार जाता है)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

(दो सिपाहियों का प्रवेश)

दोनों सिपाही—हटो ! हटो ! भाइयो ! हटो ।

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिका-
वेषधारिणी वासवदत्ता च)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।

तत इति—उत्सारणवाक्यानन्तरम् । परिव्राजकवेषः परिव्राजकस्येव वेषो यस्य सः काषायवस्त्रधारिसंन्यासिसदृशवेषवानित्यर्थः । अवन्तिकावेषधारिणी अवन्तीदेशोद्भवया स्त्रिया सदृशं वेषं गृहीतवतीत्यर्थः । वासवदत्ता तन्नाम्नी प्रद्योतकन्या उदयनमहिषी प्रविशति ।

कर्णं दत्वेति—कर्णं शब्दानुसारिदिशोऽभिमुखं कृत्वा अवहितः सन्नित्यर्थः । पुनस्तच्छब्दश्रवणमभिनीयाह—कथमिति ; हन्त शान्तेऽस्मिन्नाश्रमपदे तपस्विनामुत्सारणमनुचितमिति भावः ।

अन्वयः—धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानार्हस्य वल्कलवतः जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भोः उत्सिक्तः विनयात् अपेत् पुरुषः बलैः भाग्यैः विस्मितः अयं कः निभृतम् इदं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ॥ ३ ॥

व्याख्या—धीरस्येति-धीरस्य गम्भीरस्य स्थिरचित्तस्य इन्द्रियसुखोपभोगरहितस्य आश्रमसंश्रितस्य आश्रमं तपोवनम् संश्रितस्य वसतः निवासं कुर्वतः वन्यैः अरण्यैः फलैः कन्दमूलादिभिरपीति शेषः तुष्टस्य सन्तुष्टस्य मानार्हस्य मानं सत्कारं तदर्हस्य तद्योग्यस्यादरणीयस्य वल्कलवतः वल्कलमस्यास्तीति वल्कलवान् तस्य वृक्षत्वक्परिवसानस्य जनस्य तापसलोकस्य

(तभी साधु वेषधारी यौगन्धरायण एवम् अवन्ती देश की
स्त्री का वेशधारण करने वाली वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगा कर) अरे क्यों ? यहाँ भी हटाया जा रहा है ?

आश्रम निवासी वन में कन्दमूल फलों से सन्तुष्ट, सम्मान के

उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥२॥

त्रासः कष्टम् समुत्पाद्यते उद्भाव्यते । भोः हे भटाः ! उत्सिक्तः गर्वितः विनयात् नम्रतायाः अपेतपुरुषः हीनो जनः समुद्धतभृत्यः चलैः चञ्चलैः अस्थिरैः परिवर्तिभिरित्यर्थः भाग्यैः ऐश्वर्यशालित्वरूपैः विस्मितः वि-विशेषेण स्मितः गर्वितः अयं कः को नाम प्रभुः निभृतम् शान्तम् इदं तपोवनम् तापसाश्रमम् आज्ञया आदेशेन ग्रामीकरोति अग्रामं ग्रामं करोतीति ग्रामीकरोति ग्रामरूपतां सम्पादयतीत्यर्थः । एष तु किं प्रभुः यः साम्प्रतमैश्वर्यमदेन आत्मानं विस्मृत्य मदान्धः सन्नस्मिन् सुशान्ते आश्रमपदे तपस्विनामुत्सारणरूपामनुचितामाज्ञां सम्पाद्याश्रमं दूषयतीति भावः । शार्दूलविक्रीडितंछन्दः । तल्लक्षणं यथा- सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २ ॥

तपस्विनामुत्सारणमनुचितं मन्यमाना तत्सोढुमशक्नुवती वासवदत्ता तादृशः पुरुषः कः इति जिज्ञासया वदति आर्ये इति भवति पूज्ये । आत्मानम् स्वम् । य इति तपस्विनामुत्सारणं धर्मविरुद्ध कार्यमत एतादृशानुचितकार्यकारी पुरुषः धर्मादात्मानं पातयतीत्यर्थः । तादृशोद्योगस्य पापफलकत्वात् । वक्तुकामा वक्तुं कामो यस्या सा वक्तुमभिलाषिणी नास्मि । धर्मात्प्रच्युतस्तादृशोत्सारणकारीति मदीयकथनस्य नायमभिप्रायः । किन्तु अयम् कदाचित्मानपि नोत्सारयेदिति शङ्कयैव कथयामीति भावः । भवतीति- अनिर्ज्ञातानि अविज्ञातानि दैवतानि देवा अपि अवधूयन्ते तिरस्क्रियन्ते । अपरिचितानां स्वरूपतोऽज्ञातानाम् देवानामप्यनादरो भवति भवत्याः का कथेत्यर्थः । धृतान्यवेषायाः भवत्याः स्वरूपतोऽज्ञानात् एतादृशोऽनादरः सम्भाव्यते इति भावः ।

योग्य, वल्कलधारी जनों में भय पैदा किया जा रहा है । भला ऐसा कौन है जिसके सेवक इतने उद्धत है और जो अभिमान के वशीभूत हो अपने अस्थिर भाग्यों पर घमण्ड कर रहा है तथा शान्त इस तपोवन को तपस्वियों के हटने की आज्ञा देते हुये गाँव जैसा बना रहा है ॥ २ ॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति । [आर्य ! न ह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि देवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभव । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

अय्येति-ममनपरिखेदादप्यधिक परिखिद्येऽहमधुनाऽमुनापमानेनेत्यर्थः । भुक्तोज्झित इति प्राग् भुक्तः पश्चादुज्झित इति अनुभूय परित्यक्त इति भावः । भवत्या हि पूर्वमयमुत्सारणाज्ञाप्रदानरूपो विषयः अनुभूतः साम्प्रतं कार्य-

---

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायण—आर्ये ! जो धर्ममार्ग से अपने को हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मैं ऐसा नहीं कहना चाहती । क्या मैं भी इसी तरह हटाई जाऊँगी ।

यौगन्धरायण—आर्ये ! अपरिचित होने पर देवता भी तिरस्कृत होते हैं तुम्हारी क्या कथा ?

वासवदत्ता—आर्य ! मुझे चलने का परिश्रम वैसा खेद उत्पन्न नहीं करता जैसा कि यह हटाये जाने का तिरस्कार ।

यौगन्धरायण—आपको तो यह विषय (हटा कर चलने जैसा) पहले

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ ४ ॥

विशेषेण प्रच्छादितस्वरूपया परित्यक्तः । अतः साम्प्रतमनाद्रियमाणेति चिन्तया नात्मावमावनीय इत्यर्थः ।

अन्वयः—पूर्वं त्वया अपि एवम् गतम् अभिमतम् आसीत् पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि । कालक्रमेण परिवर्त्तमाना जगतः भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति ॥ ४ ॥

व्याख्या—पूर्वमिति-पूर्वम् पूर्वस्मिन्काले स्वनगरावस्थानसमये उज्ज-यिन्यां कौशाम्ब्या वा त्वयापि एवम् एतादृशम् गतम् प्रस्थितम् मार्गे भटकर्तृको-त्सारणसहितमिति शेषः अभिमतम् अभीष्टम् आसीत् । पुनः भूयः भर्त्तुः अभिमतं शत्रुवशीकृतराज्यस्य उदयनस्य विजयेन सम्पत्स्यमानराज्यप्राप्तिरूपलक्षणेन श्लाध्यम् परिजनैः प्रशंसनीयं यथा स्यात्तथा गमिष्यसि यास्यसि । पूर्वं नगरे वसन्ती भवती राज्यसुखमनुभवन्ती परिजनाचरितसमुदाचारा स्वेच्छया यथा गतासीत्तथैवाग्रेऽपि पत्यौ विजयश्रिया समलङ्कृते सनीत्यमेव गमनसुखमनु-भविष्यसीति भावः । इदानीं कार्यगौरवाद् वेषान्तर स्वीकृतिरूपं दशा-विशेषमधिगता परिभवमात्मनः सम्भाव्य मा खेदमावहत्विति भावः तदेव

से भी अनुभूत है । किन्तु कार्य-गौरव के कारण आजकल यह छूट गया है । फिर भी इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।

पहले आपको भी इसी प्रकार (हटा कर चलने) से मार्ग-गमन अभीष्ट था । पति की विजय हो जाने पर सेवकों से श्लाघनीय हो भविष्य में पुनः भी उसी प्रकार गमन करेंगी । क्योंकि काल के हेर फेर से इस जगत् की परिवर्त्तनशील अदृष्ट परम्परा रथ के पहिये की अरों की भाँति ऊपर और नीचे के क्रम में बदलती रहती है ॥ ४ ॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

समर्थयत—कालक्रमेणेति कालक्रमेण समयानुसारं परिवर्त्तमाना विभिन्नरूपतां गच्छन्ती जगतो लोकस्य भाग्यपङ्क्तिः अदृष्टपरम्परा चक्रारपङ्क्तिः चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां पङ्क्तिः इव श्रेणिरिव गच्छति यथा चक्रगतानि अराणि रथगत्या उपर्यधो गच्छन्ति एवमेव जनस्य शुभान्यशुभानि चादृष्टगत्या समयानुसारम् विपरिवर्तन्ते इति भावः । अत्र पूर्वार्धप्रतिपादितस्य विशेषस्य उत्तरार्धप्रतिपादितेन सामान्येनार्थेन समर्थनादर्थान्तरन्यासः तल्लक्षणं

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ।

....तदार्थान्तरन्यासः । वसन्ततिलका वृत्तम् तल्लक्षणं यथा उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौ ग इति ॥ ४ ॥

उत्सरत दूरम् गच्छत ।

तत इति—तपस्विजनोत्सारण वारम् वारमाचरन्तौ अविवेकिनौ भटौ वारयिष्यन्: कञ्चुकीयस्य प्रवेशमाह—कञ्चुकीयः राज्ञो भृत्यविशेषः तल्लक्षणं यथा—

'ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते मताः ॥'

एष च राज्ञः सन्निधावन्तःपुरे वा वर्त्तमानो वेत्रधरो प्रायो यत्र तत्र नाटकेषु वृद्धरूप एवोपवर्ण्यते । सम्भषकः पूर्वोक्तयोरुत्सारयतोरेकतरस्य

दोनों सिपाही—हटो । लोगो हटो ।

(तदनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—सम्भषक ! मत हटाओ । मत हटाओ । देखो तुम राजा

परिहरतु भवान् नृपापवादं,
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

नाम । न खलु न खलु द्वौ नञौ निषेधदाढर्यबोधनार्थम् खलु निश्च-यार्थे । तपस्विजनोत्सरणमिदं सर्वथाऽनुचितम् । कार्यादस्माद्विरम । पश्य विचारय ।

अन्वयः—भवान् नृपापवादं परिहरतु । आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम् । मनस्विन एते नगरपरिभवान् विमोक्तु वनम् अभिगम्य वसन्ति ॥ ५ ॥

व्याख्या—परिहरत्विति–भवान् सम्भषकनामधेयः । नृपापवादम् नृपस्य अपवादस्तम् राजनिन्दाकारणम् । परिहरतु दूरीकरोतु । राज्ञि कलङ्कोप-पादयितुं न नाम भवतैवं चेष्टितव्यमित्यर्थः । अनुचितमिदं प्रवर्त्तमानमुत्सारण-कार्यम् । एतेन राजनिन्दा सम्भाव्यते अनौचित्यमेवाह आश्रमवासिषु तपस्वि-जनेषु परुषं रूक्षं क्रूरं वा वाक्यमिति शेषः न प्रयोज्यम् प्रयोक्तुं न युक्तम् । मनस्विनः प्रशस्तमानसाः एते तपस्विनः नगरपरिभवान् नगरसम्भाविता-नवमानान् विमोक्तुं परिहर्त्तुं वनम् अरण्यम् तपोवनरूपम् अभिगम्य सम्प्राप्य वसन्ति निवासं कुर्वन्ति । शान्तचित्ता एते नगरे सम्भावितेभ्योऽवमानेभ्य आत्मानं मोचयितुं तपोवनमाश्रिताः यद्यत्रापि तादृशी तिरस्क्रिया क्रियते चेत्तदा ते क्व गच्छेयुरिति विचार्य उत्सारणरूपेण परुषव्यवहारेण नैते कदर्थनीयाः । एतदनुचितकार्याचरणं न श्रेयस्करमिति गूढोऽर्थः । काव्यलिङ्गालङ्कारः— 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' । इति तल्लक्षणं । पुष्पिताग्रावृत्तम् तल्लक्षणं यथा—

की निन्दा मत कराओ । इन आश्रमवासियों से इस प्रकार का रूक्ष व्यवहार करना उचित नहीं । क्योंकि ये प्रशस्त मन वाले तपस्वी लोग नगर में होने वाले परिभव (अपमानों) को त्याग करने के लिये ही तो वन में आकर निवास करते हैं ॥ ५ ॥

उभौ—अय्य ! तह् । [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह् । [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

'अयुजिनयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ ५ ॥

उभाविति—द्वावपि भटौ तथा तेन प्रकारेण भवता यदुक्तं तदेव युक्तमिति तथैव कुर्वः । नृपापवादपरिहारार्थम् । गच्छावः इति भावः । निष्क्रान्तौ निर्गतौ ।

कञ्चुकीयोपदेशेन भटयोर्निर्गमनानन्तरं कञ्चुकीयस्य वैदुष्यं प्रशंसति यौगन्धरायणः हन्तेति—हन्त इति हर्षे । सविज्ञानम् विशिष्टज्ञानसहितम् । दर्शनम् ज्ञानं बुद्धिर्वा । वत्से सम्बोधनपदम् । बालिके तावद् वाक्यालङ्कारे । एनम् कञ्चुकिनम् । उपसर्पावः समीपं गच्छावः । यौगन्धरायणसूचितमुत्सर्पणं स्वीकुर्वती वासवदत्ताह—आर्येति । उत्सर्पणार्थमहं सन्नद्धैव । उपसृत्य समीपं गत्वा । भो महाशय । उत्सारणा । किं कृता केन कारणेन विहिता भोः तपस्विन् हे तापस ।

दोनों सिपाही—आर्य ! ठीक कहते हैं ।

(ऐसा कह दोनों सिपाही चले जाते हैं)

यौगन्धरायण—हर्ष का विषय है कि इस कञ्चुकीय की बुद्धि विज्ञान से परिपूर्ण है । तो बेटी ! इसके पास चलना चाहिये ।

वासवदत्ता—आर्य ! अच्छा !

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) भाई ! यह हटाना किस लिये है ?

कञ्चुकी—हे तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राज-

---

यौगन्धरायणः—आत्मगतम् (स्वगतम्) अयम् एष आलापः । आत्मगतमित्यस्य लक्षणं यथा –'अश्राव्यं स्वगतं मतम्' अश्रावणीयो स्वमानसीयो विचारः इत्यर्थः । खलु निश्चयार्थकम् । गुणवान् प्रशस्तगुणयुक्तः । श्लिष्यते । सम्बध्नाति । मदीयमिमं वेषं दृष्ट्वा एतेन प्रयुक्तं तपस्विपदं यद्यपि प्रशस्तगुणयुक्तमेव तथापि तादृशेन यथार्थ्यगुणेन परिचयाभावादयथार्थ्यसंन्यासिनो मे मनसि एतत्सम्बोधनमवकाशं न लभते । अत्र श्लिषेरात्मनेपदम् चिन्त्यम् । यद्वा कर्मकर्त्तरि तत्प्रयोगात् कथमपि समाधेयम् ।

भोः श्रूयतामिति–कञ्चुकीयस्य वाक्यमिदम् । भोः महाशय । यौगन्धरायणस्य कृते सम्बोधनमिदम् । श्रूयताम् श्रवणार्थं दत्तावधानेन भूयताम् । यदर्थमिदमुत्सारणं क्रियते इति शेषः । एषा पुरोवर्त्तमाना गुरुभिरभिहितनामधेयस्य गुरुभिः मातापित्रादिभिः अभिहितनामधेयस्य अभिहितं कथितं नामधेयं नाम यस्य तस्य । भगिनी स्वसा । नाम प्रसिद्धौ । नः अस्माकम् । महाराजमातरम दर्शकजननीम् । अनुज्ञाता आज्ञप्ता । राजगृहम् राजभवनम् । यास्यति गमिष्यति । आश्रमपदे आश्रमस्थाने वासः अभिप्रेतः

यौगन्धरायण—(आप ही आप) इसके द्वारा सम्बोधित तपस्विन् शब्द से किया गया यह वार्त्तालाप अवश्य ही आदरणीय है किन्तु अभ्यास न होने के कारण मेरे मन को अच्छा नही लगता ।

कञ्चुकी—महाशय सुनिये ! गुरुजनों के द्वारा जिनका नाम दर्शक रखा गया है जो हम लोगों के महाराज हैं, उन्ही की बहन ये पद्मावती हे । ये आश्रम में रहने वाली हमारे महाराज की माता महादेवी से मिल कर उनकी आज्ञा ले पुनः राजगृह (राज प्रासाद) मे लौट जायेंगी । किन्तु

गृहमेव यास्यति । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः । तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

उद्दिष्टः तत्र भवन्त इत्यग्रिमेण श्लोकेन योजनीयम् । दर्शकनाम्नोऽस्माकं महाराजस्य भगिनीयं पद्मावती नाम । सा च महाराजमातरम् सन्दर्श्य ततोऽनुज्ञां लब्ध्वा स्वकीयं राजभवनं गमिष्यति । तेन हेतुना अद्याश्रमे निवासं कर्त्तुमिच्छतीति भावः ।

अन्वयः—तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् तपोधनानि वनात् स्वैरम् नयन्तु । हि धर्मप्रिया नृपसुता धर्मपीडां न इच्छेत् । एतत् अस्याः कुल-व्रतम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—तीर्थेति—तद् भवन्तः तत् तस्मात् कारणात् भवन्तः तप-स्विनः तीर्थोदकानि तीर्थस्य नद्यादेरुदकानि जलानि । समिधः पलाशतरोः खण्डानि काष्ठानि । कुसुमानि पुष्पाणि । दर्भान् कुशान् । तपोधनानि तपसे साधन-भूतानि द्रव्याणि स्वैरं स्वच्छन्दं उपनयन्तु आनयन्तु । हि यस्मात्कारणात् धर्मप्रिया धर्मानुरागिणी नृपसुता राजपुत्री पद्मावती । तपस्विषु तपस्वि-जनेषु विषये । धर्मपीडां धर्मबाधां धर्मविघ्नं वा न इच्छेत् न

आज इनको इसी आश्रम में निवास करना अभीष्ट है—अतएव आप तपस्वीगण—

तीर्थजल, समिधायें, फूल और कुशा इन सभी तपस्या की सामग्रियों को जङ्गल से अपने इच्छानुसार ले आवें । राजपुत्री तपस्वियों के धर्म कर्म में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालना चाहतीं । यह उनका वंश-परम्परागत व्रत है ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

वाञ्छेत् । एतत् इदम् अस्याः पद्मावत्याः । कुलव्रतम् वंशानुष्ठानम् । अस्तीति शेषः । कुलक्रमागतं मुनिजनतपोऽभिरक्षणव्रतं पालयन्त्या धर्मेऽनुरागं वहन्त्याः पद्मावत्याः तापसजनतपोविघ्नोपरोधभूतोऽभिलाषो भवद्भिः पूरणीयस्तीर्थोदकाद्याहरणेनेत्यर्थः । काव्यलिङ्गालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् । एतयोर्लक्षणं प्रागुक्तमेव ॥ ६ ॥

कञ्चुकीयसूचितस्वरूपां पद्मावतीमालोच्य यौगन्धरायणः तत्स्वरूपं मनसा निर्दिशति एवमिति कञ्चुकीयेन यदेतदुत्सारण प्रतिपाद्यते तदेतत्सर्वथा सम्भाव्यते । एषा सेति—इयं हि स्वामिनो भर्त्तुरुदयनस्य भार्या भविष्यतीत्थं पुष्पकभद्रादिभिः आदेशिकैः दैवज्ञैः सिद्धपुरुषैः वा आदिष्टा संसूचिता राजमहिष्याः पदमनुभविष्यन्ती सेयं पद्मावती विद्यते इति संक्षिप्तोऽर्थः । ततः तस्मात्कारणात् ।

अन्वयः—प्रद्वेषः बहुमानं वा सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तृदाराभिलाषित्वात् मे अस्यां महती स्वता ॥ ७ ॥

व्याख्या—प्रद्वेषः द्वेषातिशयः, बहुमानः अत्यादरः वा सङ्कल्पात् मानसो-

---

यौगन्धरायण—(आप ही आप) ऐसा । तो यही मगधेश्वर की राजकुमारी पद्मावती हैं, जिन्हें पुष्पक एवं भद्र प्रभृति सिद्धों ने या ज्योतिषियों ने 'ये महाराज उदयन की महारानी होंगी' ऐसी घोषणा की है । इस कारण—

किसी के प्रति द्वेष अथवा अनुराग मन के सङ्कल्प (भावना) द्वारा

वासवदत्ता—(स्वगतम्) **राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ ।** [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च ।)

त्पन्नाद्भावात् उपजायते उद्भवति । भर्तृदाराभिलाषित्वात् भर्त्तुः स्वामिनः उदयनस्य दारा भर्तृदारा इत्यभिलाषः स्पृहा अस्यामस्तीति तस्य भावस्त स्मात् 'मम स्वामिनो भार्या इयं भूयादिति स्पृहाशालित्वात् मे मम यौगन्धरायणस्य अस्यां पुरोदृश्यमानायां पद्मावत्याम् महती स्वता महती आत्मीयता । यस्य पुरुषस्य चित्ते यद्विषये यादृशो भाव उत्पद्यते स तद्विषये तद्भावानुसारेणैव तं द्वेष्टि बहुमन्यते वेति नियमानुसारेण मम मनसि पद्मावतीं प्रति इयं राजमहिषी भवतु' इति भर्तृदाराभिलाषित्वात् राजमहिषीत्वकारणेन महती प्रीतिः सम्पद्यते इति भावः ॥ ७ ॥

कञ्चुकीयसूचितं पद्मावत्याः परिचयं श्रुत्वा वासवदत्ता मनसि चिन्तयति—राजदारिका राजकुमारी । अत्र अस्यां पद्मावत्याम् भगिनिकास्नेहः भगिन्येव भगिनिका तस्याः स्नेहः भगिनीतुल्यः स्नेहः राजकुमार्या वासवदत्तायाः पद्मावत्यां राजकुमार्यां भगिनीप्रेम सम्भवत्येवेति तुल्यता । अस्यां मे भगिनीप्रेमापि वर्त्तते तदर्थमादरविशेषो ममेति वासवदत्तोक्तेरभिप्रायः ।

साम्प्रतं पद्मावत्या आश्रमप्रवेशमाह—ततः प्रविशतीति । सपरिवारा

उत्पन्न होता है । इसीलिये हमारे स्वामी उदयन की धर्मपत्नी होंगी इस प्रकार की अभिलाषा करने से इनमें मेरी अधिक आत्मीयता हो रही है ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—(आप ही आप) 'राजकुमारी' यह शब्द सुन कर इसमें बहन जैसा स्नेह मुझे उत्पन्न हो रहा है ।

(इतने में पद्मावती सखियों एवं प्रधान दासी के साथ प्रवेश करती हैं)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु। [एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु।]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी।)

तापसी—साअदं राअदारिआए। [स्वागतं राजदारिकायाः]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ। अभिजणाणुरूवं खु से रूवं। [इयं सा राजदारिका। अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्]

परिवारेण सहिता सपरिवारा। चेटी दासी। यद्यपि चेटयपि परिवारान्तर्गता तथापि प्रधानपरिचारिकाबोधनार्थं चेटीपदं पृथक् उपात्तम्। स्वामिन्याः मार्गप्रदर्शनरूपं चेटयाः प्रधानकर्त्तव्यं निर्दिशन्नाह एत्वेत्विति आगच्छतु आगच्छतु। भर्तृदारिका राजकुमारी। राजकुमारी आगच्छतु दृश्यमानेऽस्मिन्नाश्रमपदे प्रविशत्वित्यर्थः। प्रकृतोपयोगिनमुपविष्टायास्तापस्याः प्रवेशं सूचयति तत इत्यादि। राजकुमार्याः पद्मावत्या आगमने वृद्धायाः तापस्याः अभ्युत्थानाद्याचारप्रदर्शनमनुचितमित्याह—उपविष्टेति। पद्मावतीकृतं शुभागमनमभिनन्दन्ती तापस्याह—स्वागतमिति स्वागतम् शुभागमनम्। पद्मावत्याः सुरूपतां दृष्ट्वा वासवदत्तायाः हृद्गतं भावं संसूचयति कविः इयमिति—इयम् समीपवर्त्तिनी। सा प्रसिद्धा राजदारिका। अभिजनानुरूपम् अभिजनस्य अनुरूपम् वंशसदृशम्। खलु निश्चयेन। रूपम् सौन्दर्यम्। यथास्याः कुलं

दासी—आइये! आइये! राजकुमारी। इस आश्रम में प्रवेश कीजिये।

(बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत है।

वासवदत्ता—(आप ही आप) यह वही राजकुमारी हैं। इनका सौन्दर्य भी कुल के अनुरूप ही है

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अहिदिजणस्स सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथिजनस्य स्वकं गेहम् ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूव एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

प्रशस्तम् तथास्या रूपमपि प्रशंसार्हं भवतीति भावः । तापसीमुद्दिश्य आर्ये श्रेष्ठे पूजनीये वन्दे नमस्करोमि इयं पद्मावती तत्र भवतीं तापसीमुद्दिश्य नमस्करोतीति भावः । चिरमिति चिरञ्जीव दीर्घायुर्भव । इयं हि कृतप्रणामां पद्मावतीं प्रति आशीर्वचनं तापस्याः । पुनः अतिथियोग्यसत्कारप्रदर्शनार्थं कथयति प्रविशेत्यादि । हर्षार्थं प्रविशपदे द्विरुक्तिः । जाते वत्से । स्वकं गेहम् आत्मगेहसदृशम् । चिरायुर्भव स्वगृहनिर्विशेषे अस्मिन्तपोवने प्रवेशं कुरु इति तापसीवाक्यार्थः ।

भवतु भवतु अस्तु अस्तु । उपचारप्रदर्शनं नावश्यकमिति भावः । अनेन बहुमानवचनेन अनेनाधिकसत्कारवाक्येन । अनुगृहीता अनुग्रहयुक्ता । पद्मावतीं दृष्ट्वा वासवदत्ता स्वमनसि प्रशंसति—न हीत्यादि रूपम् एव सौन्दर्यमात्रम् न हि । वाक् वाणी अपि । न केवलं रूपमस्याः मनोहरम् किन्तु वचन—

पद्मावती—आर्ये ! मैं अभिवादन करती हूँ ।

तापसी—चिरञ्जीव ! आओ बेटी आओ । तपोवन तो अतिथियों का अपना घर है ।

पद्मावती—'अच्छा ! अच्छा ! आर्ये ! मैं विश्वस्त हूँ । आपके इस सत्कारयुक्त वचन से अनुगृहीत हो गई ।

वासवदत्ता—(आप ही आप) इनका केवल सौन्दर्य ही प्रशस्त नहीं वाणी भी मधुर है ।

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

चेटी—अस्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि। [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणीआ दाणि संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता।]

मप्येतदीयं प्रशंसार्हमिति भावः। इदानीं पद्मावतीविवाहौपयिकं प्रकृत्यर्थमवतारयितुमिच्छन् कविस्तापसीमुखेन चेटीं प्रति प्रश्नरूपेण प्रस्तौति—भद्रे इति–भद्रे कल्याणि ! इमाम् पुरोदृश्यमानाम्। तावद् वाक्यालङ्कारे। भद्रमुखस्य कल्याणमुखस्य प्रियदर्शनस्य। महाराजदर्शकस्येति भावः। भगिनिकाम् अनुकम्पार्हां पद्मावतीमित्यर्थः। न वरयति पत्नीत्वेन न इच्छति किमिति काकुः। केनचिद्राज्ञा सह पद्मावत्याः विवाहसम्बन्धविषयो वार्तालापः न प्रचलति किम्। चेटी उत्तरयति–अस्तीति उज्जयिन्याः तन्नामनगर्याः। दारकस्यपुत्रस्य। कारणात् हेतोः। दूतसम्पातम् दूतः सन्देशहरस्तस्य सम्पातम् सम्प्रेषणम्। करोति सम्पादयति। स्वपुत्रेण सह पद्मावत्याः विवाहसम्बन्धं स्थापयितुं स दूतप्रेषणं करोतीति भावः। प्रद्योतराजपुत्रेण सह सम्पत्स्यमानं विवाहसम्बन्धमनुमोदमाना वासवदत्ता स्वमनस्याह। भवतु भव-

---

तापसी—कल्याणि ! क्या शुभ आकृति वाले महाराज दर्शक की इन बहन को कोई राजा वरण नहीं करता ?

दासी—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र के लिये दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा अच्छा ! यह तो अब आत्मीय हो गई।

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

पद्मावती—अय्य! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं? अभिप्पेदप्पदाणेन तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति। [आर्य! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम्? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति?]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या। भो भोः आश्रमवासिनस्तप

त्विति—हर्षसूचनार्थं द्विरुक्तिः। एषा पद्मावती। आत्मीया स्वकीया। भ्रातृसम्बन्धस्य भावित्वादिति शेषः। पूर्वोक्तं चेटीवचो निशम्य सानन्दं तापस्याह—अर्हेति अर्हा योग्या। उभे द्वे राजकुले दर्शकप्रद्योतवंशौ। महत्तरे अतिप्रशंसनीयतरे। इति श्रूयते आकर्ण्यते। श्रवणपथ गच्छतीति भावः। निजोद्वाहप्रसङ्गश्रवणेन सञ्जातलज्जा पद्मावती तापसीचेट्योः प्रचलित वार्त्तालापमपवार्य निजागमनप्रयोजनं प्रस्तुत्य कञ्चुकीयम् प्रति कथयति आर्य इति। मुनिजनः तापसजनः। आत्मानम् स्वम्। अनुग्रहीतुम् अनुग्रहीतां कर्त्तुम्। अभिप्रेतप्रदानेन अभीष्टपदार्थवितरणेन। उपनिमन्त्र्यताम् निमन्त्रितः क्रियताम्। तपस्विजनं स्वस्वाभीप्सितार्थकथने प्रवर्त्तयतु भवान्। अहमात्मानमनुग्रहीतुम् तेषामभीष्टवितरण करिष्यामीति भावः। पद्मावतीवचोऽनुसारं कञ्चुकीयस्य प्रवृत्ति तदुद्योगं च प्रकटयति कविः—यदभिप्रेतमित्यादि। भवत्या

तापसी—इस राजकुमारी की इस प्रकार की आकृति अधिक आदर के योग्य है। दोनों ही राजवंश प्रशस्त हैं ऐसा सुना जाता है।

पद्मावती—आर्य! क्या आपने किसी ऐसे तपस्वी को देखा जो मेरे द्वारा दी गई वस्तु को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करे। मुझे तपविजनाभीष्ट वस्तु दान करनी है। अतः आप उन तपस्विजनों को आमन्त्रित करें कि यहाँ पर-कौन क्या चाहता है।

कञ्चुकी—आपकी जैसी इच्छा है वैसा ही करूंगा। हे हे आश्रम

स्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।

भर्तृदारिकया अभिप्रेतम् अभीष्टम्। शृण्वन्तु आकर्णयन्तु। अत्र भवती माननीया राजपुत्री। विस्रम्भेण विश्वासेन। उत्पादितविस्रम्भा जनितविश्वासा। धर्मार्थम् पुण्याचरणार्थम्। अर्थेन दातव्यवस्तुरूपेण हेतुना। उपमनिमन्त्रयते उपनिमन्त्रणं करोति। आश्रमप्रवेशसमये तापस्या समाचरितेन पूर्वेण सत्कारेण जातविश्वासा राजकुमारी पद्मावती भवन्मनोरथम् पूरयितुं धर्माचरणबुद्ध्या भवतस्तपोधनान् निजाभिलषितप्रकाशनाय प्रवर्त्तयति। अतः स्वाभिलाषं प्रकटयितुं प्रसीदन्तु भवन्त इति।

अन्वयः—कस्य कलशेन अर्थः ? कः यथानिश्चितं वासः मृगयते ? दीक्षां पारितवान् (कः) पुनः गुरोः यद् देयं भवेत् किम् इच्छति ? इह धर्माभिरामप्रिया नृपजा आत्मानुग्रहम् इच्छति। यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु। अद्य कस्य किं दीयताम् ? ॥ ८ ॥

व्याख्या—कस्यार्थं इति—कस्य तपस्विनः कलशेन घटेन अर्थः प्रयोजनं वर्त्तते इति शेषः। कः तपस्वी यथानिश्चितम् स्वमनोऽनुकूलम् आश्रमपदानुरूपमिति शेषः। वासो वस्त्रं मृगयते अन्विष्यति। कामयते। दीक्षाम् अध्ययनव्रतम् पारितवान् समापितवान् कः स्नातक इति शेषः। पुनः भूयः गुरोः आचार्याय यद् देयम् दातव्यं भवेत् स्यात् तादृशं किं वस्तु इच्छति

निवासी तपस्विजनों ! आप लोग सुनिये सुनिये। यहाँ माननीया मगध राजकुमारी आप लोगों के द्वारा किये गये स्वागत से विश्वस्त होकर अभीष्ट वस्तु के दान द्वारा धर्मोपार्जन के लिये आप लोगों को आमन्त्रित कर रही है।

कौन कलश चाहता है ? कौन सा तपस्वी अपने निश्चय के अनुसार वस्त्र

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः। (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी।

वाञ्छति। समापिताध्ययनकृत्यः कस्तपस्वी गुरवे निवेदनीयं गुरुदक्षिणारूपं कियद् द्रव्यमभिलषति? इह अस्मिन्नाश्रमे धर्माभिरामप्रिया धर्मे अभिरामः अभिरुचिः येषां ते धर्माभिरामाः ते प्रियाः यस्याः सा धर्माभिरामप्रिया प्रियधार्मिकजना इयं राजकुमारी आत्मानुग्रहम् स्वात्मनि अनुकम्पाम् इच्छति कामयते। तापसाभीष्टवितरणेनेति शेषः। अतः यस्य तपस्विनः यद् वस्तु समीप्सितम् समभीष्टम् अस्ति। तद् वस्तु वदतु कथयतु। अद्य अस्मिन्दिने कस्य कस्मै जनायेति शेषः। किम् दीयताम् किं वितीर्यताम्। भवन्तः स्वाभिलषितं निःशङ्कं ब्रुवन्तु। भवदर्थश्रवणानन्तरमियमात्मानमनुग्रहीतुकामाभीष्टं निनरिष्यति। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। लक्षणं तु पूर्वोक्तम् ॥ ८ ॥

उपर्युक्तघोषणां श्रुत्वा लब्धहर्षो यौगन्धरायणः कथयति हन्तेति प्रकाशमित्यनन्तरोक्तेर्वाक्यमिदमात्मगतत्वेनैव प्रयुक्तमवगन्तव्यम्। हन्त ! हर्षे। उपायः युक्तिः मार्गः दृष्टः अवलोकितः। उपस्थितोऽसौ वासवदत्तानिक्षेपयोग्योऽवसर इत्यर्थः। प्रकाशम् सर्वजनश्रावणीयम्। तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

चाहता है, ऐसा कौन स्नातक है जिसने विधिपूर्वक अपनी शिक्षा समाप्त कर ली है और अब अपने गुरु को दक्षिणा में देने के योग्य उसे किस वस्तु की आवश्यकता है? इस तपोवन में धार्मिकों के प्रति प्रीति रखने वाली राजकुमारी अपने ऊपर तपस्वियों का अनुग्रह चाहती है। अतः जिसे जो अभीष्ट हो उसे कहे कि आज किसे क्या दिया जाय ॥ ८ ॥

यौगन्धरायण—(मन में) अहा ! उपाय मिल गया। (प्रकट रूप में) महोदय ! मैं अर्थी (याचक) हूँ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं। [दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।]

तापसी—सन्तुट्ठतवस्विजणं इदं अस्समपद। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं। [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।]

काञ्चुकीयः—भो किं क्रियताम् ।

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्' इति । भोः कञ्चुकीयकृते सम्बोधनमिदम् । अहमर्थी याचकः ।

सौभाग्यादुपस्थितमर्थिनं दृष्ट्वा पद्मावती कथयति दिष्ट्येति—अर्थिनः प्राप्त्या तपोवनेऽस्मिन्ममागमनमिदमिदानीं सार्थकमभूदित्यर्थः । आश्रमस्थेषु तापसेषु कमप्यर्थिनमनुपलभमाना तापसी ब्रवीति सन्तुष्टमित्यादि—इदमाश्रमपदम् एतत्तपोवनं सन्तुष्टतपस्विजनम् सन्तुष्टस्तपस्विजनो यत्रैतादृशं वर्त्तते। आश्रमस्था इमे केऽपि किमपि नार्थयन्ते अनेन याचकेन आगन्तुकेन देशान्तरादागतेन भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः ब्रवीति—भो इति किं क्रियताम् किं विधीयताम् ? किं भवतोऽभिमतमस्माभिः साध्यतामिति यौगन्धरायणमर्थिनं प्रति काञ्चुकीयस्य प्रश्नः ।

स्वार्थं कथयति यौगन्धरायणः इयमिति इयं मत्समीप वर्तिनी वासवदत्ता

पद्मावती—भाग्य से मेरा इस तपोवन में आना सफल हुआ ।

तापसी—इस आश्रम के रहनेवाले सभी तपस्वी सन्तुष्ट हैं। यह (मागने वाला) कोई आगन्तुक होगा ।

कञ्चुकी—महाशय ! तो आपकी क्या सेवा की जाय ?

यौगन्धरायण—यह हमारी बहन है। इस समय इसके पति विदेश

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः :

मे स्वसा मे भगिनी वर्त्तते। प्रोषितभर्तृकाम् प्रोषितः भर्त्ता यस्यास्ताम् प्रवासोषितपतिकाम्। इमां मत्स्वसारम् अत्र भवत्या माननीयया राजकुमार्या भवत्या पद्मावत्या कञ्चित्कालम् किञ्चित्कालपर्यन्तम्। परिपाल्यमानाम् संरक्ष्यमाणाम्। इच्छामि वाञ्छामि। देशान्तरगतस्य पत्युर्वियोगमनुभवन्तीं दीनां ममैतां भगिनीम् किञ्चित्कालपर्यन्तं भवत्याः समीपे न्यासरूपेण स्थापयितुमहमिच्छामीति भावः। तदेवाग्रे स्पष्टयति—

अन्वयः—(मम) अर्थैः न एव, भोगैः अपि नैव, वस्त्रैः (अपि) न कार्यम्। अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नो न। धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयं कन्या मे भगिन्याः चरित्रं रक्षितुं शक्ता ॥ ९ ॥

व्याख्या—कार्यमिति–ममेति औचित्यादध्याहरणीयम्। मम यौगन्धरायणस्येत्यर्थः। अर्थैः द्रव्यैः हिरण्यप्रभृतिधनैः। नैव कार्यम् नैव प्रयोजनम्। भोगैः कलशादिभोगपदार्थैरपि न कार्यमिति योज्यम्। वस्त्रैः वसनैः परिधानयोग्यैः न कार्यमिति। अर्थभोगवस्त्रेषु मम नाभिलाष इत्यर्थः। अहं वृत्तिहेतोः जीविकार्थम् काषायम् कषायेण रक्तं वस्त्रं यत् परिव्राजकलिङ्गम् न प्रपन्नः नाङ्गीकृतवान्। एवं तत्तद्धनादिपदार्थेषु स्वस्पृहां निषिध्य पद्मावत्यां स्वाभिमतार्थसिद्धियोग्यतां प्रदर्शयति धीरेति धीरा पण्डिता धैर्यशालिनी वा दृष्टधर्मप्रचारा दृष्टः परिज्ञातः धर्मस्य सत्कर्मणः प्रचारः प्रख्यापनम् यस्याः सा। इयं पुरोदृश्यमाना कन्या कुमारी पद्मावती मे मम भगिन्याः स्वसुः अवन्तिकावेषधारिणीवासवदत्तायाः चरित्रं शीलम् रक्षितुं त्रातुं शक्ता समर्था

गये हुये हैं। इनको कुछ काल पर्यन्त तत्रभवती राजकुमारी अपने संरक्षण में रखें। मैं यही चाहता हूँ। क्योंकि—

न मुझे धन से कोई प्रयोजन है, न भोग से और न वस्त्र से काम है। मैंने जीविका के लिये गेरुआ वस्त्र धारण नहीं किया है (इसलिये जीविका भी नहीं चाहता) किन्तु ये मगध राजकुमारी विदुषी तथा धर्मात्मा हैं इसलिये

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्य योगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कर्म ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

अस्तीति शेषः । यतः कारणादियं विदुषी धर्मप्रचारे बद्धादरा राजकुमारी च अतो मद्भगिन्याश्चरितं रक्षितुं समर्था एतस्मात्कारणादहमत्र भवत्या पद्मावत्याः सन्निधौ एनां निक्षेप्तुमिच्छामि अर्थैः कलशवस्त्रादिभिश्च मे प्रयोजनं नास्ति । पद्मावत्याः निक्षेपरक्षणक्षमत्वस्य समर्थनादत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वैश्वदेवी नामकं छन्दः । तल्लक्षणं यथा—पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ इति ।

पद्मावत्याः समीपे स्वात्मनिक्षेपरूपं यौगन्धरायणोपस्थापितं प्रस्तावं श्रुत्वा वासवदत्ता स्वगतं वितर्कयति हमिति ।

हमिति प्रश्ने आर्ययौगन्धरायण इह मां निक्षेप्तुकामः निक्षेप्तुं कामो यस्य सः । किमत्र पद्मावत्याः सन्निधौ आर्ययौगन्धरायणः मां निक्षेप्तुमिच्छति भवतु निक्षेपोऽपि ममास्तु । अविचार्य अविमृश्य क्रमं पादविन्यासम् न करिष्यति न विधास्यति । मदीयनिक्षेपरूपेऽस्मिन् विषये आर्ययौगन्धरायणः अविचार्य न कदापि प्रवर्तिष्यते । यौगन्धरायणोपस्थापितस्यार्थस्य सुतरां दुष्करत्वमाकलयन् काञ्चुकीयः पद्मावतीं ब्रवीति भवतीति भवति माननीये हे राजकुमारि ! अस्य अर्थिनः यौगन्धरायणस्य महती गुर्वी व्यपाश्रयणा न्यासस्थापनरूपा याचना ।

मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं। (यही मेरी प्रार्थना है) ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) ऐं ! आर्य यौगन्धरायण मुझे पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखना चाहते हैं। अच्छा ये बिना सोचे कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे।

काञ्चुकीय:—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ १० ॥

कथं केन प्रकारेण प्रतिजानीमः प्रतिज्ञां कुर्मः । अयमर्थी स्वभगिनीं निक्षिप्य तद्रक्षणार्थं भवत्या आश्रयमिच्छति परं निक्षेपरक्षणस्य सर्वथा दुःखसम्पादनतया एतदभिलापपूरणं दुःशकमेवातो कथङ्कारमीदृशो दुष्करोऽर्थः प्रतिज्ञातव्य इति भावः । उक्तार्थस्य दुष्करत्वमग्रे द्रढयति—

अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत् । प्राणाः सुखं दातुं भवेयुः । तपः सुखं दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं दातुं भवेत् । (परम्) न्यासस्य रक्षणं दुःखं भवेत् ॥ १० ॥

व्याख्या—सुखमिति-अर्थः धनम् सुखं सुखपूर्वकम् यथा स्यात्तथा दातुं वितरितुं भवेत् स्यात् । प्राणाः असवः सुखम् आयासरहितं यथा स्यात्तथा दातुं भवेयुरिति । तपः तपःफलम् सुखम् अनायासेन दातुं भवेत् अन्यत् इतरत् सर्वम् निखिलम् सुखं कष्टं विनैव दातुम् वितरितुं भवेत् स्यात् परं न्यासस्य निक्षेपस्य रक्षणं पालनम् दुःखम् दुष्करं कर्म । सन्त्येवैतादृशा उदारा ये स्वकीयमर्थं प्राणाः तपांसि च सुखेन दातुं समर्थाः किन्तु तेषामपि कृते न्यासरक्षणकार्यमसम्भवमिति भावः । अतोऽस्माभिरीदृशे दुष्करकर्मणि न प्रवर्त्तितव्यम् । अत्र यौगन्धरायणाभिलाषस्य सर्वथा गरीयस्त्वं दुष्करत्वं च समर्थनादर्थान्तरन्यासः । अनुष्टुप् छन्दः ।

कञ्चुकी—माननीये ! इस संन्यासी की आश्रय प्राप्त करने की प्रार्थना बड़ी कठिन है अतः कैसे प्रतिज्ञा करें क्योंकि—

अर्थ, प्राण, किं बहुना तपस्या का फल प्रदान भी सहज हैं किन्तु किसी न्यास का रक्षण करना कठिन है ॥ १० ॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदु । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीय;—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी । [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! । [चिरं जीवतु भद्रे !]

यौगन्धरायणाभिलाषपूरणं दुष्करं सम्भाव्य प्रतिज्ञातादर्थात्पराङ्मुखीभवतः काञ्चुकीयस्य विचारं श्रुत्वा प्रतिज्ञाभङ्गमाशङ्कमाना पद्मावती ब्रवीति आर्य इति-'कः किमिच्छतीति' प्रथममुद्घोष्य 'कस्यार्थः कलशेन' इत्यभिलाषामुद्भाव्य इदानीमर्थिनोऽभिलाषश्रवणानन्तरं तत्रार्थे किमपि विचारयितुम् न युक्तम् अत एष यौगन्धरायणो यादृशमभिलाप प्रकाशयति आर्यः तदनुतिष्ठतु इति स्पष्टोऽर्थः । 'यतः अङ्गीकृतं सुकृतिनः प्रतिपालयान्ति अतोऽविचारितं भवता तत्र प्रवर्त्तितव्यम् । राजकुमार्या प्रयुक्तं आर्य इति सम्बोधनं कञ्चुकिनो मानार्थम् वृद्धत्वेन शिष्टाचारसम्मतं च । अनुरूपम् समयधर्मकुलोचितम् अतोऽस्माभिस्थैतव करिष्यते यथा भवत्या उक्तम् इति । स्वात्मनः प्रवृत्तिः तत्रार्थे प्रदर्शिता कञ्चुकिना । चेटी स्वौदार्येण तथा समर्थयन्ती पद्मावतीं दृष्ट्वाभिनन्दति चिरं जीवेति-सत्यवादिनी सत्यभाषिणी । भर्तृदारिका राजकुमारी चिरं जीवतु दीर्घायुर्भवतात् । तापस्यपि तदुचितं समर्थमाना ब्रवीति-चिरमिति भद्रे कल्याणरूपे । पद्मावति । चिरं जीवतु भवतीति शेषः ।

पद्मावती—आर्य ! कौन क्या चाहता है ऐसी घोषणा कर अब विचार करना अनुचित है । अतः ये जो कहते हैं आप उसे करें ।

कञ्चुकी—यह आपने उचित कहा ।

दासी—इस प्रकार सत्य भाषण करने वाली राजकुमारी दीर्घायु हों ।

तापसी—कल्याणि ! आप बहुत समय तक जीयें ।

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा। (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्र-भवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या। वत्से उपसर्पात्र-भवतीम्।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई। एषा गच्छामि मन्दभाआ।
[का गतिः। एषा गच्छामि मन्दभागा।]

काञ्चुकीयः राजकुमारीं पद्मावतीमुद्दिश्य वदति भवतीति भवति मान्ये, तथा तेनैव प्रकारेण करिष्यामीति शेषः। पुनः यौगन्धरायणं प्रति भोः महाशय ! अत्र भवत्या माननीयया राजकुमार्या अभ्युपगतम् न्यासरूपेण भगिनी स्थापयितुमिच्छतो भवतोऽभिलाषं पूरयितुम् पद्मावत्याः सन्निधौ वासवदत्ता-निक्षेपरूपमात्मनः प्रस्तावं सफलमालोक्य स्वकार्यैकदेशस्य सिद्धिमवधार्य यौगन्धरायणः कथयति अनुगृहीतोऽस्मीति श्रीमत्याः पद्मावत्या महाननुग्रहोऽयं मयि यन्मदीयोऽयमभिलाषः तया सफलीकृत इत्यर्थः। पुनः वासवदत्तामुद्दिश्य वदति वत्से इति—वत्से बालिके अत्र भवतीम् माननीयां पद्मावती उपसर्प गच्छ कियत्कालपर्यन्तं निवासार्थमिति शेषः। यौगन्धरायणोक्तम् पद्मावतीसन्निधा-वुपसर्पणमात्मनः प्राप्तकालमालोक्य वासवदत्ता स्वचेतसि चिन्तयति का गतिरिति। गतिः उपायः। किमन्यत्करणीयमित्यर्थः। मन्दभागा स्वल्पभाग्या सेयमहं पद्मावतीसमीपं गच्छामीति शेषः। गत्यन्तराभावान्मया कर्त्तव्य-

---

कञ्चुकी—आर्ये ! वैसा ही करता हूँ (समीप जाकर) महाशय ! श्रीमती राजकुमारी ने आपकी भगिनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया है।

यौगन्धरायण—श्रीमती ने मुझे अनुगृहीत किया। वत्से ! राजकुमारी के पास जाओ।

वासवदत्ता—(आप ही आप) क्या करूँ ? और गति नहीं है ? अब मैं मन्दभागिनी जाती हूं।

पद्मावती—भोदु भोदु। अत्तणीआदाणि संवुत्ता। [भवतु भवतु। आत्मीयेदानीं संवृत्ता]

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इय वि राअदारिअत्ति तक्केमि। [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि। [सुष्ठु आर्या भणति। अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे।]

मेवेति भावः। पूर्वं प्रियवियोगः अधुना कार्यान्तरं विधातुं गमिष्यतो यौगन्धरायणस्यापि वियोगः इति अल्पभाग्यता वासवदत्तायाः।

स्वसमीपमुपसर्पन्ती वासवदत्ता विलोक्य पद्मावती कथयति भवत्विति भवतु भवतु आदरार्था द्विरुक्तिः। आत्मीया स्वकीया संवृत्ता सञ्जाता। आदरणीयेयं मामुपसर्पतु। स्वीयजननिर्विशेषं सम्प्रत्येषा मया परिपालयिष्यते इति भावः। तापसी वासवदत्तां प्रति—आह–या इति–अस्याः पद्मावतीमुपगतायाः अर्थिभगिन्या एतस्या इत्यर्थः। या ईदृशी आकृतिः योऽयमीदृशो रमणीयाकारः तेन इयमपि राजदारिका राजकुमारी भवेदिति शेषः। इति तर्कयामि इत्थं कल्पयामि। आकृतिसौन्दर्येण यथा पद्मावत्या राजकन्यात्वं स्फुटं प्रतीयते तथा न्यासरूपेण स्थापितेयमपि आकृतिसौन्दर्यशालित्वात्वाद्राजकन्यैव भवेदित्यर्थः। चेटी तापसीवाक्यं समर्थयति सुष्ठु इति–आर्या पूज्या तापसीति यावत् सुष्ठु भणति समीचीनं युक्तिसङ्गतं वदति। इयमर्थिनः स्वसा अनुभूतसुखा अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतम् सुखं राजकन्योचितमैश्वर्यं यया सा तादृशी विद्यते इति इत्थम् प्रेक्षे पश्यामि अवगच्छामि। अस्या

पद्मावती—अच्छा! अच्छा! अब यह आत्मीय हो गई।

तापसी—जिस प्रकार की इसकी आकृति है उससे यह भी राजकुमारी ही है ऐसा ज्ञात होता है।

दासी—आर्या! ठीक कहती हैं। इन्होंने कभी राजसुख का अनुभव किया है ऐसा मैं समझ रही हूँ।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य। यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।

आकारविलोकनेनाहमपि पूर्वमनया राजवैभवसुखमनुभूतमित्यवगच्छामीति भावः। पूज्याया भवत्या वाक्यमनुमोदेहमपीति शेषः।

उचितस्थाने वासवदत्तां निक्षिप्य किञ्चिल्लब्धनिवृत्तिर्यौगन्धरायणः मनसि पर्यालोचयति—हन्तेति—हन्त हर्षद्योतकमव्ययपदम्। भोः स्वंप्रति सम्बद्धि वचनम्। भारस्य स्वशिरसि संस्थितस्य भरस्य अर्धम् समाप्तम् अवसितम्—समाप्तम्। स्वावलम्बितस्य भारस्यायमर्धभागः शिरसोऽवतीर्ण इत्यर्थः। यथा येन प्रकारेण मन्त्रिभिः रुमण्वत्प्रभृतिभिः सह समर्थितं निर्धारितं तथा तेन प्रकारेण परिणमति परिणाम प्राप्नोति। स्वामिनि राज्ञि उदयने प्रतिष्ठिते पूर्ववत् सिंहासनारूढे—तत्र भवती माननीया वासवदत्ताम् उपनयतः स्वामिसमीप प्रापयतः मे मम मगधराजपुत्री पद्मावती विश्वासस्थान प्रत्ययहेतुः। स्वामिनि उदयने पुनः सिंहासनाधिरूढे वासवदत्तां तस्मै समर्पयतो मे वासवदत्तायाश्चारित्र्यशुद्धौ मगधराजपुत्री पद्मावती साक्षिभूता सम्पत्स्यते इति भावः। कुतः कस्मात्—

अन्वयः—यैः प्रथमं विपत्तिः प्रदिष्टा अथ पद्मावती नरपतेः महिषी

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहा ! आधा बोझा तो उतर गया। मन्त्रियों के साथ जैसा निश्चय किया गया था ठीक वैसा ही परिणाम होता दिखाई पड़ रहा है। महाराज उदयन के राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो जाने पर महारानी वासवदत्ता को सौंपने के समय साक्षिणी के रूप मे ये मगध राजकुमारी पद्मावती मेरा विश्वासपात्र (गवाह) होंगी क्योंकि—

जिन (पुष्पक, भद्र आदि) सिद्धों ने राजा उदयन की (आने वाली)

तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ ११ ॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परि-

भवित्री इति प्रदिष्टा इति दृष्टा तत्प्रत्ययात् इदं कृतम् । हि विधिः, सुपरी-क्षितानि सिद्धवाक्यानि व्युत्क्रम्य न गच्छति ॥ १२ ॥

व्याख्या—पद्मावती—यैः पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धैः प्रथमम् पूर्वम् विपत्तिः आपत्तिः शत्रुकर्तृकोदयनराज्यहरणरूपेति भावः । प्रदिष्टा इति दृष्टा प्रत्यक्षमवलोकिता । अथ अनन्तरम् । पद्मावती मगधराजकुमारी नरपतेः राज्ञः उदयनस्येति शेषः महिषी—कृताभिषेका पट्टराज्ञी भवित्री भाविनी इति च प्रदिष्टा आदिष्टा तैरेव सिद्धैरिति शेषः । तत्प्रत्ययात् सिद्धजनवचनविश्वासात् इदं पद्मावतीहस्ते न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापनम् कृतम् विहितम्—हि यस्मात्कारणात् विधिः भाग्यम् सुपरीक्षितानि अवि-संवादीन्यवितथानीति यावत् सिद्धवाक्यानि सिद्धपुरुषाणां वचनानि उत्क्रम्य उल्लङ्घ्य न गच्छति । भवितव्यतापि अवितथानि सिद्धवाक्यानि अनुसर त्येवेत्यर्थः । अत्र च काव्यलिङ्गालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

इदानीमुदयनविषयकं प्रेम पद्मावत्याश्चित्ते समुत्पादयितुं विरहविधुरां दीनां वासवदत्तां च समाश्वासयितुं प्रियया वियुक्तस्योदयनस्य दशावर्णनव्याजेन कविः ब्रह्मचारिण प्रवेशमाह ततः प्रविशतीति—ऊर्ध्वमवलोक्य आकाशे दृष्टि

विपत्ति की घोषणा की थी उसे हम लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया । उन्हीं लोगों ने यह भी कहा है कि पद्मावती महाराज उदयन की पत्नी होगी । उसी वचन का विश्वास कर ऐसा (पद्मावती के पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप मे रखना) कार्य किया गया है । क्योंकि भाग्य अच्छी तरह से सुपरीक्षित सिद्ध वाक्यों का उल्लङ्घन कर नही चलता है ।

(तदनन्तर ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर देखते हुये) मध्याह्न हो गया है । मैं बहुत

श्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथा हि—

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।

दत्त्वेत्यर्थः। मध्याह्नः अह्नो मध्यम् मध्याह्नः इदम् क्रियाविशेषणमिदमव्ययपदम्। विश्रमयिष्ये विश्रामं करिष्यामि। परिक्रम्य इतस्ततः परिभ्रम्य। विश्रामोचितस्थलान्वेषणार्थमिति शेषः। भवतु अस्तु तावत् स्थानोपलब्धि सूचयति दृष्टमिति—दिनस्य मध्यभागो वर्त्तते अधुनैव प्रचण्डांशुकिरणसम्पातसन्तापात् परिभ्रमणपरिश्रमो मां बाधते। कः खल्वत्र विश्रामयोग्यः प्रदेशो भविता यत्र विश्रमिष्ये। अनुमीयते यदत्रैव कुत्रचित् विश्रामयोग्यं तपोवनं भवेत्तदेव आह—

अन्वयः—देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विश्रब्धं चरन्ति। दयारक्षिताः सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् (सन्ति) दिशः अक्षेत्रवत्यः। हि धूमः वह्वाश्रयः। अतः इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् अस्तीति शेषः॥ १३॥

व्याख्या—विस्रब्धमिति अस्मिन् श्लोके अत्र पदमध्याहार्यम् अत्र अस्मिन् तपोवने देशागतप्रत्ययाः आगतः प्रत्ययो येषां ते आगतप्रत्यया देशे आगतप्रत्ययाः निर्बाधस्थानप्राप्तिविश्वासात् अचकिताः निर्भयाः हरिणाः मृगाः विश्रब्धं निःशङ्कं यथा स्यात्तथा चरन्ति। सर्वे वृक्षाः समस्ताः पादपाः पुष्पफलैः पुष्पैः फलैश्च समृद्धविटपाः परिपूर्णशाखावन्तः सन्तः दयारक्षिताः

थक गया हूँ। अब किस स्थान पर विश्राम करूँ (घूम कर) अच्छा। यह स्थान दिखाई पड़ रहा है। इसके चारों ओर तपोवन होना चाहिये। क्योंकि—

उचित स्थान प्राप्त करने के कारण विश्वासयुक्त निर्भय मृग निःशङ्क होकर चर रहे हैं। सभी वृक्ष जिनकी शाखायें पुष्प और फलों से समृद्ध हैं

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये! आश्रमविरुद्धः

सकरुणं पालिताः। कपिलानि पिशङ्गवर्णानि गोकुलधनानि धेनुसमूहैश्वर्याणि भूयिष्ठं प्रचुरं यथा स्यात्तथा सन्तीति शेषः। दिशः ककुभः प्रान्तभूभागाः अक्षेत्रवत्यः क्षेत्राणि विद्यन्तेऽत्रेति क्षेत्रवत्यः न क्षेत्रवत्यः अक्षेत्रवत्यः कृषिसाधनविहीनानि सन्तीति शेषः। अभितः कृषिप्रयोजनानां क्षेत्राणां सर्वथाभावो वर्त्तते इति शेषः हि यस्मात्कारणात् धूमः बह्वाश्रयः बहूनि होमद्रव्याणि आश्रयो यस्य सः हवनीयद्रव्याश्रयशाली। अयमाशयः अत्र हरिणाः निःशङ्कं चरन्ति। वृक्षाः पुष्पफलसमृद्धिशालिनः सुरक्षिताश्च। कपिला गावः भूयस्यः। प्रान्तभूमयश्च क्षेत्रवर्जिताः सर्वतः वहतो धूमस्य सौरभम् तेनास्य स्थलस्य तपोवनत्वे नास्ति संशयलेशोपीति। अत्रेदमनुमानं वर्णनवैचित्र्याच्चमत्कारमाविष्करोतीत्यनुमानालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

यावत्प्रविशामीति—यावत् वाक्यालङ्कारे। प्रविशामि प्रवेशं करोमि। ब्रह्मचारिणां प्रवेशयोग्यमेतत्तपोवनमिति शेषः। (प्रविश्य प्रवेशोपक्रमं नाटयित्वा) नागरिकवेषं काञ्चुकीयं दृष्ट्वा पुरः प्रवेष्टुमाशङ्कमान आह—अयेति। एष जनः कञ्चुकीयलक्षणः। आश्रमविरुद्ध आश्रमानुकूलः नास्ति नूनम्—अतो

दयापूर्वक रक्षित हैं। यहाँ कपिल वर्णों का गो समूह प्रचुर रूप में दिखाई पड़ रहा है। आस पास की भूमि कृषि से रहित है और धूआँ भी अनेक प्रकार के आश्रयों से अधिकाधिक निकल रहा है इस कारण निश्चय ही यह तपोवन है ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी—तो इसमें प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करते हुये) अरे! यह व्यक्ति तो अनुकूल नहीं है। (दूसरी ओर देखते हुये) अथवा यहाँ

खल्वेष जनः (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम् । अये स्त्रीजनः ।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ।

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुप-

मयाऽत्र न प्रवेष्टव्यम् पुनः अन्यतः प्रदेशान्तरे विलोक्य दृशं दत्त्वा आश्रमोचितवेषो तापसी प्रभृति तापसलोकोऽपि वर्त्तते अत उत्सर्पणम् प्रवेशं मम निर्दोषम् दोषरहितम् । पुनः पद्मावतीं वासवदत्तां चेटीं च तत्र पश्यन् स्वप्रवेशे सङ्कोचमावहन्नाह अये स्त्रीजन इति ।

सशङ्कं प्रविश्यमानं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा काञ्चुकीयस्तत्सङ्कोचं दूरीकर्त्तुम् कथयति स्वैरं स्वैरमिति—वीप्सेयं प्रवेशशङ्काप्रशमनत्वराभिप्रायिका । स्वैरं स्वच्छन्दम् निःशङ्कमिति यावत् । सर्वजनसाधारणं सकलव्यक्तिसाधारणम् । अवारितप्रदेशेऽस्मिन्नाश्रमे सर्वेषामविचारितं प्रवेशो भवति । अतो भवताऽत्र प्रवेशे कापि शङ्का न कार्येति भावः । प्रविशन्तं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा परदर्शनाल्लज्जमाना वासवदत्ता तत्प्रवेशे स्वकीयामसम्मतिं सूचयन् कथयति हुमिति असम्मतिसूचकश्चायमनुकरणशब्दः । अवन्तिकाया असम्मतिं बुद्ध्वा पद्मावती वितर्कयन्ती ब्रवीति अम्मो इति—अम्मो वितर्कार्थकमव्ययपदम् आर्या—पूज्या अवन्तिका परपुरुषदर्शनम् परिहरति निषेधति । भवतु आस्तां

तपस्वी जन भी रहते हैं, अतः मेरे जाने में कोई दोष नहीं । अरे । स्त्रियाँ ।

कञ्चुकी—आप स्वच्छन्द बेरोक टोक प्रवेश करें । आश्रम तो सर्वजन साधारण के लिये हुआ करता है ।

वासवदत्ता—हैं ।

पद्मावती—हूँ । आर्या (वासवदत्ता) पर पुरुष का दर्शन नहीं करना

रिवालणीओ खु मण्णासो । [अम्मी ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, र परिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।]

काञ्चुकीय—भोः ! पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथि सत्कारः ।

ब्रह्मचारी— आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

तावद् । सुपरिपालनीयः सुष्ठु रक्षणीयः मन्न्यासः मम न्यासः मत्समीपे स्थापितोऽवन्तिकारूपो न्यास इत्यर्थः । प्रविष्टस्य ब्रह्मचारिण आतिथ्यं कर्तुमिच्छन् काञ्चुकीयः कथयति भोः इति पदं ब्रह्मचारिणः सम्बोधनात्मकम् । प्रविष्टाः स्म इत्यादरे बहुत्वम् । भवतामुपस्थितेः प्राग् वयमत्रोपस्थिताः । अतोऽत्रत्यैरस्माभिः क्रियमाणमतिथियोग्यं सत्कारमनन्तरोपस्थिताः प्रतिगृह्णन्तु भवन्तोऽभ्यागताः ।

आचम्येति—उपचारप्रदत्तमाचमनं स्वीकृत्येत्यर्थः । गृहीतोपचारः पुनरप्युपचारप्रदर्शनतः काञ्चुकीय निवारयितुं त्वरमाणो ब्रह्मचारी वदति भवतु भवत्विति नेतोऽधिकस्योपचारस्यावश्यकता वर्त्तते । निवृत्तपरिश्रमः निवृत्तः परिश्रमो यस्य सः विश्रान्तः अस्मि । आतिथ्यं कृतवति काञ्चुकीये स्वागतं पृच्छति यौगन्धरायण.—भोः इति कुतः कस्मात् स्थानात् । क्व कुत्र स्थाने ।

चाहतीं अच्छा ! अपनी इस (अवन्तिका) धरोहर का संरक्षण भली प्रकार होना चाहिये ।

कञ्चुकी—महाशय ! हम लोग पहले से आये हुये हैं । अतः आप अतिथि सत्कार स्वीकार करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन कर) अच्छा अच्छा । अब सत्कार ग्रहण कर चुका । अब मैं विश्रान्त हो गया हूँ ।

यौगन्धरायण—महाशय ! आप कहाँ से आये हैं ? कहाँ जाना है ? और आर्य का निवास स्थान कहाँ पर है ?

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् ! राजगृहतोऽस्मि ! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअ णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा ! लावाणकं नाम। लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्ताप. ।]

गन्तव्यम् गमनीयम् । आर्यस्य पूज्यस्य भवतः क्व कुत्र अधिष्ठानम् । निवासस्थानमस्तीति शेषः । क्रुपर्यैतत्कथनपरिश्रमोऽङ्गीकर्त्तव्यस्तत्र भवता । पूर्वोक्तप्रश्नस्योत्तरमाह ब्रह्मचारी भोः श्रूयतामिति -श्रूयताम् निशम्यताम् । राजगृहतोऽस्मीति आगत इति शेषः । राजभवनात् समागतोऽस्मीत्यर्थः । वत्सभूमौ वत्सदेशे लावाणकं नाम ग्रामोऽस्ति । अथवा अत्र वत्सो इति वत्सराजनामैकदेशग्रहणम् तस्य भूमौ उदयनराज्ये इत्यर्थः । श्रुतेविशेषणार्थम् श्रुतेर्विशेषणायेति श्रुतिविशेषणार्थम् श्रुतिरधीतस्याम्नायस्य विशेषणमनुसन्धान पूर्विका विशिष्टा ज्ञानोत्पत्तिस्तदर्थम् । उषितवानस्मि—कृतवासोऽस्मि । श्रुतेः शब्दज्ञानं संपाद्य पुनस्तदर्थज्ञान विशेषेण सम्पादयितुमुदयनराज्यान्तर्गते लावाणकनाम्नि ग्रामे वासः कृतोऽस्मीत्याशयः ।

लावाणकनामधेयं श्रुत्वा वासवदत्ता स्वमनस्याह—हा कष्टम् लावाणकं तत्रत्यानुभूतवृत्तान्तस्मृतेर्नाटनम् । लावाणकसंकीर्तनेनेति—अनवोऽपि नव इव कृत इति नवीकृतः । लावाणकनामधेयग्रहणेन—प्रियविरहजन्मा प्राचीनोऽपि मदीयः परितापः अधुना भूयो नूतनः संवृत्त इत्यर्थः । अथेति अथ शब्दः

ब्रह्मचारी—महाशय ! सुनिये । राजगृह से आया हूँ वेद के अर्थज्ञान के विषय में अनुसन्धान के लिये वत्सराज के राज्यान्तर्गत जहाँ लावणक नामक गाँव है वहाँ कुछ काल रहा ।

वासवदत्ता—ओह वही लावणक । लावणक नाम के लेने से मेरा सन्ताप फिर नया सा हो गया ।

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता, विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं सवृत्तम् ।

यौगन्धरायण—कथमिव ?

प्रश्ने विद्या लक्षणया विद्याध्ययनक्रिया परिसमाप्ता अवसिता न वा असमाप्ता । ब्रह्मचारी उत्तरयति न खल्विति तावदिति वाक्यालङ्कारे अद्यापि विद्याध्ययन पूर्णता न प्राप्तमित्यर्थः ।

यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति यदीति—यदि अनवसिता असमाप्ता तर्हीदानीं ततः प्रत्यागमने किं कारणमिति । ब्रह्मचारी उत्तरयति तत्रेति—तत्र खलु लावणकग्रामे किल । अतिदारुणम् अत्यन्तभीषणम् व्यसनं विपत्तिः सवृत्तम् सञ्जातम । लावाणकग्रामेऽधुनातिभीषणा विपत्तिः समुपस्थिता अतएवा-समाप्तविद्याध्ययनोऽपि ततः प्रदेशादागतोऽस्मीति भावः । यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति कथमिवेति किं प्रकारक तद् व्यसनम् । ब्रह्मचारी उत्तरयति—तत्रेति—तत्र लावाणकग्रामे उदयनाख्यो नाम नरपति प्रतिवसति । यौगन्ध-रायणः कथयति श्रूयते इति तत्र भवान् मान्यः उदयनः श्रूयते आकर्ण्यते । सः किम् । तद्विषये किं वृत्तमिति उदयनसम्बद्धक्रियाविषयकोऽय प्रश्नः । उदयनस्य लावणकग्रामनिवासानन्तरकालिका क्रिया कथनीयेति भावः ब्रह्मचारी

यौगन्धरायण—तो क्या आपका पढ़ना समाप्त हो गया ?

ब्रह्मचारी—अभी नहीं हुआ ।

यौगन्धरायण—यदि पढ़ना समाप्त नही हुआ तो क्यो चले आये ।

ब्रह्मचारी—वहाँ पर बहुत भीषण आपत्ति आ पड़ी ।

यौगन्धरायण—सो कैसे ।

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्र भवानुदयनः। किं सः?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम्। ततस्ततः?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।

ततोऽग्रिमं वृत्तं ससूचयितुं तस्येति—दृढमभिप्रेता अत्यन्तं प्रिया। किलेति लोकप्रसिद्धौ। अवन्तीश्वरस्य कुमारी वासवदत्ता नाम्नी काचित् उदयनस्य प्रियतमा भार्याऽभूदिति लोकप्रसिद्धिर्वर्तते इत्यर्थः। यौगन्धरायणः पुनः कथयति भवदुक्तेन भवितव्यम् ततस्ततः अनन्तरमनन्तरमिति प्रश्नः। अग्रिमवृत्तान्तश्रवणत्वरया द्विरुक्तिः। तदनन्तरं किं जातमिति भवन्तः सत्वरं कथयन्त्वित्यर्थः। ब्रह्मचारी कथयति—ततस्तस्मिन्निति ततः तदनन्तरं तस्मिन् नृपतौ मृगयानिष्क्रान्ते मृगयार्थं निर्गते सति प्रवृत्तेन लावाणकग्रामस्य दाहेन दग्धाऽभवत्सा वासवदत्ता। अत्र मिथ्याप्रवादमनुसृत्यैव वासवदत्ताया दाहो कथितो वक्ष्यमाणश्चाग्रे यौगन्धरायणस्य दाहः।

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नाम के राजा रहते हैं।

यौगन्धरायण—तत्र भवान् उदयन का नाम तो सुना गया है। फिर उनका क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—अवन्ती राज की पुत्री जिसका नाम वासवदत्ता था, वह उनकी पत्नी थी जो उन्हें बहुत प्रिय थी।

यौगन्धरायण—होंगीं। तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—किसी समय जब राजा शिकार खेलने के लिय गये थे उस गाँव में आग लग गई। जिसमें उनकी प्यारी पत्नी जल गई।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मन्दभाआ। [अलीकमलीकं खल्वेतद्। जीवामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-

---

आत्मनो दाहवृत्तान्तं श्रुत्वा रहस्यस्फोटभीत्या वासवदत्ता आत्मगतमाह अलीकमलीकमसत्यमसत्यमिति भृशार्थे द्विरुक्तिः। जीवामि मन्दभागेति-प्रियवियोगेऽप्यनपगतप्राणा हतभाग्या प्राणान् बिभर्मीत्यर्थः। वासवदत्ता-दाहानन्तर संवृत्तं वृत्तं श्रोतुम् यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्तत इति। पुनराग्निवृत्तान्तं प्रकाशयति ब्रह्मचारी ततस्तामिति—ताम् वासवदत्ताम् अभ्यवपत्तुकामः संत्रातुकामः सचिवः मन्त्री यौगन्धरायणः तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः मृतश्च। तदनन्तरमग्निदाहव्यसनाद्वासवदत्तामुद्धर्तुं यौगन्धरायण-नामधेयो राज्यमन्त्री तत्रैव वह्नौ आत्मानमपातयदिति भावः। यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्तत इति—अग्रे शेषवृत्तान्तं कथयत्विति भावः। ब्रह्मचारी कथयति ततः प्रतिनिवृत्त इति-तयोर्वृत्तान्तस्तम् यद्वा स चासौ वृत्तान्तश्च

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह बात झूठ है, झूठ है। मैं अभागिनी तो अभी तक जीवित हूँ।

यौगन्धरायण—तब इसके बाद क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब महारानी वासवदत्ता को विपत्ति से बचाने की इच्छा से मन्त्री यौगन्धरायण भी उसी आग में गिर पड़े।

यौगन्धरायण—सच में ही गिर गये। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर शिकार से लौटे हुये राजा ने इस वृत्तान्त को सुन

जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामाऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं । [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

तस्मिन्नि तद् वृत्तान्तम् तयोः वासवदत्तायौगन्धरायणयोः वियोगजनित-सन्तापः वियोगेन विरहेण जनितो सन्तापः यस्य सः शोकावेगस्य तु महत्वेनेति शेषः तस्मिन्नेवाग्नौ तत्रैव दहने निपत्य प्राणपरित्यागे कृतमतिर्नरपतिः अमात्यैः रुमण्वत्प्रभृतिभिः महता यत्नेन अतिप्रयासेनवारितः निवारितः । स्वप्रियावियोगादग्निप्रवेशोद्यतं राजानं निशम्य स्वहृदये वासवदत्ता तं प्रशंसति—जानामीति—आर्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशः अनुक्रोशः दया तेन सहितः सानुक्रोशस्तस्य भावस्तम् दयालुत्वं जानामि जानामि द्विरुक्त्या परिपूर्णं ज्ञानं लक्ष्यते । तत्र भवान् मयि विषये दयालुरस्तीति पूर्णतयावगच्छामि । प्रियाया मे वियोगं सोढुमशक्नुवतस्तस्य तादृशी चेष्टा सम्भवतीति भावः । अग्निप्रवेशान्निवारितस्य तस्य राज्ञः इदानीं कीदृशी चेष्टा वर्तते इति जिज्ञासमानो यौगन्धरायणः पुनः पृच्छति ततस्ततः इति । ब्रह्मचारी तदुत्तरवृत्तं ततस्तस्या इति तस्या वासवदत्तायाः शरीरोपभुक्तानि देहोपभुक्तानि दाह-

---

कर महारानी एवं महामन्त्री यौगन्धरायण के वियोग से सन्तप्त हो उसी आग में अपने प्राण देने की इच्छा की । तदनन्तर मन्त्रियों ने बड़े यत्न से उन्हें ऐसा करने से रोक लिया ।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र की मुझ पर जैसी दया थी उसे मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर राजा वासवदत्ता के पहने हुये और जलने से बचे आभूषणों को छाती से लगा कर मूर्च्छित हो गये ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणि अय्यजोअन्धराअणओ होदु। [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु।]

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

शेषाणि दाहावशिष्टानि आभरणानि आभूषणानि परिष्वज्य आलिङ्ग्य राजा उदयनः मोहमुपगतः मूर्च्छितोऽभूदित्यर्थः । हा इति उदयनस्य दाहः शोच्यते इति भावः । सकाम पूर्णमनोरथः । भर्तृदारिके राजकुमारि ! । आर्या अवन्तिका रोदिति अश्रूणि विमुञ्चति । सानुक्रोशया करुणापरया । यौगन्धरायणः वदति अथ किम् अथ किमिति—एतस्या रोदने एतदेव कारणं सम्भाव्यते पद्मावत्याःकथनं द्रढयितुं द्विरुक्तिः । प्रकृत्या स्वभावेन । सानुक्रोशा दयावती । ततस्ततः अनन्तरमनन्तरम् । शनैः शनैः कालक्रमेण । प्रतिलब्धसंज्ञः प्रतिलब्धं सम्प्राप्तं संज्ञा सम्यग् ज्ञानं चेतना वा येन सः । सवृत्तः सञ्जातः । मूर्च्छितो राजा कियत्कालानन्तरं चेतनां लब्धवानित्यर्थः । दिष्टया अव्ययपदम् भाग्येन ।

सभी—हाय !

वासवदत्ता—(आप ही आप) यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो ।

दासी—राजकुमारी जी ! ये अवन्तिका तो रो रही हैं ।

पद्मावती—दया आ गई होगी ।

यौगन्धरायण—और क्या ? और क्या ? मेरी बहिन स्वभाव से ही बहुत दयालु हैं । अच्छा फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोहं गदो त्ति सुणिअ सूण्णं विअ मे हिअअं। [दिष्टया ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

ध्रियते अवतिष्ठते जीवति । हृदयं मनः । शून्यम् इव चैतन्यरहितमिव । राजा मूर्च्छितोऽभूदिति श्रवणानन्तरमचेतनया मया हृदयशून्ययैव सञ्जातमिति पद्मावत्याः आशयः । एतेन पद्मावत्या मनस्युदयनविषयकः प्रेमाङ्कुरोत्पत्तिर्व्यंज्यते । या भावि राजसम्बन्धे कार्यसाधिका भविष्यति । यौगन्धरायणः राज्ञो मूर्च्छापगमनानन्तरं अवस्थाविशेषं श्रोतुमुत्कण्ठितो भूत्वा पुनः पृच्छति—ततस्तत इति ब्रह्मचारी राज्ञोऽवस्थाविशेषमाह—ततः स राजा इति—महीतल परिसर्पणयां सुपाटलशरीरः मह्यास्तलं महीतलं तत्र यत्परिसर्पणम् तेन महीतल-परिसर्पणेन लग्ना ये पांसवः तैः पांसुभिः पाटलं शरीरं यस्य सः भूतल-परिवर्त्तनधूलिश्वेतरक्तदेहः । सहसा अतर्कितम् । किमपि अनिर्वाच्यम् ।

ब्रह्मचारी—इसके अनन्तर धीरे-धीरे राजा होश मे आये ।

पद्मावती—भाग्य से वे जीते जागते हैं । 'मूर्च्छित हो गये' ऐसा सुन कर मेरा हृदय तो शून्य सा हो गया ।

यौगन्धरायण—अच्छा ! उसके बाद—

ब्रह्मचारी—इसके अनन्तर राजा पृथ्वी में लोटने लगे जिसके कारण उनका शरीर धूलि समूह से भर गया । फिर एकाएक उठ कर हा प्यारी ! हा वासवदत्ते ! हा अवन्ती राजकुमारी ! हा प्रियशिष्ये ! इत्यादि कह कर बहुत विलाप करने लगे । अधिक क्या कहा जाय ?

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १३ ॥

भूपतिः भूतले पतितः सर्पणेन धूलिधूसरकलेवरोऽकस्मादुत्थाय हा वासवदत्तेति अनर्थकं वचो बभाषे।

अन्वयः—इदानी तादृशाः चक्रवाका न एव। स्त्रीविशेषैः वियुक्ता अन्ये अपि तादृशा न एव। सा स्त्री धन्या या भर्ता तथा वेत्ति। हि सा दग्धा अपि भर्तृस्नेहात् अदग्धा ॥ १३ ॥

व्याख्या—नैवेति—इदानीम् अधुना। तादृशाः उदयनसदृशाः। चक्रवाकाः कोकाख्याः पक्षिणः न एव। ये रात्रौ नित्यं भार्यावियोगं सहन्ते तादृशाश्चक्रवाकाऽपि उदयनविरहावस्थासमानकोटिता न गच्छन्तीत्यर्थः चक्रवाकाणां विरहावस्थातोऽप्यधिकैवास्ति वियोगदुःखस्योदयनस्येति भावः। स्त्रीविशेषैः दमयन्ती-शकुन्तला-सीताप्रभृतीभिः वियुक्ता अन्ये अपि नल-दुष्यन्त—रामादयोऽपीति तादृशाः तत्सदृशाः उदयनसदृशाः पत्नीविरहा-सहिष्णवः न एव नैव सन्ति। सा पूर्वोक्ता स्त्री योषित् वासवदत्तेति भावः धन्या पुण्यवती या स्त्रियम् भर्त्ता पतिः तथा तेन प्रकारेण वेत्ति जानाति। हि सा स्त्री दग्धा अपि भस्मीकृता अपि भर्तृस्नेहात् स्वप्रियस्य प्रणयात् अदग्धा कीर्त्तिशरीरेण जीवितप्राया एव। अतः पत्युः निरतिशयप्रीतिपात्रभूता स्त्री नूनं कृतकृत्यैवेति भावः। अत्र पूर्वार्धे प्रसिद्धानां चक्रवाकादीनामुपमानानां

इस समय उन राजा के समान चक्रवाक भी जो नित्य रात मे प्रिया से वियुक्त रहते हैं दुःखी नहीं है। पक्षियों की बात तो दूर हैं स्त्री विशेष से वियुक्त रहने वाले नल, राम और दुष्यन्त भी वैसे दुखी न रहे होंगे जैसे दुःखी इस समय उदयन हैं। वह स्त्री धन्य है जिसे उसका पति इस प्रकार जानता है यद्यपि वह जल गई किन्तु पति प्रेम के कारण

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम् । स हि—

मुपमेयप्रतिपादनात् प्रतीपालङ्कारः । शालिनी छन्दः । तल्लक्षणं यथा शालिन्युक्ता तौ म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ॥ १३ ॥

विषण्णं राजानं शोचनीयावस्थं श्रुत्वा यौगन्धरायणः ब्रह्मचारिणं पृच्छति—अथेति–अथ प्रश्ने । तु वाक्यालङ्कारे । पर्यवस्थापयितुं प्रकृतिस्थं कारयितुम् । कश्चित् कोऽपि । अमात्यः मन्त्री यत्नवान् न किम् । ब्रह्मचारिन् ! राजानं प्रकृतिस्थं विधातुं कश्चिन्मन्त्री यत्नवान्नाभवत् किमिति । ब्रह्मचारी उत्तरयति—अस्तीति–तत्र भवन्तम् राजानमुदयनम् । दृढं गाढं भूयिष्ठमिति यावत् । पर्यवस्थापयितुम् प्रकृतिस्थं कारयितुम् । प्रयत्नवान् प्रयत्नसम्पन्नः । अस्ति आसीत् अभूत् । श्रीमन्तं महाराजं प्रकृतिस्थं कर्त्तुं रुमण्वान् नामा कोऽपि सचिवः गाढं प्रयत्नम् तनुतेत्यर्थः । इदानीं रुमण्वतः प्रयत्नं वर्णयति—अनाहारे इति ।

जल जाने पर भी वह अभी भी अपने कीर्त्ति शरीर से जीवित जैसी लगती है ॥ १३ ॥

यौगन्धरायण—महाशय ! क्या किसी मन्त्री ने राजा को प्रकृति में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नाम के महामन्त्री उनको प्रकृति में लाने के लिये दृढ प्रयत्न कर रहे हैं । वे तो—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

अन्वयः—(स हि) अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति । नृपः प्राणान् त्यजति यदि तस्य अपि सद्यः उपरमः ॥ १४ ॥

व्याख्या—(स हि रुमण्वान्नामकः सचिवः) अनाहारे भोजनाभावे तुल्यः सदृशः नृपेणेति शेषः । यदि वासवदत्ताशोकविकलेन राज्ञा भोजनं परित्यक्तम् तदा रुमण्वमतापि राजचिन्तया भोजनं न क्रियते इत्यर्थः । प्रततरुदित क्षामवदनः प्रततेन सन्ततेन अविच्छिन्नेनेति यावत् रुदितेन क्षामं क्षीणं वदनं यस्य सः । राज्ञ इव रुमण्वतोऽपि सततमश्रुपातेन मुख विच्छायतां गतमिति भावः । नृपति समदुःखं नृपतिना राज्ञा समं तुल्यं दुःख कष्टं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा शरीरे देहे संस्कारं मार्जनादिना शरीरस्वच्छतां परिवहन् दधानः सन् राजा यथा कथञ्चित्कष्टाधिक्येन स्वस्नानादि संस्कारमारचयति तथा रुमण्वानपि आवश्यकतातिशयमवेक्ष्य कथ चित्कष्टभूयिष्ठं शरीरसंस्कारमङ्गीकरोतीत्यर्थः । दिवा वा रात्रौ वा अहर्निशमित्यर्थः यत्नैः प्रयत्नैः नरपतिं राजानं परिचरति सेवते । नृपः वासवदत्ताशोकातिशयेन सद्यस्तत्कालं प्राणान् परित्यजति तदा रुमण्वतोऽपि सद्य एव उपरमः मृत्युः जातः भविष्यति इति शेषः । सर्वात्मना राजानमनुसरन् रुमण्वान् राजेव कष्ट-

राजा के भोजन न करने पर वे स्वयं भोजन करते । जिस प्रकार निरन्तर रोते रहने के कारण राजा का मुख सूख गया है उसी प्रकार उनका भी मुख मलीन हो रहा है । वह राजा के समान दुःख अनुभव करते हुये शरीर को स्वच्छ करने के लिये बड़े कष्ट से स्नान आदि संस्कार करते हुये अनेक यत्नों से रात दिन राजा की सेवा में लगे रहते हैं यदि राजा शीघ्र

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो। [दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्। कुतः—

मयं जीवनं विभर्त्ति। एवमुदयनसमदुःखसुखावस्थो रुमण्वानपीति भावः। शिखरिणी नामकं छन्दः। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति तल्लक्षणम् ॥ १४ ॥

रुमण्वतो भृशम् परिचर्यया पत्युः समुचितं रक्षणं सम्भावयन्ती वासवदत्ता स्वमनसि कथयति—दिष्टचेति–दिष्टचा दैवेन सौभाग्येनेति यावत्। सुनिक्षिप्तः सुष्ठु निक्षिप्तः। तत्र भवतः मम प्रियतमस्य रक्षा भारोऽयम् समयेऽस्मिन् समुचिते स्निग्धे रुमण्वत्यारोपितोऽस्तीति सौभाग्यमस्माकमित्यर्थः। महती राजरक्षांधुरं वहतः रुमण्वतः प्रशंसामुखेन स्वमनसि कथयति यौगन्धरायणः अहो इति–अहो आश्चर्यम् महद्भारम् महतः विशिष्टस्य कार्यस्य भारः धूः तम्। उद्वहति गृह्णाति उत्थापयतीत्यर्थः। रुमण्वतो विस्मयकरोऽयं प्रयत्नः यद् राज्ञो रक्षणसदृशं गुरुतरकार्यभारं सावधानतयानुतिष्ठतीति भावः। अतः सर्वथा प्रशंसास्पदः सोऽस्तीति भावः। कुत इति तदेवाहाग्रिम श्लोकेन—

अपने प्राणों का परित्याग करे तो उसका भी प्राण गया हुआ समझना चाहिये।

वासवदत्ता—(आप ही आप) भाग्य से इस समय स्वामी अच्छे व्यक्ति के देख रेख में हैं।

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहो रुमण्वान् ने बहुत बड़ा भार सम्भाला है क्योंकि—(वासवदत्ता को पद्मावती के यहाँ निक्षेप रूप में रखने से) मेरा यह भार तो कुछ हल्का हो गया। किन्तु रुमण्वान् का भार बढ़

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः॥ १५॥

(प्रकाशम्) **अथ भोः!** पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। इह तया सह हसितम्, इह तया

अन्वयः—हि अयं भारः सविश्रमः। तस्य तु श्रमः प्रसक्तः। हि तस्मिन् सर्वम् अधीनम्। यत्र नराधिपः अधीनः॥ १५॥

व्याख्या—सविश्रम इति–हि यस्मात्कारणात् अयं सन्निकृष्टस्थः भारः धर्मदीय इति शेषः वासवदत्तारक्षात्मक इति यावत् सविश्रमः विश्रमयुक्तः। पद्मावत्याः समीपे वासवदत्तानिक्षेपेणाहं विश्रान्त इति भावः। तस्य तु रुमण्वतस्तु श्रमः उदयनरक्षारूपः परिश्रमः प्रसक्तः संलग्नः। हि यस्मात्कारणात्–तस्मिन् रुमण्वति सर्वम् सकलम्–अधीनम् आयत्तम् यत्र यस्मिन् रुमण्वति नराधिपः राजा अधीनः आयत्तः। मद्भारापेक्षया रुमण्वतो भारो गुरुतर ससर्वथा प्रशंसार्हं इति भावः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तर न्यासोऽलङ्कारः अनुष्टुप् छन्दः॥ १· ॥

प्रकाशम् सर्वश्राव्यं यथा स्यात्तथा ब्रूते इति शेषः। अथ अनन्तरं। भोः महाशय। पर्यवस्थापितं प्रकृतावापादितः। विकारपरिहारेण मन्त्रिभिः पूर्वावस्थां प्रापितः किमिति यौगन्धरायणप्रश्नाशयः। ब्रह्मचारी उत्तरयति—तदिदानीमिति–तद् वृत्तम् राजपर्यवस्थापितत्वमिति भावः। न जाने नावगच्छामि। इह अत्र स्थाने तया सह वासवत्तया समम्। हसितम् हासः कृतः। इह तया सह कथितम् भाषितम्। इह तया सह पर्युषितम् स्थितम्

गया है समस्त राज्य भार भी उसी के अधीन रहते हैं—(प्रकाश रूप में) तो क्या इस समय राजा प्रकृतिस्थ कर लिये गये हैं ?

ब्रह्मचारी—इस समय यह बात मैं तो नही जानता। 'यहाँ उसके साथ हँसा था, यहाँ उसके साथ बातचीत की थी, यहाँ उसके साथ बैठा था,

सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम् । ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्राम । ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि ।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअतुएण वि इमिणा

इह कुपितम् कोपः कृतः । शयितं शयनं कृतम् । इति विलपन्तम् विलापं कुर्वन्तं राजानम् अमात्यैः मन्त्रिभिः रुमण्वदादिभिः महता यत्नेन प्रयासेन गृहीत्वा तस्माद् ग्रामात् अपक्रान्तम् निर्गतम् । ततः तस्माद् ग्रामात् निष्क्रान्ते राजनि राज्ञो निर्गमनानन्तर मित्यर्थः । प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव प्रोषितानि अस्तं गतानि नक्षत्राणि चन्द्रश्च यस्मात्तादृशो नभ इव आकाश इव । अरमणीयः सौन्दर्यशून्यः स लावणको नाम ग्रामः संवृत्तः सम्प्राप्तः । यथा चन्द्रमसा नक्षत्रैश्च विहीनमाकाशे शोभते तथा मन्त्रिभिः राज्ञा च विरहितस्य लावणक ग्रामस्य शोभा विनष्टाभूदित्यर्थः । एवं लावणक व्यसनवृत्तान्तं सूचयित्वा । यद्यनवसिता विद्या किमयागमनप्रयोजनमिति यौगन्धरायण प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्ब्रह्मचारी कथयति ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मीति । राजाद्यपमरणेन ग्रामस्य निःश्रीकतया तत्र वस्तुमनिच्छया मयापि तस्माद् ग्रामात् प्रस्थानं कृत । एतदेव तत्प्रदेशत्यागेममाभून्निमित्तमित्यर्थः । स खलु इति—

तापसी वदति–गुणवान् प्रशस्त गुणयुक्तः । आगन्तुकेन अतिथिना प्रश-

---

यहाँ रूठा था और यहाँ उसके साथ सोया था, इत्यादि अनेक प्रकार से बहुत विलाप करते हुये उस राजा को लेकर मन्त्री लोग उस गाँव से बाहर चले गये । राजा के चले जाने पर चन्द्रमा और नक्षत्रों से रहित आकाश की भाँति वह गाँव सर्वथा शोभा रहित हो गया । इस कारण मैं भी वहाँ से निकल पड़ा ।

तापसी—वे राजा बड़े गुणी मालूम पड़ते हैं जिनको आगन्तुक भी ऐसी प्रशंसा करता है ?

एव्वं पससीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

चेटी—भट्टिदारिए! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि। [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती—(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम्। [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम् ।]

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ। गच्छामस्तावत्।

स्यते प्रशंसा क्रियते यद्यप्यस्य तापसीवाक्यस्य पथिकोऽयं ब्रह्मचारी यमिमं प्रशंसतीति वाच्योऽर्थः लभते तथापि सर्वथा दयार्द्रहृदयो वरगुणसम्पन्नो राजा नूनं पद्मावतीसम्बन्धयोग्योऽस्तीति व्यङ्ग्यार्थोऽपि ऊहनीयः। तापस्य-भिप्रायमवबुध्य वराभिलाषिणीं पद्मावतीं प्रति तदाशयजिज्ञासया चेटयाह। भर्तृदारिकेति-अपरा अन्या गमिष्यति यास्यति। राजकुमारि! पद्मावति। किं काचिदन्या योषित् भूपतेरुदयनस्य हस्तगता भविष्यतीति शब्दार्थः। यदि एतादृशेन गुणिनोदयनेन सह कस्याश्चिदन्यस्या योषितः विवाहसम्बन्धो भवेत्तदा सा धन्या भवेदित्याशयः। त्वयैव वरणीयः सर्वथा श्लाघ्यगुणोऽयं राजा कथमपीति व्यङ्ग्यार्थः। गुणिनमुदयनं पतिं प्राप्तुमिच्छन्ती पद्मावती सञ्जातहर्षा सहजलज्जावशात् स्वकीयं भावमपह्नुवाना मनसि चेटीमभि-नन्दति—मम हृदयेनेति एव शब्दो सह शब्देनान्वेति। मम—हृदयेन सहैव मन्त्रितम् विचारितं चेटयेति भावः। पद्मावतीहृदये उदयनरूपवराभिलाष-मुत्पादयितुमुपस्थितो ब्रह्मचारी तदनुरूपमुदयनावस्थाविशेषमुपस्थाप्य कृतकार्यस्ततो गन्तुमिच्छन्नाह आ पृच्छामीति। आ इति स्मरणार्थक-

---

दासी—राजकुमारी जी! तो क्या और अन्य भी उसके हाथ जायगी (उससे विवाह करेगी)।

पद्मावती—(मन ही मन) इसने मेरे मन के अनुसार ही सोचा।

ब्रह्मचारी—अच्छा! अब आप दोनों (परिव्राजक वेषधारी यौगन्धरायण और कञ्चुकीय) की आज्ञा चाहता हूँ। यह मैं चल रहा हूँ।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी—तथाऽस्तु ।

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल !

मध्यमपदम् । पृच्छामि गन्तुमिच्छामि । गमने परिव्राजककञ्चुकीययोर्भवतोरनुज्ञां लब्धुमिच्छामीत्यर्थः । पुनः वृद्धयोः परिव्राजककञ्चुकीययोराशीर्वादगर्भां गमनाज्ञा दर्शयति कविः । अर्थसिद्धये प्रयोजनसाफल्याय । ब्रह्मचारी कथयति—तथास्त्विति तथा तेन प्रकारेण अस्तु भवतु । श्रीमत्सूचितामाज्ञां स्वीकृत्याहं गच्छामीत्याशयः । निष्क्रान्तः प्रस्थानं सूचितं ब्रह्मचारिणः । एवं कृतकार्यो यौगन्धरायणस्ततो गन्तुमुद्यतः । श्रीमत्याः पद्मावत्याः अनुज्ञां गमने लब्धुमिच्छन्नाह—साध्विति साधु समीचीनम् । मद्भगिनीरक्षण भवत्या स्वीकृतमिति तदर्थमभिनन्दनीया भवतीत्यर्थः । तत्र भवत्या पूज्यया अभ्यनुज्ञातः अनुज्ञां लब्ध्वा गन्तुमिच्छामि । एवं गमनानुमतिं लब्धुमिच्छति यौगन्धरायणे कञ्चुकीयः तमेवार्थं पद्मावतीं प्रति प्रार्थयते—तत्र भवत्येति । आर्यायाः भवत्या अनुमत्या गन्तुमिच्छतेऽस्मै यौगन्धरायणाय भवती गमनानुज्ञां दातुमर्हतीति

दोनों—अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये जाइये ।

ब्रह्मचारी—तथास्तु ।

(चला गया)

यौगन्धरायण—अच्छा ! अब मैं भी तत्र भवती की आज्ञा प्राप्त कर जाना चाहता हूँ ।

कञ्चुकी—(पद्मावती से) आपकी आज्ञा लेकर ये महाशय भी जाना चाह रहे हैं ।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिया अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि।
[आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायणः—तथास्तु।

(निष्क्रान्तः)

भावः। आगन्तुकस्य गमनेन तद्भगिनी विमनायमानां सम्भाव्य तस्मै यौगन्धरायणाय गमनानुज्ञां दातुमनिच्छन्ती पद्मावती ब्रवीति–आर्यस्य भगिनिकेति आर्यस्य पूज्यस्य भगिनिका स्वसृका उत्कण्ठयिष्यते उत्कण्ठिता भविष्यति श्रीमतो दर्शनं विना खिन्ना भविष्यतीत्याशयः। कदाचिदेकाकिन्यै भवतो भगिन्यै नात्र वासो रोचिष्यते इत्येतदेव चिन्तयामीति भावः। साधुजनेति–साधुजनहस्तगता साधुश्चासौ जनश्चेति साधुजनस्तस्य हस्तगता आश्रये संश्रिता इयं मे भगिनी। नोत्कण्ठयिष्यति नोद्विग्ना भविष्यति कञ्चुकीयमिति–कञ्चुकीयं दृष्ट्वा वदतीत्यर्थः। गच्छामस्तावदिति साधयामो वयमिदानीम। कञ्चुकीयः वदति गच्छत्विति साम्प्रतं भवता गम्यताम् भूयः स्वकीय दर्शनं दातुमित्यर्थः। तथास्त्विति तथैव भवेत्। साम्प्रतं गच्छामि आ मिष्यामि च पुनर्यथावसरं भवतो दर्शनं कर्तुमित्यर्थः। तथास्तु तथा तेन प्रकारेण भवदुक्तानुसारमित्यर्थः। अस्तु भवतु। निष्क्रान्तः निर्गतः।

पद्मावती—आपकी बहन आप के बिना उदास हो जायेगी।

यौगन्धरायण—अच्छे आदमी के आश्रय में रहने से यह उदास नहीं होगी। (कञ्चुकी को देख कर) तो मैं जाता हूँ।

कञ्चुकी—अच्छा जाइये किन्तु पुनः दर्शन दीजियेगा।

यौगन्धरायण—ऐसा ही हो।

(चला गया)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती--अय्ये ! वन्दामि। [आर्ये ! वन्दे।]

तापसी–जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि।[जाते, तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं। [आर्ये ! वन्दे तावदहम्।]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तार समासादेहि। [त्वमप्यचिरेण भर्त्तारं समासादय।]

यौगन्धरायण इति शेषः। समय इति इदानीम् अधुना अभ्यन्तरं पर्णशालाभ्यन्तरं प्रवेष्टु प्रवेशं कर्त्तुम्। समयः कालः। साम्प्रतमत्रावस्थानमयुक्तमतो पर्णशालाभ्यन्तरं गन्तुमयं काल इति भावः।

काञ्चुकीयवचनानुसारं गन्तुकामा पद्मावती गमनानुमतिं प्राप्तये प्रस्थानकालोचित प्रणतिभाव तापसीं प्रति दर्शयन्ती आह–आर्ये इति। आर्ये पूज्ये तापसि वन्दे प्रणमामि। वरार्थिनी पद्मावतीं प्रति सुताभावं वहन्ती वृद्धातापसी समयोचितमाशीर्वचनं ददाति–जाते इति। जाते पुत्रि।

तव सदृशम् आत्मतुल्यम्। गुणिनं भर्त्तारं पतिम् लभस्व प्राप्नुहि। तत्समीपे न्यासीभूता वासवदत्ताऽपि पद्मावत्या गमनेन सहैव गन्तुमुद्यता तापसीं प्रति शिष्टाचारोचितं प्रणतिं समाचरति आर्ये इति। तावच्छब्दो वाक्यालङ्कारे। आर्ये पूजनीये अहम् गन्तुमुद्यतातोऽभवती प्रणमामि। गमनाज्ञा दीयतां मह्यमिति भावः। प्रणामानुकूलमाशिषं तापसी प्रददाति

कञ्चुकी—अब भीतर चलने का समय हो गया।

पद्मावती—आर्ये ! प्रणाम करती हूँ।

तापसी—बेटी ! तुम अपने समान पति प्राप्त करो।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ।

तापसी—तुम भी शीघ्र अपना पति प्राप्त करो।

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । [अनुगृहीताऽस्मि ।]

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इतो भवति ! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

त्वमप्यचिरेणेति—अचिरेण शीघ्रम् भर्तारम् प्रोषितं स्वपतिं समासाद्य तत्समागमसुखं लभस्वेत्यर्थः । तापस्याशिषं वासवदत्ता स्वीकरोति—अनुगृहीताऽस्मीति अनुगृहीता कृतानुग्रहा अस्मि भवामि । भवदीयमाशीर्वादवचनं शिरसा प्रतिगृह्णामीत्यर्थः । मार्गप्रदर्शनरूपं स्वकीयं कर्त्तव्यं संवहन् कञ्चुकीय आह—तदागम्यतामिति तत् तस्मात् साय सन्ध्यासमयसन्निधानात् इत इतः अध्वनः सूचनम् । भवति कुमारि पद्मावति ! आगम्यताम् आगच्छतु भवती । हि यस्मात् कारणात् । सम्प्रति समयेऽस्मिन् ।

अन्वयः—खगाः वासोपेताः । मुनिजनः सलिलं अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः भाति । धूमो मुनिवनं प्रविचरति । दूरात् परिभ्रष्टः असौ रविः अपि संक्षिप्तकिरणः सन् रथं व्यावर्त्य शनैः शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥ १६ ॥

व्याख्या—खगा इति—खगा पक्षिणः वासोपेताः स्ववासस्थानं (कुलायं) प्राप्ताः । मुनिजनः तपस्विलोकः सलिलं जलम् अवगाढः स्नानार्थं प्रविष्टः । प्रदीप्तः प्रज्वलितः अग्निः अनलः भाति शोभते । आहुतिप्रदानेन प्रदीप्तस्याग्नेः शोभा दर्शनीयाऽस्तीति भावः । धूमः होमजन्यः धूमः मुनिवनम् तपोवनम् प्रवि-

---

वासवदत्ता—अनुगृहीत हुई ।

कञ्चुकी—तो आइये तत्र भवती । इधर से चलिये ।

इस समयतो चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलों में चली गईं । तपस्वी लोग

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

—:※:—

चरति सर्वत्र व्याप्नोति । दूरात् दूरवर्त्तिनो गगनतलात् परिभ्रष्ट. पतितः रविः सूर्यः संक्षिप्तकिरणः संक्षिप्ताः उपसंहृताः किरणा मरीचयो येन सः । तादृशः मन् रथं व्यावर्त्य वेगवतो रथस्य गति सन्निरुध्य शनैः क्रमशः अस्तशिखरम् अस्ताचलस्य चूडाम् प्रविशति गाहते । एभिर्लक्षणैः सायंसन्ध्या सन्निधौ वर्तते अतो मत्प्रदर्शितं पन्थानमवलम्ब्य पर्णशालाभ्यन्तरं भवत्या गन्तव्यमिति भावः । सन्ध्यासमयस्यानुमानात् तस्य हृदयाकर्षकत्वेन अनुमानालङ्कारः । सन्ध्याकालवर्णनात्स्वभावोक्तिरपि । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १६ ॥

निष्क्रान्ताः सर्वे इत्यनेन सर्वेषां निर्गमनमङ्कसमाप्तिश्च प्रसङ्गेऽत्र सूचितम् । अङ्कलक्षणं यथा 'नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्कः । तन्निरुक्तिर्यथा—अङ्क इति रूढशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहत्यर्थान् । साहित्यदर्पणेऽपि- अन्तनिष्क्रान्तनिखिल पात्रोऽङ्क इति कीर्त्तितः ।

॥ इति श्रीस्वप्नवासवदत्तस्य व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

—:※:—

जल में स्नान के लिये प्रविष्ट हो गये । प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है तपोवन में चारों ओर धूँआँ व्याप्त हो रहा है आकाश मे बहुत ऊँचाई से गिरते हुये सूर्य अपनी किरणों को समेट कर तथा अपने रथ का वेग रोक कर अब अस्ताचल को जा रहे है ॥ १६ ॥

(सब चले गये)

॥ प्रथम अङ्क की भाषा टीका समाप्त ॥



द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणसि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति। जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अम्भो ! इअ भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचुलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवसप्पिस्स। [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि,

---

इदानीं प्रथमाऽङ्के पद्मावत्या हृदि सूचितोदयनविषयकाभिलाषस्य परिपोषं सखीसंलापभङ्ग्या प्रकाशयिष्यन् तदनुरूपं चेटयाः प्रवेशं दर्शयति कविः—तत इति—ततः द्वितीयाङ्कस्य प्रारम्भे चेटी दासी प्रविशति रङ्गमञ्चं समागच्छति। प्रविष्टेयं चेटी नामधेयपुरःसरमपरां चेटी प्रसङ्गानुकूलं वचनमुपन्यस्यति—कुञ्जरिकेति। अत्र वीप्सा त्वरायामामन्त्रणस्य। कुत्र कस्मिन् स्थाने। माधवीलतामण्डपस्य वासन्तीवल्लीमण्डपस्य। पार्श्वतः समीपे। कन्दुकेन क्रीडति खेलति। परिक्रम्य परिभ्रम्य इतस्ततो गत्वेत्यर्थः। अम्भो विस्मयबोधकाव्ययपदम्। उत्कृतकर्णचूलिकेन उत् ऊर्ध्वम् कृतेन स्थापितेन कर्णचूलेन कर्णाभरणेन। व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन व्यायामेन सञ्जाताः ये स्वेदबिन्दवः तैः विचित्रितेन। परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन परिश्रान्तेन रमणीयं दर्शनं यस्य तत् तेन। मुखेन आननेन उपसर्पामि समीपं गच्छामि। अत्र एषा इत्यारभ्य क्रीडति पर्यन्तो ग्रन्थः आकाशभाषितं

चेटी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! राजकुमारी पद्मावती कहाँ हैं ? कहाँ है ? क्या कहती हो राजकुमारी माधवी कुञ्ज के पास गेंद खेलती है ? अच्छा ! राजकुमारी के पास चलूँ। (घूमते हुये देख कर) अरे ये राजकुमारी कान के आभूषणों को ऊपर उठाये हुये व्यायाम

एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वत: कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायाम सञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति ! यावदुपसर्प्स्यामि]

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह ।)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ! [हला ! एष ते कन्दुकः ।]

नाम कथ्यते नाटकेषु—तल्लक्षणं दर्पणे 'किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये बिना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम्' इति। पूर्वोक्तविशेषण विशिष्टा तत्र भवती पद्मावती कन्दुकक्रीडापरात्रैव समागच्छतीति भावः। निष्क्रान्ता ततः स्थानादपगतेत्यर्थः। प्रवेशक इति—तल्लक्षणं दर्पणे यथा—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा' ॥

वासवदत्तया समं कन्दुकेन क्रीडन्त्याः पद्मावत्याः प्रवेशमाह ततः प्रविशतीति सपरिवारा—चेटीरूपपरिवारयुता। प्रमादेन भूमौ पतितं कन्दुकमपश्यन्त्याः पद्मावत्याः पुरस्तात् कन्दुकं सन्दधाना वासवत्ताह—हला इति—

से उत्पन्न स्वेद-बिन्दुओं से विचित्र एवं थकने से सुन्दर दिखाई पड़ने वाले मुख से उपलक्षित होकर गेंद खेलती हुई इधर ही आ रही हैं तो उनके पास चलूं।

(इतना कह कर वहाँ से चल पडती है)

(तदनन्तर गेंद खेलती हुई पद्मावती अपने परिवार और वासवदत्ता के साथ प्रवेश करती है)

वासवदत्ता—सखि ! यह आपकी गेंद है ।

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं । [आर्ये ! भवत्विदानी-मेतावत् ।]

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता । [हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिक-सञ्जातरागो परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।]

हला हे सखि ! अयमस्ति तावकीनो गेन्दुकः गृह्यतां क्रीड्यता च यथारुचीति भावः । विरुविरचितक्रीडाविशेषेण सञ्जातपरिश्रम पद्मावती तत्र स्वीयामरुचि प्रदर्शयति—आर्ये इति आर्ये पूज्ये । एतावत् एतत्परिमाणकम् कन्दुकक्रीडनम् भवतु अस्तु पर्याप्तं संवृत्तमिति भावः । अत्रार्थे स्वकीया-मनुमतिं प्रदर्शयन्ती सपरिहासं ब्रूते वासवदत्ता हला इति—

हला हे सखि ! अतिचिरम् बहुकालं यावत् कन्दुकेन क्रीडित्वा क्रीडां कृत्वा कन्दुकेन क्रीडनाद्धेतोः अधिकसञ्जातरागौ अधिकं अत्यन्तम् । सञ्जातः समुत्पन्नः रागः रक्तिमा ययोस्तौ प्रचुरोत्पन्नलोहित्यौ ते तव हस्तौ करौ परकीयौ अन्यदीयौ इव संवृत्तौ सञ्जातौ । अत्र क्रीडित्वाप्रयोगश्चिन्त्यः हेतौ कुत्रापि क्त्वाप्रत्ययस्यानुशासनाभावात् समानकर्तृकस्य क्रियाद्वयस्य चासत्वात् । सहजरागयुक्तौ तव (पद्मावत्याः) करौ चिरतरकन्दुकक्रीडनेना-तितरां सरागौ सञ्जताविति वाच्योऽर्थः । व्यङ्ग्यार्थस्तु—अरुणातिशयशालिनौ ते कराविदानीं स्वकी ौ न स्तः अपि तु परकीयौ संवृत्तौ । परस्य हस्तं गतौ तेन परकीयावन्यदीयाविवेवेति भावः एतेन पद्मावतीविवाहमस्यामन्नतां सूचयति । विवाहानन्तर परायत्तत्वात्कन्दुकेन क्रीडा दुर्लभा भविष्यतीति मनसि कृत्वा चेटी पद्मावतीं पुनः कन्दुकक्रीडायां प्रवर्त्तयन्त्याह क्रीडतु

पद्मावती—आर्ये ! इस समय मात्र इतना ही ।

वासवदत्ता—सखि ! बहुत देर तक गेंद खेलने के कारण लालिमा की अधिकता के कारण तुम्हारे हाथ दूसरों के जैसे हो रहे हैं ।

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ। णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो। [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावत् अयं कन्याभावरमणीय. काल:।]

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

वासवदत्ता—णहि णहि ! हला ! अधिअं सोहदि। अभिदो

क्रीडत्विति—पौन:पुन्ये द्वि: प्रयोग.। क्रीडतु क्रीडतु क्रीडां करोतु करोतु कन्याभावरमणीय: कुमारीभावसुन्दर: काल: समय:। निवर्त्यता समाप्यताम्। न यावत्पाणिग्रहण सम्पद्यते तावद् भवत्या कन्दुकेन पुन: पुन: क्रीडनीयम्। एतच्च बाल्ये एव अपेक्षितम्। पाणिग्रहणानन्तरं यौवने नापेक्षितमिति चेटयाभिप्राय:। इदानीमात्मान साकूतमालोकयन्तीमवन्तिकामुद्दिश्य पद्मावती ब्रवीति—आर्ये इति—मामपहसितुमिव ममोपहासं कर्त्तुमिवेति मम्भावना। निध्यायसि किम् पश्यसि किम्। ममोपहासार्थमेव ते मन्निरीक्षणं किमित्यर्थ:। पद्मावत्या: शङ्कितं निषेधयन्त्यवन्तिका कथयति—नहि नहीति—नहि नहि—उपहासं कर्त्तुं न पश्यामि। शोभते शोभा प्राप्नोति। त्वन्मुखमिति शेष:। अद्य अस्मिन्दिने। ते तव। वरमुखम् मनोहराननम्। अभित इव सर्वत इव पश्यामि विलोकयामि। त्वन्मुखमिदानीमतीव सौन्दर्ययुक्तं प्रतिभाति—अत: चक्षु:प्रीतये तत्पश्यामि। न परिहसितुमना:। किञ्च वासवदत्ता वरमुखमित्यत्र प्रश्लेषेण वरस्य परिणेतु: मुखं पश्यामि साक्षा-

---

दासी—राजकुमारी और खेलें और खेलें। कुंवारेपन के इस काल को खेल के आनन्द से सफल बनावें।

पद्मावती—आर्ये ! क्यों इस समय मानो मेरी हँसी करने के लिये ही मुझे देख रही हैं ?

वासवदत्ता—सखि ! नहीं नहीं। आपका (मुख) आज बहुत शोभित हो रहा है। अब मैं तुम्हें आसन्न वर मुख समझती हूँ।

बिअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणवहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

त्करोमि यः भवत्याः समीपे एव वर्त्तते इति गूढपरिहासोऽपि सखिभावेनान्तर्गर्भो व्यज्यते । परिहासगर्भामिमामुक्तिमाकर्ण्य प्रणयरोषान्विता पद्मावती सविलासमवन्तिकां प्रति ब्रवीति—अपेहीति—अपेहि दूर गच्छ । इदानीम् अधुना । मां । मापहस उपहासं मा कार्षी. सपरिहास वचो वदन्ती ममान्तिकाद् दूर गच्छ । नाहन्ते वचनमिद श्रोतुमिच्छामि । अय ते परिहासो मह्य न रोचते इति भावः ।

इदानीं पद्मावत्या हृद्गत दयितं वर जिज्ञासमानाऽवन्तिका परिहासचातुर्येण स्ववचनोपसंहार कुर्वती भाविश्वशुरकुल निर्दिशन्ती प्राह—एषास्मीति—हे भविष्यन्महासेनवधु भविष्यन्ती चासौ महासेनवधूश्च तत्सम्बुद्धौ महासेनस्य स्नुषाभावं गमिष्यन्ति ! एषा इयम् तूष्णींका तूष्णींशीला । अस्मि भवामि । यदि मद्वचनं परिहासं मन्यसे तर्हि । राज्ञो महासेनस्य स्नुषा त्वं भविष्यसि—अर्थात्तत्पुत्रस्ते पतिर्भविष्यतीत्येवं निगद्याद्य मौनमालम्बे । अतः परं न किञ्चिदभिधास्ये इति अवन्तिकाशयः । महासेन इति नवीनतममश्रुतपूर्वं नाम श्रुत्वा पद्मावती अवन्तिकां पृच्छति—क एष इति—कोऽयं महासेनः ? यस्य

पद्मावती—हटिये । मेरा उपहास मत कीजिये ।

वासवदत्ता—महासेन की वधू होने वाली ! लो मह मैं चुप हो गई ।

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदा णाम। तस्स परिमाणणिव्वुतं णामहेअं महासेणोत्ति। [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य परिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति।]

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रज्जा सह सम्बन्धं णेच्छदि। [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।]

नामेदानीमुदाहृतवानसि ? तस्य परिचयं मह्यं देहीति। पद्मावतीप्रश्नानुसारं वासवदत्ता महासेनपरिचयप्रदानं अस्तीति प्रस्तौति उज्जयिनीयः उज्जयिन्या अयमुज्जयिनीयः उज्जयिनीसम्बन्धी। तस्य राज्ञः प्रद्योतस्य बलपरिमाणनिर्वृतं बलस्य सेनायाः परिमाणेन महत्त्वरूपेण निर्वृत्तं कृतम्। नामधेयः नाम महासेन इति। उज्जयिन्याः राजा कश्चित्प्रद्योतनामधेयः। तस्य च राज्ञः सेनाया परममहत्त्वपरिमाणेन कारणेन 'महती सेनायस्य' इत्यन्वर्थं महासेन इति नामधेयं कृतं वर्तते इत्यर्थः। विनयवत्या पद्मावत्याः स्वसम्बन्धविषये स्वयं वक्तुमयुक्तत्वेन तस्या मनोगतमाकूतं जानती चेटी पूर्वोक्तविवाहसम्बन्धेऽरुचिं प्रदर्शयन्ती वदति—भर्तृदारिकेति—भर्तृदारिका पद्मावती। तेन पूर्वोक्तेन। राज्ञा नृपेण प्रद्योतपुत्रेण सह समं सम्बन्धम् स्वीकरणरूपं संयोगं न इच्छति नो कामयते। श्रीमती राजकुमारी पद्मावती प्रद्योतराजकुलसम्बन्धं न वाञ्छतीत्यर्थः चेटीवचनं श्रुत्वावन्तिका पृच्छति अथ केनेति। यदि नामेयं राजकुमारी प्रद्योतराजपुत्रेण सह सम्बन्धं नेच्छति तदा केन राज्ञा सह सम्बन्धोऽस्यै रोचते ? प्रियसख्यास्ततो गोपनं न युक्तमिति पद्मावत्याः हृद्गतमभिलाषं प्रकाशयन्ती अवन्तिकायाः प्रश्नस्योत्तरं समाधत्ते चेटी—अस्तीति—वत्सराजः वत्सदेशानां राजा उदयनः अस्ति। गुणान् सौन्दर्यदयादाक्षि-

वासवदत्ता—उज्जयिनी के प्रद्योत नाम के राजा हैं। उनकी सेना का परिमाण अधिक होने के कारण उन्हें महासेन नाम से पुकारा जाता है।

दासी—हमारी राजकुमारी उस राजा के साथ अपना सम्बन्ध नहीं चाहती।

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्य गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि। [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलति।]

प्यादीन्। उदयननामधेयस्य वत्सदेशाधिपतेर्गुणेषु लुब्धाऽस्माकं राजकुमारी तमेव भर्त्तारं कामयते इति चेटयभिप्रायः। चेटीमुखात् स्वपतिरूपेणोदयनमेव वरीतुमिच्छन्तीं पद्मावतीमनुनिशम्य स्वचेतसि चिन्तां नाटयति वासवदत्ता—आत्मगतमिति–आर्यपुत्र मत्पतिम्। भर्त्तारं पतिम् प्राप्तुमिति शेषः अभिलषति इच्छति। किमियं पद्मावती मत्प्रणयिनमुदयन स्वपतिं कर्त्तुमिच्छतीति भावः। पुनः मानसे गूढ विचिन्त्य स्वात्मस्वरूपगूहन कुर्वती प्रच्छन्नरूपा वासवदत्ता तदभिलाषकारणं जिज्ञासन्ती प्रकाश पृच्छति चेटीम्—केन कारणेनेति–केन गुणेनेय पुनराकृष्टचेता राजानमुदयन कामयते इति वासवदत्ताप्रश्नाभिप्रायः। उदयने पद्मावत्यभिलषणीयं गुणमाह चेटी—सानुक्रोश इति–सानुक्रोशः दया तेन सहितः दयालुरुदयनः। पत्यौ दयालुत्वमेव पत्न्याप्रेम सम्पादकम् राज्ञो दयालुत्वेन पद्मावती त कामयतीत्यर्थः। दयालुत्वलक्षण पत्युर्गुणमभिनन्दन्ती वासवदत्ता स्वमनसि कथयति—जानामि जानामीति–जानामि जानामीत्यत्र द्विरुक्तिः सम्भ्रमप्रदर्शनार्थम्। अहमपि जनः। एवम् इत्थं। उदयनस्य दयालुत्वेन कारणेन उन्मादितः उन्माद प्रापितः। मया तस्य दयालुत्वं शतशोऽनुभूतम्। तस्य सानुक्रोशत्वकारणेन मादृशोऽपि जनः उन्मत्ततां प्रापितः येन तस्य प्रणयवशगास्मीति भावः।

वासवदत्ता—अब किस राजा से इस समय वे सम्बन्ध करना चाहती है ?

दासी—उदयन नाम के वत्सदेश के राजा हैं, राजकुमारी उनके गुणों को चाहती हैं।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) **अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि।** (प्रकाशम्) **केण कारणेण?** [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन?]

चेटी—साणुक्कोसो त्ति। [सानुक्रोश इति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) **जाणामि जाणामि। अअं वि जण एव्वं उम्मादिदो।** [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।]

उदयनविषयकाभिलाषं दृढतया परीक्षितुं चेटी पद्मावती प्रति पृच्छति—भर्तृदारिके इति–सः पूर्वोक्तः राजा उदयनः विरूपः कुरूपः भवेत् स्यात्। तदा वरिष्यते न वेति शेषः। यदि भवत्याः प्रेमपात्रं राजा रूपहीनः चेत्तर्हि भवत्या वरिष्यते न वा कन्यकाजनस्य दयालुता गुणवत् रूपसौन्दर्यमप्यपेक्षणीयं भवतीति तस्य स्वरूपविषयेऽपि गूढं जिज्ञासते चेटी। चेटीवचनमनुनिशम्य तत्सौन्दर्यगुणाकृष्टा वासवदत्ता तदीयं सौन्दर्यातिशयं निह्नोतुमपारयन्ती सुस्पष्टमाचष्टे—नहि नहीति–निषेधे दाढर्यसूचनाय द्विः प्रयोगः। स विरूपो नास्ति किन्तु दर्शनीय एव दर्शनयोग्य एव। पद्मावती वचनं श्रुत्वा भूयः। स्वप्रियविषयकं किमपि प्रियं श्रोतुमिच्छया सोत्कण्ठं पद्मावती वासवदत्तामनु पृच्छति—आर्ये इति–आर्ये अयि माननीये! कथं त्वं जानासि। केवलं तत्प्रशंसाकरणार्थमेव भवती एव ब्रवीति–आहोस्वित् सत्यताज्ञापकं किमपि प्रमाणमप्यत्र वर्त्तते इति भावः। पद्मावतीवचनं श्रुत्वा आर्यपुत्रस्वरूप-परिचयप्रदानेनात्मस्वरूपाविष्करणं शङ्कमानावन्तिका स्वमनसि एव चिन्त-यति—आर्यपुत्रेति–आर्यपुत्रपक्षपातेन आर्यपुत्रस्य पत्युरुदयनस्य। पक्षपातः प्रेम तेन कारणीभूतेन। समुदाचारः कर्त्तव्यम्। अतिक्रान्तः उल्लङ्घितः।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मेरे आर्यपुत्र को पति बनाना चाहती हैं। (प्रकट) किस कारण से?

दासी—वे सानुक्रोश (दयालु) हैं इसलिये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) जानती हूँ। जानती हूँ। यह जन (मैं) भी इसी प्रकार उन्मत्त बनाया गया था।

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

वासवदत्ता—णहि णहि। दसणीओ एव्व। [नहि नहि। दर्शनीय एव।]

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुव आणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

आर्यपुत्रे प्रेम्णो महिम्ना मया स्वकर्त्तव्यम् विस्मृतम्। एतत्स्वरूपसौन्दर्यं प्रतिपाद्य मया स्वयमेव स्वस्वरूपं प्रकाशतां नीतमतो महदनुचितं कृतमिति। इत्थं विचारानन्तरं प्रश्नस्योत्तरमुपलभ्याह—भवतु इति–भवतु अस्तु दृष्टम् परिज्ञातम्। आकारगुप्तिसाधनमिति मनसि शेषः इत्येवं। विचार्य प्रकाशं ब्रूते—हलेति–उज्जयिनीयः उज्जयिनीवास्तव्यः। जनः लोकः। मन्त्रयते विचारयति कथयन्ति वा। अवन्तिकयोक्तममुमर्थं पद्मावती समर्थयति युज्यते सम्भाव्यते। एष वत्सराजः। उज्जयिनीदुर्लभः विशालापुरी दुष्प्राप्यः। न खलु नो वर्त्तते इत्यर्थः। सौभाग्यम् सौन्दर्यम्। सर्वजनमनोऽभिरामम् सर्वलोकमनोहरम्। दयालुरुदयनो राजा श्वशुरालयं गतो भवेत् उज्जयिनी-वासिनो जनाः तत्सौन्दर्यमालोक्य सर्वतः प्राशशंसुः। तच्छ्रुत्वा तदीयगुणा वर्जितस्वान्ता इयं कथयन्ति–अतो नातीवाश्चर्यकरमिति पद्मावत्यभिप्रायः।

इत्थं पद्मावती चेतसि उदयनविषयकं दृढानुरागं मिथः सखीसंलापेन उत्पाद्य साम्प्रतं तदीयवाग्दानसूचनाभिप्रायेण धात्री प्रवेशयति कविः ततः प्रविशतीति ततः उदयनप्राप्तिप्रवणपद्मावतीहृदयस्थैर्यपरीक्षणानन्तरम् धात्री उपमाता–प्रविशति प्रवेशं करोति। प्रविष्टा च सा धात्री पद्मावतीविवाह-

दासी—राजकुमारी जी ! यदि वे राजा कुरूप हों तो।

वासवदत्ता—नहीं। नहीं वे तो सुन्दर ही हैं।

पद्मावती—आर्ये ! आप कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। किं दाणि करिस्सं? होदु, दिट्ठं। (प्रकाशम्) हला! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि। [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। किमिदानीं करिष्यामि? भवतु, दृष्टम्। हला! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते।]

पद्मावती—जुज्जइ। ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजणमणो-

सम्बन्धनिष्पत्तिं प्रकाशयति—जयतु इति—जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्त्तातामित्यर्थः। जयत्वकारणमाह—भर्त्तृदारिके इति—दत्तासि वाग्रूपेण परस्य जातासीत्यर्थः। दातृप्रतिग्रहीत्रोः परस्परमेकत्रावयतापूर्वको वाङ्निश्चयः वाग्दानम्। वासवदत्ता स्वभर्त्तुरात्मनि तादृशं दृढमनुरागं विचिन्त्य तदीयभार्यान्तरस्वीकरणविषये शङ्कमाना पृच्छति साकूतं धात्रीम्—आर्ये कस्मै इति—आर्ये इति धात्रीं प्रति सम्बोधनम्। आर्ये माअ्ये कस्मै पुरुषायेयं प्रतिपादिता। यस्मै इयं प्रदत्ता तस्य नाम निर्देष्टव्यं भवत्येत्यर्थः। उत्तरमाह धात्री—वत्सराजायोदयनायेति—वत्सदेशाधिपतये उदयनाय प्रतिपादितेयमिति भावः। उदयनेति नाम श्रुत्वा वासवदत्ता तत्कुशलं पृच्छति—अथेति—अथ प्रश्नार्थः। कुशली कुशलयुक्तः। वासवदत्ता प्रश्नस्योत्तरं निवेदयति धात्री—कुशली इति—आगतः उपस्थितः राजभवनमिति शेषः। प्रतीष्टा स्वीकृता। उदयनो राजा समयेऽस्मिन् राजभवनं समायातः। आगत्य च बाला दत्ता पद्मावती स्वीकृतवानित्यर्थः। पत्न्यन्तरस्वीकरणेन स्वविषये निःस्नेहत्वसम्भावनया शङ्कमाना वासवदत्ता ब्रवीति—अत्याहितमिति—अत्याहितम् महद्भयम्।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात से मैंने अपने आचार (प्रोषित भर्त्तृका का नियम) का उल्लङ्घन किया। इस समय क्या करूँ। अच्छा उपाय दिखाई पड गया। (प्रकट) सखि! उज्जयिनी के लोगों का ऐसा ही कहना है।

पद्मावती—यह सम्भव है क्योंकि उदयन उज्जयिनी के लिये दुर्लभ

भिरामं खु शोभग्गं णाम। [युज्यते। न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।]

(ततः प्रविशति धात्री।)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि। [जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि।]

वासवदत्ता—अय्ये! कस्स? [आर्ये! कस्मै?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स। [वत्सराजायोदयनाय।]

पद्मावतीपरिग्रहोऽयं महदनर्थं कारणं भवेदित्यर्थः। धात्री पृच्छति—किमत्रात्याहितमिति—यदि नामोदयनेन पद्मावती परिगृहीता तदात्र किं भयकारणमित्यर्थः। चातुर्येण रहस्यं गोपयन्ती वासवदत्ता कथयति—न खलु किञ्चिदिति—तथा तेन प्रकारेण ब्रह्मचारिसूचितेन सन्तप्य सन्तापं कृत्वा उदासीनः विरक्तः स्नेहशून्यः भवति अभूत्। अन्यत्तु किमपि भयं नास्ति—एतदेव किल भयं वर्त्तते—यद्राज्ञोदयनेन बहुशः विलप्य इदानीं तद्विस्मृत्य-पद्मावती प्रतिगृह्णता नूनम् स्नेहरहितेन वासवदत्तायां सञ्जातमिति विचार्य मया तथोक्तमिति भावः। वासवदत्तया सम्भावितमत्याहितं निषेधन्ती धात्री ब्रवीति—आर्ये आगमप्रधानानीति—आर्ये अयि मान्ये अवन्तिके आगम-प्रधानानि—आगमः शास्त्रवचनं प्रधानं मुख्यो येषु तानि। महापुरुषहृदयानि

नहीं है सौन्दर्य तो वही है जो सभी लोगों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर ले।

(तदनन्तर धात्री प्रवेश करती है)

धात्री—राजकुमारी की जय हो। राजकुमारी जी! आप दे दी गईं।

वासवदत्ता—आर्ये! किसे (दे दी गई)

धात्री—वत्सराज उदयन को।

वासवदत्ता—अह कुसलो सो राआ ? [अथ कुशली स राजा ?]

धात्री—कुसली सो आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ। [कुशली स आगतः। तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।]

वासवदत्ता—अच्चाहिदं ? [अत्याहितम्।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? [किमत्रात्याहितम् ?]

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि। तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि त्ति। [न खलु किञ्चित्। तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति।]

श्रेष्ठजनचित्तानि सुलभपर्यवस्थानानि सुलभं सुकरं पर्यवस्थानानि विकार-परित्यागद्वारा स्वरूपेणावस्थितिर्येषां तानि भवन्ति जायन्ते। समयमहिम्ना विकृतमानसाः महान्तः स्वीयां पूर्वां प्रकृतिं न कदापि त्यजन्तीत्यर्थः। पुनः स्वविषये तदीयप्रेमदाढर्य परीक्षितुकामा वासवदत्ता धात्रीं पृच्छति—आर्ये इति मान्ये तत्र श्रीमानुदयनः स्वत एव पद्मावतीं याचितवान् किम्। धात्री उत्तरयति—नहि नहीति—अन्यप्रयोजनेन कारणा-न्तरेण। इह राजभवने आगतस्य सम्प्राप्तस्य अभिजनविज्ञानवयोरूपम् अभिजनश्च कुलम् विज्ञानं च वीणावादनरूपम् वयः नूत्नं यौवनम् रूपं सौन्दर्यं चैषां समाहारस्तत्। केनापि कारणेन राजभवने सम्प्राप्तस्योदयनस्य कौलीन्यादि गुणं दृष्ट्वा महाराजो दर्शकः स्वभगिनीं पद्मावतीं तेनाप्रार्थितामपि

वासवदत्ता—अब वे राजा सकुशल हैं।

धात्री—वे सकुशल वहाँ उपस्थित है। उन्होंने राजकुमारी को स्वीकार भी कर लिया है।

वासवदत्ता—बहुत भय है।

धात्री—इसमें महाभय की क्या बात है ?

वासवदत्ता—और कोई भय की बात तो नही। इस प्रकार सन्ताप कर उदासीन जो हो रहे हैं।

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति । [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वारिदा ? [आर्ये ! स्वयमेव तेन वारिता ?]

धात्री—णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणवओरूअं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा । [नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।]

तस्मै स्वयं सादरं समर्पितवानिति भावः। धात्र्या प्रतिपादितं पद्मावती प्राप्तिप्रकारमनुनिशम्य तद्विषयिणीं स्वकीयां मानसीं शङ्कामपकुर्वाणा वासवदत्ता ससन्तोषं ब्रवीति एवमिति एवम् इत्थम् अत्र पद्मावतीग्रहणविषये अनपराद्धो निर्दोष इत्यर्थः । प्रार्थनं विनैव स्वयमुपागतां साक्षाल्लक्ष्मीमिव पद्मावतीं प्रतिगृह्णन्नार्यपुत्रः दोषभाजनं नास्तीति भावः । एतावता ग्रन्थेन पद्मावत्या उदयनगतं रतिभावं प्रतिपाद्य उदयनस्यापि पद्मावतीं प्रति–अनुरागविशेषं संसूच्य दम्पत्योरनयोश्चालौकिकं परस्परं प्रेमबीजारोपणं कविना दर्शितम् ।

धात्री—आर्ये ! महापुरुषों के हृदय शास्त्र वचन को मुख्य रूप से मानने वाले होते हैं । विकारग्रस्त हो जाने पर भी सुलभतया प्रकृतिस्थ हो जाया करते हैं ।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उन्होंने स्वयम् ही पद्मावती का वरण किया ?

धात्री—नहीं नहीं । वे दूसरे कारण से यहाँ आये हुये थे उनके प्रशस्त कुल वीणा वादन रूप प्रशस्त विज्ञान तरुण अवस्था तथा मनोहर रूप को देख कर महाराज ने स्वयं ही उन्हें पद्मावती सौंप दी ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्व ! अणवरद्धो दाणि एत्थ अय्यउत्तो ! [एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।]

(प्रविश्य)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि । [त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं । [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

इदानी विवाहकौतुकं सूचयितुं तदर्थं धात्री च त्वरयितुमपरस्याश्चेटयाः प्रवेशमाह कविः-प्रविश्येति । कृतप्रवेशा चेटी ब्रूते त्वरतां त्वरतामिति-अतिशयद्योतनार्था द्विरुक्तिः । अद्य एव अस्मिन्दिने एव । शोभनम् सुन्दरं मङ्गलकार्यानुकूलम् नक्षत्रं तारा । कौतुकमङ्गलं वैवाहिकमङ्गलसूत्रम् । भट्टिनी महाराज्ञी । नूनमद्यतन एव दिवसे मङ्गलकार्यानुकूलं सुन्दरं नक्षत्रं वर्त्तते अतः अस्मिन्नेव दिवसे पद्मावत्याः करे वैवाहिकमङ्गलोचितं मङ्गलसूत्रं बन्धनीयमिति-तदर्थं तत्र कौतुकागारे प्रवेशनीया पद्मावतीत्यस्मदीयस्वामिन्या आदेश इत्यर्थः । पद्मावतीविवाहसमयस्यासन्नत्वं चेटीवचनेन सम्भाव्य

वासवदत्ता—ऐसा ! तब तो आर्यपुत्र इस समय अपराधी नहीं ।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

दासी—आर्ये ! शीघ्रता करें शीघ्रता करें । आज ही सुन्दर नक्षत्र है आज ही विवाह कौतुक का मङ्गल सूत्र राजकुमारी को बाँधना है ऐसा हमारी महारानी आज्ञा देती हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) जैसे जैसे यह उतावलापन कर रही है वैसे वैसे मेरे मन को शून्यता की ओर ले जा रही है ।

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्तृदारिका।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

—:०:—

सपत्नीसमुचितं महामोहं नाटयन्ती वासवदत्ता स्वचित्ते कथयति—अन्धी-करोति अनन्धमन्धं करोतीति अन्धीकरोति शून्यतादशां नयति यावद्यावदियं चेटी धात्री त्वरयति तावत्तावन्मदीयं हृदयं विचारशून्यतादशां प्रयाती-त्यर्थः। चेटीवचनात्तत्र पद्मावतीं गन्तुं प्रेरयन्ती धात्री ब्रवीति एतु एतु इति। द्विरुक्तिरियं गमनत्वरायामादरे च। राजकुमार्या मन्त्रिनिर्दिष्टेनाध्वना गम्यतां कौतुकागारमित्यर्थः। रङ्गमञ्चात्मकलानां निर्गमनं दर्शयति कविः निष्क्रान्ता इति। इत्थं पद्मावत्याः कौतुकागारगमनं प्रस्तुत्य द्वितीयस्याङ्कस्य समाप्तिं सूचयति। द्वितीयोऽङ्क इति—

इति श्रीस्वप्नवासवदत्त व्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः

—:०:—

धात्री—तो राजकुमारी पधारें पधारें।

(सब निकल जाते है)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त ॥

द्वितीय अंक की भाषाटीका समाप्त



तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहमोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं । जाव दाणि भाअदेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि । (परिक्रम्य) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो जा उववि‌सामि । (उपविश्य) धण्णा ख चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ । ण खु अहं वाणाणि पदित्तजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ ।

तृतीयोऽङ्क इति । द्वितीयाङ्कसमाप्तेरनन्तरम् तृतीयोऽङ्कः उपक्रम्यते इति शेषः । स्वप्रियतमस्योदयनस्य पद्मावत्या समं विवाहसम्बन्धं निश्चितमवगत्य तद्धेतुक चिन्तानुभावं नाटयन्त्याः पद्मावती कौतुकमालिकागुम्फने नियोक्ष्यमाणायाः वासवदत्तायाः समुचितं प्रवेशपूर्वकं तन्मनोगतं वितर्कं वर्णयति कविः—विवाहामोदेति–विवाहामोदसंकुले विवाहस्य पद्मावतीपरिणयस्य आमोद. आनन्दः येषां तादृशैः बान्धवजनैः संकुले परिपूर्णे अन्तःपुरचतुःशाले चतुःशालम् हि परम्पराभिमुखीनां शालानां चतुष्टयेन संयुक्तं सदनम् । अन्त.पुरस्य चतु.शालम् तस्मिन् । प्रमदवनम् अन्तःपुरविहारोचितमुद्यानम् । भागधेयनिर्वृत्तम् स्वीयदुर्दैवलब्धम् । दुःखम् आर्यपुत्रविरहजन्य-

---

(तदनन्तर चिन्तित अवस्था में वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाहोत्सव के हर्षोल्लास से परिपूर्ण अन्त.पुर (रनिवास) की चौशाला में पद्मावती को छोड़ कर यहाँ अन्तःपुर की वाटिका में इसलिये आई हूँ कि, किसी प्रकार दुर्भाग्य से उत्पन्न हुये इस दु.ख से मन को बहलाऊँ । इन अनर्थ के लिये क्या कहूँ कि इस समय आर्यपुत्र भी दूसरे के हो रहे हैं, अच्छा बैठती हूँ (बैठ कर) चकवी भी धन्य है जो अपने प्रियतम

[विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिवृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावत् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।]

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी ।)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इय चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डि-

कष्टम् । विनोदयामि अपनयामि । परकीयः अन्यदीयः पद्मावतीपतिरिति भावः । चक्रवाकवधूः कोकभार्या । धन्या पुण्यवती । अन्योन्यविरहिता परस्परविप्रयुक्ता । मन्दभागा अल्पभाग्या । पद्मावतीपरिणयप्रसङ्गेनागत आर्यपुत्रो मम नयनगोचरतां गच्छेदित्याशया जीवामीत्यर्थः । पद्मावती परिणयौपयिकीं मङ्गलस्रजं वासवदत्तया निर्मापयितुमीहमानायाश्चिरं तन्मार्गणं कुर्वत्या गृहीतपुष्पायाश्चेटयाः प्रवेशमाह—तत इति—इदानीं वासवदत्तान्वेषणपरायणायाश्चेटयाः मानसिकं वितर्कमाह—क्व न खलु गतेति—अवन्तिका अवन्तीभवा । अम्मो विस्मयद्योतकमव्ययपदम् । चिन्ताशून्यहृदया ध्याननिर्बोधचित्ता । नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा तुषारावृतेन्दुरेखा । अमण्डितं भद्रकम् अनलङ्कृतमपि रमणीयम् । वेषं नेपथ्यम् । धारयन्ती

से वियुक्त हो जाने पर प्राण त्याग देती है मैं निश्चय ही अपना प्राण इसलिये धारण कर रही हूँ कि आर्यपुत्र के दर्शन होंगे इसी अभिलाषा से अभागिनी बन कर जी रही हूँ ।

(तदनन्तर फूलों को लिये हुये दासी का प्रवेश)

दासी—आर्या अवन्तिका कहाँ चली गईं । (चारों ओर घूम कर और देख कर) अरे ये तो चिन्ता के कारण शून्य होकर कुहरे से आवृत चन्द्रिका के समान अलंकार के न होने पर भी सुन्दर वेष धारण करती हुई प्रियङ्गु

दभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा। जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये! अवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि। [क्व नु खलु गता आर्या अवन्तिका? अम्भो! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहत-चन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकवेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! आवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।]

वासवदत्ता—किं णिमित्तं? [किं निमित्तम्?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या। [अस्माकं भट्टिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम्?

दधती। प्रियङ्गु शिलापट्टके फलिनीपाषाणखण्डे उपविष्टा संस्थिता। उपसर्पामि समीपं गच्छामि। कः काल कियान् समयः। अतीत इति शेषः। अन्विष्यामि गवेषयामि। बहोः कालादन्विष्यन्ती साम्प्रतमत्र भवतीं दैवयोगात् प्राप्तवत्यस्मि। चेटीवचनं श्रुत्वा वासवदत्ता पृच्छति—किं निमित्तमिति—मदन्वेषणस्य किं प्रयोजनमित्यर्थः। चेटी उत्तरयति—अस्माकं भट्टिनीति—महाकुलप्रसूता महाकुले प्रसूता उत्कृष्टकुलसम्भूता। स्निग्धा स्नेहसंयुक्ता। निपुणा तत्कार्ये कुशला। कौतुकमालिकाम् विवाहोपयुक्तस्रजम्। गुम्फ ग्रथनात्।

लता के नीचे शिलापट्ट पर बैठी हुई हैं तो इनके पास चलती हूँ (पास जाकर) आर्ये अवन्तिके! कितना समय बीत गया, मैं आपको ढूंढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किसलिये?

दासी—हमारी स्वामिनी कहती हैं कि आप यह कुल प्रसूता है दयालु तथा कार्यकुशल हैं अतः आप ही इस विवाह मालिका को गूँथें।

वासवदत्ता—किसके लिये माला गूँथनी है।

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए । [अस्माकं भर्तृदारिकायै]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो अकरुणा खु इस्सरा । [एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः]

चेटी—अय्ये ! मा दाणि अण्णं चिन्तिअ । एसी जामादुओ मणिभूमिए ह्णाअदि । सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या । [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एष जामाता मणिभूम्या स्नायति शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।]

चेटीवचः श्रुत्वा वासवदत्ता मनसि विचारयति-एतदपीति । एतदपि मालाग्रथनकार्यमपि । मया कर्त्तव्यम् सम्पादनीयम् आसीत् । दैवादद्य मम प्रियः पद्मावत्याः पतिर्भविष्यतीति कथं नाम पारणीयम् मालां ग्रथितुमित्याशय । अकरुणाः निर्दयाः । खलु निश्चयेन । ईश्वराः देवाः समर्था लोका वा । ममानभिलषितमिदं कार्यं मद् द्वारा सम्पादयितुमिच्छन्तीति ते नूनं स्वकीयां निर्दयतां मयि प्रकटयन्तीति भावः । अवन्तिकां चिन्तयन्तीमभिलक्ष्य चेटी ब्रूते—आर्ये इति । इदानीम् अस्मिन् विवाहकाले । अन्यत् अपरम् विषयान्तरं वा । मा न कालक्षेपः कार्यं इति शेष. । अत्र मा योगे चिन्तयित्वेति क्त्वाप्रत्ययान्तं पदमपाणिनीयम् । एष समीपस्थः जामाता वरः मणिभूम्यां मणिगृहे स्नायति स्नानं करोति । मङ्गलस्नानान्तरमेव धारणीया मङ्गलमालिकातः सत्वरमेव ग्रथ्यतां भवत्येति चेटयभिप्रायः । दुर्दैवादवसराभावाच्च

दासी—हमारी राजकुमारी के लिये ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अभी मुझे यह भी करना है, अहो समर्थ लोगों में दया नहीं होती ।

दासी—आर्ये ! इस समय आप सब प्रकार की चिन्ता छोड़ देवें । स समय वर मणिगृह में स्नान कर रहे हैं । इसलिये शीघ्र इसे गूँथे ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं। (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम्। हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी—आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ। [आम्, दृष्टो भर्तृदारकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च।]

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो। [आर्ये, भणामि तावन् नदृशो दृष्टपूर्वः।]

विचारं कर्तुमपि न पारयामीत्याहात्मगतम् वासवदत्ता—न खल्विति–अन्यत् विषयान्तरम् चिन्तयितु विचारयितुं न शक्नोमि–न पारयामि। अतः स्वभर्तृ-विषयकं वृत्तं श्रोतुमुत्कण्ठमाना प्रकटार्थं ब्रूते–हलेति। किमिति–अपि नाम जामातुर्दर्शनं ते जातम्। चेटी उत्तरयति—आमिति–आमिति स्वीकृतिवाचक-मव्ययपदम्। राजकुमार्याः स्नेहादस्मदीयकौतूहलेन च जामातुर्दर्शनसौभाग्यं लब्धमिति चेटयुक्तिः। तद्दर्शने हि राजकुमार्यामस्माकं स्नेहोऽस्मदीयदर्शनो-त्कटाभिलाषश्चेत्युभयं कारणमित्यर्थः। तत्स्वरूपं पृच्छति वासवदत्ता—कीदृशो जामातेति–सुरूपो वा कुरूपो वा सः। अवन्तिकाकौतूहलवर्धनाया-स्पष्टं कथयति चेटी—आर्ये इति–तावच्छब्दो वाक्यालङ्कारे। दृष्टपूर्वः

वासवदत्ता—इस समय मैं कुछ भी नहीं कर सकती (प्रकट) अरी सखि ! क्या तुमने वर को देखा ?

दासी—हाँ राजकुमारी के स्नेह के कारण तथा स्वयं अपने में उत्पन्न कुतूहल के कारण मैंने जामाता देखा।

वासवदत्ता—बता। जामाता कैसे हैं ?

दासी—आर्ये ! मैं कहती हूँ कि ऐसा पुरुष इससे पहले कभी नहीं देखा था।

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण, भण, कि दर्शनीयः ?]

चेटी—सक्कं भणिदु सरचावहीणो णाम आमदेवो त्ति। [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता—होतु एत्तअं। [भवत्वेतावत् ।]

चेटी - किण्णिमित्तं वारेसि ? [कि निमित्त वारयसि ?]

वासवदत्ता---अजुत्तं परपुरुससङ्किणणं सोदुम् । [अयुक्तं परपुरुष-सङ्कीर्तनं श्रोतुम ।]

पूर्वं दृष्ट इति न पूर्वंदृष्ट इति न दृष्टपूर्वः । जामातृसदृशो न कुत्रापि पूर्वं दृष्टोऽभूदित्यर्थः । औत्सुक्य प्रदर्शयन्ती वासवदत्ता पृच्छति–हला भणेति । श्रवणत्वरया भणेत्यत्र द्विरुक्तिः । दर्शनीयः द्रष्टु योग्यः । स्फुटं कथय शीघ्रम् । स किं सुन्दर इत्यर्थः । अवन्तिकाप्रश्ने चेटयुत्तरं ददाति–शक्यमिति । शरचापहीनः बाणकार्मुकरहितः । कामदेवः किन्तु बाणकार्मुकधरो भवति अयं तु ताभ्यां विहीनोऽपि सौन्दर्यातिरेकात्तथात्वेनोपलक्ष्यते इति भावः । चेट्या वचनमनुनिशम्य वासवदत्ता ब्रवीति—भवत्वेतावदिति–भवतु अलम् । एतावत् इयत् वर्णनमिति शेषः । पर्याप्तमियत्तत्स्वरूपवर्णनम् । नतोऽधिकं किमपि वर्णय । इत्थं निषेधयन्तीमवन्तिकां पृच्छति चेटी—किं निमित्तमिति–किं निमित्तम् किमर्थं वारयसि निषेधसि । जामातृवर्णन कुर्वती मां किमर्थं निषेधसीत्यर्थः । चेट्याः प्रश्नं समाधत्ते वासवदत्ता—अयुक्तमिति–

वासवदत्ता—सखि ! शीघ्र बता । क्या वो सुन्दर हैं ।

दासी—केवल इतना ही कह सकती हूँ कि वे बाण धनुष के बिना दूसरे कामदेव हैं ।

वासवदत्ता—अच्छा बस । इतना ही । आगे कुछ मत कहो ।

दासी—आप आगे कहने के लिये मना क्यों कर रही हैं ।

वासवदत्ता—इसलिये कि प्रोषितपतिका को परपुरुष का वर्णन सुनना अनुचित है ।

चेटी—तेण हि गुह्यदु अय्या सिग्घं। [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम्।]

वासवदत्ता—इअं गुह्यामि। आणहि दाव। [इयं गुम्फामि। आनय तावत्।]

चेटी—गह्णदु अय्या। [गृह्णात्वार्या।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—अविहवाकरणं णाम। [अविधवाकरणं नाम।]

परपुरुषसंकीर्त्तनम्–अन्यजनवर्णनम्। श्रोतुं आकर्णयितुम् अयुक्तम् अनुचितम्। परपुरुषवर्णनं पतिव्रताभिर्नाकर्णनीयमेतावदेव पर्याप्तं नाधिकं श्रोतुमिच्छामीत्यर्थः। यद्येवं तर्हि न वर्णयिष्यामि। मालिकाग्रथनम् अवश्यमन्तरमेव कार्यमिति कथयति चेटी तेन हीति तेन हेतुना। गुम्फतु ग्रथ्नातु। तत्कार्ये समुद्यता वासवदत्ताह —इयमिति–एषाहं मङ्गलस्रजं गुम्फितुमुद्यतास्मि आनीयतां तदर्थं कुसुमाद्युपकरणमिति भावः। चेटी पुष्पादिसामग्रीं समर्पयति गृह्णात्वार्येति गुम्फनार्थं प्रदत्तेषु पुष्पेषु किमप्यतिरिक्तं वस्तुजातं दृष्ट्वा अवन्तिका पृच्छति–इदमिति। चेटी उत्तरयति अविधवाकरणमिति–अविधवाकरणं वैधव्यानुत्पादकम्। नाम प्रसिद्धौ। बहुशः अनेकशः। गुम्फितव्यम् ग्रथनीयम्। पुनः तादृशं वस्त्वन्तरं दृष्ट्वा प्रकटरूपेण पृच्छति वासवदत्ता इदमिति। चेटी उत्तरं

दासी—इस कारण आर्या शीघ्र ही माला गूँथें।

वासवदत्ता—अभी गूँथ रही हूँ पहले पुष्प तो दो।

दासी—ये हैं फूल। आर्या इसे ग्रहण करें।

वासवदत्ता—(कुछ हटाते हुये देख कर) इस औषध का क्या नाम है।

दासी—यह सौभाग्य उत्पन्न करने वाली है।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुह्मिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ। (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च। इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम। [सपत्नीमर्दनं नाम]

वासवदत्ता—इदं ण गुह्मिदव्वं। [इदं न गुम्फितव्यम्।]

चेटी—कीस ? [कस्मात् ?]

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।]

ददाति-सपत्नीमर्द्दनमिति सपत्नी मर्दयतीदभौषधम्। सपत्नीद्वेष. किमपि कर्तुं न शक्नोतीत्याशयः। पद्मावतीसपत्नीभविष्यन्त्या ममैतेन वस्तुना मर्द्दनं भविष्यतीति तत्गुम्फनं सहसा निषेधति वासवदत्ता—इदमिति—सपत्नीमदमर्द्दनं नामेदमौषधं मया गुम्फितुं न युज्यते इत्यर्थः। चेटी पृच्छति—कस्मादिति—एतस्याऽगुम्फने किं कारणम्। वासवदत्ता उत्तरयति—उपरतेति—तस्य उदयनस्य भार्या पत्नी। उपरता मृता। तत् तस्मात्कारणात् निष्प्रयोजनम् निरर्थकम्। उदयनपत्न्याः वासवदत्तायाः मृत्युः सञ्जात इति सपत्न्या अभावादौषधस्यात्र गुम्फने प्रयोजनं किमपि नास्तीति भावः।

वासवदत्ता—(मन ही मन) इसे मेरे तथा पद्मावती के लिये अधिक से अधिक संख्या में गूँथना चाहिये। (प्रकट) अच्छा ! इस औषध का क्या नाम है ?

दासी—इसका नाम सपत्नोमर्द्दन है।

वासवदत्ता—तो इसे नहीं गूँथना चाहिये।

दासी—किस कारण से।

वासवदत्ता—इसलिये कि पत्नी मर चुकी है जब सपत्नीं नहीं है तो इसको गूँथना भी बेकार है।

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरतु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालां प्रवेश्यते।]

वासवदत्ता—अइ! वदामि, गह्ण एदं। [अयि! वदामि; गृहाणैतत्।]

चेटी—सोहणं। अय्ये! गच्छामि दाव अहं। [शोभनम्। आर्ये! गच्छामि तावदहम्।]

मङ्गलस्रङ् निष्पत्तये गतां प्रथमा चेटी विलम्बं कुर्वती विचार्य तां त्वरयितुमपरायाश्चेटया प्रवेशमाह—प्रविश्येति–तदुक्तिमाह त्वरतामिति भृशार्थे द्विरुक्तिः। अविधवाभिः सौभाग्यवतीभिः। अभ्यन्तरचतुःशालम् अभ्यन्तरे अन्तःपुरे यच्चतुःशालम् अन्तःपुरस्थरचितविवाहमण्डपम्। प्रविश्यते प्रविष्टः कार्यते। गुम्फनकार्यं पूरितवती वासवदत्ता ब्रवीति—अयीति—अयि–कोमलामन्त्रणे इद पदम्। वदामि कथयामि। गृहाणैतत्-मत्कार्यं पूर्णम्। भवतीभिर्गृह्यतामियं स्रक्।

तां मङ्गलस्रजं गृहीत्वा तत्सुंदरता प्रशंसन्ती ततोजिगमिष्यन्ती द्वितीयचेटयाह—शोभनमिति–भवत्या गुम्फितेय स्रङ्मनोहारिणी साम्प्रतं गम्यते मयेत्यर्थः। उभे निष्क्रान्ते इति–अनेन द्वयोश्चेटयोरेव ततो निर्गमनं सूच्यते न वासव-

---

(दूसरी दासी का प्रवेश)

दूसरी दासी—आर्या जल्दी करें जल्दी। ये दामाद सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ चतुःशाला के भीतर ले जाये जा रहे हैं।

वासवदत्ता—अरी! मैं तो कह रही हूँ। इसे ले लो।

दासी—बहुत अच्छी माला है। आर्ये! अब मैं इसे लेकर जा रही हूँ।

(उभे निष्क्रान्ते ।)

वासवदत्ता—गदा एसा। अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो! अविदा! सय्याए। मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि। [गतैषा। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। अविदा! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे।]

(निष्क्रान्तः)

इति तृतीयोऽङ्कः।

—:*:—

दत्तायाः। विवाहोत्सवे जनसम्मर्दे तस्याः गमनस्यानौचित्यादिति। द्वयोश्चेटयोर्गमनानन्तरं वासवदत्ता मनसि ब्रवीति—गतैषेति अहो अत्याहितम् हन्त कष्टम् आर्यपुत्रोऽपि—मद्भर्तापि—परकीय. पद्मावत्याः पतिः संवृत्तः। मयि प्रीतिमानपि साम्प्रतं पद्मावतीप्रिय इति कष्टमिदं कथं सहिष्ये—अतः शय्यामधिशय्य कष्टमिदमपनेष्यामि। यदि दैवान्निद्रामधिगमिष्यामि। दुःखापहन्त्री निद्रैव मे शरणमित्यथः। परन्तु सापि मत्कृते दुर्लभेति प्रलपन्ती वासवदत्ता निर्गता। इत्याह—निष्क्रान्तेति। अङ्कसमाप्तिं दर्शयति तृतीयोऽङ्क इति।

इतिश्री स्वप्नवासवदत्तव्याख्यायाम् तृतीयोऽङ्कः।

—:*:—

(दोनों चली जाती है)

वासवदत्ता—अच्छा दासी चली गई। कहो कितने दुःख की बात है कि आर्यपुत्र अब दूसरे के हो गये। तो क्यों न शय्या पर लेट कर ही यदि किसी प्रकार निद्रा आ जाय तो अपने दुःख का अपमोदन करूँ।

॥ तीसरे अङ्क की भाषा टीका समाप्त ॥



चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वय अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणीं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो

तृतीयाङ्के वत्सराजोदयनस्य पद्मावत्या सह विवाहसम्बन्धः सूचितः । इदानीं परस्परं तयो रतिभावपोषं वासवदत्ताविषयकं प्रणयमप्यनुसूतमुदयनस्य दर्शयिष्यन् तदनुरूपां संवादभङ्गी घटयितुं सपरिबारपद्मावत्युदयनप्रवेशं च सूचयितुमङ्कारम्भे आदौ विदूषकस्य ततश्चेष्टयाः प्रवेशं दर्शयति कवि—ततः प्रविशतीति विदूषकः–विदूषकः विचित्रवाग् वसन्तादिपदव्यपदेश्यः हास्यरसप्रधानः पात्रविशेषः—अयं च भोजनंप्रियो ब्राह्मणो राज्ञः सुहृत्त्वेनैव सर्वत्र नाटकेषूपवर्ण्यते—तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥

निष्पन्ने राज्ञो विवाहे विदूषकस्यास्य हर्षो युज्यते एवातो तस्यैव मानसो-

---

(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(हर्ष के साथ) यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने माननीय वत्स राजा उदयन के अभीष्ट विवाह मङ्गल से शोभित काल को देखा । भला कौन ऐसा जानता था कि हम लोग उस प्रकार के राज्यापहरण तथा

सुट्टु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि । जहताद-सोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि ! भो ! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च । [भोः ! दिष्टया तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाह-मङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः । भोः ! को नामैतज्जानाति–तादृशे वयमनर्थ-सलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति । इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुर-दीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सर-स्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते । एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्टु

दृगारमाह–सहर्षमिति । दिष्टया दैवेन सौभाग्येनेति यावत् । तत्र भवतः मान्यस्य । अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः अभिप्रेतं यद् विवाहमङ्गलं तेन रमणीयः अभीष्टोद्वाहभद्रसुन्दरः । तादृशे तत्सदृशे महाभयंकरे । अनर्थसलिला-वर्ते अनर्थ एव सलिलावर्त्तस्तस्मिन् राज्यापहार लक्षण दुःखाम्भोभ्रमे प्रक्षिप्ताः राज्यापहरणवासवदत्तादाहादिरूपे निपातिताः । पुनः भूयः उन्म-ङ्क्ष्याम उन्मुक्ता भविष्यामः । अनर्थसलिलावर्त्तादुन्मज्जन प्रतिपादयति—इदानीमिति–इदानीम् अधुना । प्रासादेषु राजभवनेषु उष्यते वासःक्रियते । अन्तः पुरदीर्घिकासु अन्तःपुरस्य या दीर्घिकाः तासु शुद्धान्तवापीषु स्नायते स्नानं क्रियते । प्रकृतमधुरसुकुमाराणि प्रकृत्यामधुराणि प्रकृतिमधुराणि च तानि सुकुमाराणि स्वभावमिष्टकोमलानि । मोदकखाद्यानि मोदकखाद्यास्तद्रूपाणि लड्डुकादीनि खाद्यानि भोज्यवस्तूनि । खाद्यन्ते भक्ष्यन्ते इति हेतोः नास्ति यत्र आप्सरोभि सह-वासो यत्र एतादृशः कुरुवासः उत्तरा कुरवो नाम देवभूमयः तत्र वासः अवस्थानम्

वासवदत्ता के विनाश काल जैसे संकटरूपी जल के भँवर में फेंके जाकर भी पुनः जीवित बच सकेंगे । देखो तो इस समय महलों में निवास करते हैं, अन्तःपुर की बावलियों में स्नान करते है, स्वभावतः मीठे एवं सुकोमल मोदकादि खाद्य पदार्थों को खाते हैं इसलिये यद्यपि यहाँ अप्सरा नहीं हैं फिर भी उत्तरकुरु देवभूमि विशेष के निवास का अनुभव मुझे हो रहा है । किन्तु एक बहुत बड़ा दोष यही है कि मेरा आहार भलीभाँति पच नहीं रहा है । इतना ही

न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य! वसन्तअ! को कालो तुमं

मया अनुभूयन्ते। स्वर्गीयाणि सुखानि सर्वाणि उपलभ्यन्ते इत्यर्थः। एता-दृक्सुखविशेषानुभवेऽपि अतिमात्रभोजनवशादात्मनो दुःखं दर्शयति—एक इति। दोषः विकारः। समुत्पन्न इति शेषः। समाहारः मद्भुक्तं भोजनम्। सुष्ठु सम्यक्तया न परिणमति परिपाकं न गच्छति। सुप्रच्छादनायाम् सु सुन्दरं कोमलं प्रच्छादनमास्तरणं यत्र तस्याम्। यथा येन वातशो-णितम् वातरक्तनामा रोगविशेषः। अभितः समन्ततः इव यथा वाक्यसौन्दर्यार्थमेतत्पदम। देहमभिव्याप्येत्यर्थः। वर्तते उपस्थितोस्ति। इति एवम् पश्यामि अनुभवामि। आमयपरिभूतम् रोगाक्रान्तम् अकल्यवर्तं कल्यवर्तं प्रातःभोजनम् नास्ति यत्र तत् च प्रतिभोजनाभावः च तेन सुखं आनन्दो न नास्तीत्यर्थः। युज्यते एव तावदोजीर्णग्रस्तस्य भोजनभट्टस्य विदूषकस्या भययुक्तता। स्वस्वामिन्याज्ञया नूतन जामातुः राज्ञः प्रवृत्तिमधि गन्तुमिच्छन्त्यातदर्थं राज्ञो मित्रं विदूषकमविष्यन्त्या साम्प्रतं चेटयाः प्रवेश-मनुरूपं दर्शयति कविः ततः प्रविशतीति—प्रविश्य च चेटी विदूषकदर्शनो-

नहीं सुकोमल आस्तरण से युक्त बिछौने पर सोने पर भी निद्रा नहीं आती। अपने चारों ओर वातरक्त की बीमारी जैसा दृश्य देख रहा हूँ। ओह रोगाक्रान्त होने से तथा प्रातःकालिक कलेवा न करने के कारण आनन्द कहाँ—

(तदनन्तर दासी का प्रवेश)

दासी—आर्य वसन्तक कहाँ चले गये (घूम कर इधर उधर देख कर)

अण्णेसामि। [कत्र नु खलु गतआर्यवसन्तकः? अहो! एष आर्यवसन्तकः निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि?]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किं णिमित्तं भद्दे! मं अण्णेससि? [किं निमित्तं भद्रे! मम अन्विष्यसि?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति।
[अस्माक भट्रिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति]

त्सुकता प्रकटीकरोति कुत्र न खलु इति। न खलु शब्दो वाक्यपूरणाय। वसन्तक इति विदूषकस्याभिधानम्। आर्य इति तद्विशेषणार्थम्। तदन्वेषणार्थमितस्ततः परिभ्रम्य कुत्रचित् स्थाने तं दृष्ट्वा हर्षोक्ति दर्शयति। अहो एष वसन्तक इति। पुनः समीपं गत्वा ब्रवीति आर्य इति कः कालः कियान् समयः व्यतीत इति शेष। त्वामन्विष्यामि चिरादहं भवतोऽन्वेषणे संलग्नास्मीति भावः। एवमात्मनोऽन्वेषणे व्यग्रा चेटी विलोक्य कारणं पृच्छति विदूषकः किं निमित्तमिति—भद्रे कल्याण शीले किं निमित्तम् किमर्थम्। अन्विष्यसि अन्वेषण करोषि। अन्वेषणकारणं कथयेत्यर्थः। अन्वेषणकारणमाह चेटी—अस्माकमिति—भट्रिनी अकृताभिषेका राजपत्नी। जामाता दुहितुः पतिः। स्नात अपि किं स्नानं कृतवान्। इदं च त्वत्त एव ज्ञातुं शक्यते अतस्त्वामहमन्विष्यमीत्यर्थः। निजान्वेषणकारणं चेटया जामातृस्नानमुद्दिश्य कृतं

अहाः यह हैं आर्य वसन्तक! (पुनः पास जाकर) कितनी देर हुई मैं आपको ढूंढ़ रही हूँ।

विदूषक—भद्रे! मुझे किसलिये ढूंढ़ रही हो?

दासी—हमारी मालकिन पूछ रही हैं, कि क्या जामाता ने स्नान कर लिया।

विदूषकः—किं णिमित्तं भोदि पुच्छति । [किं निमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति। [किमन्यत् सुमनोवर्णकमानयामीति ।]

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअं । [स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि मोअणं ? [किं निमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

प्रश्नं च श्रुत्वा विदूषकः प्रश्नयति—किं निमित्तमिति-भवती माननीया किं निमित्तं किमर्थम् पृच्छति। किं प्रयोजनमुद्दिश्यते स्वामिन्या कृतोऽयं प्रश्न इति भावः। चेटी उत्तरयति—किमन्यदिति-अन्यत् किम् वक्ष्यमाणमिदमेव निमित्तम् सुमनोवर्णकम् सुमनश्च वर्णकं चेत्यनयोः समाहार. सुमनः शब्देन पुष्पस्रक् लक्ष्यते। वर्णकशब्देन च चन्दनं गृह्यते। आनयामि आननीयमिति तदर्थः। यदि नाम, जामातुः स्नानं सम्पन्नं चेत्तदा तत्कृते धारणार्थम् पुष्पस्रक् शरीरे अनुलेपनार्थं च चन्दनं मया आनेतव्ये इति भावः। तत्कथ्यतां याथातथ्येन त्वया। निशम्य चेटीवचनं विदूषक आह—स्नात इति। तत्र भवान् उदयनो भूपतिः। वर्जयित्वा त्यक्त्वा। सञ्जातः स्नानविधिर्भूपतेरुदयनस्य अतस्तदर्थं भोजनं बिना सर्वमानेतव्यमित्यर्थः। अत्रेदं तात्पर्यं-समुपस्थिते सति भूपतेः कृते भोजने विदूषकेणापि तद्भोक्तुं लभ्येत। किन्तु स्वभावतो भोजनप्रियोऽपि अजीर्णरोगग्रस्तोऽयं न तावद्भोजनाय स्पृहयति। इत्थं किल भोजनानयनं निषेधयन्तं विदूषकं प्रति चेटी तन्निराकरणे कारणं

विदूषक—तुम्हारी महारानी ऐसा किसलिये पूछ रही हैं।

दासी—पुष्पों की माला एवं चन्दनादि अङ्गराग लाना है इसलिये—

विदूषक—तत्र भवान् ने स्नान कर लिया, अतः भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ ले आइये।

दासी—अच्छा आप भोज्य पदार्थों को लाने से क्यों मना करते हैं।

विदूषकः—अघण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खि-परिवट्टो सवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्तः इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषक–गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदी सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ)

जिज्ञासमाना किमर्थं निषिध्यते इति स्वकीयां पृच्छां प्रकटयति किं निमित्त-मिति। स्वकर्त्तृकेऽस्मिन् भोजनप्रतिषेधे हासकारणं प्रकटयति विदूषकः अधन्यस्य ममेति–अधन्यस्य भाग्यहीनस्य। अक्षिपरिवर्त्त इव परिवर्त्तः परितो भ्रमण परिवर्त्तनमिति यावत् अक्ष्णोः परिवर्त्तः अक्षिपरिवर्त्तः कुक्षिपरिवर्त्तः उदरविकारः संवृत्तः सञ्जातः। कोकिलानाम् नेत्रपरिवर्त्तनमिव ममापि भुक्तापरिपाकरूपो विकारः साम्प्रतं वरीवर्त्तीत्यत एवाहं भोजनमानेतुं निषेधामि। राजा च नैकाकी भोजनं कुर्यात्। अहं च उपस्थितं भोजनं कथमपि त्यक्तुं न शक्नुयाम्। यथेच्छ भोक्तुमसमर्थोहं ध्रुवं मन्दभाग्योस्मि। विदूषकवचनमनुनिशम्य चेटी सपरिहासं प्रेम्णा ब्रवीति–ईदृश एव भवेति। ईदृशः उदरविकारवान्। भव वर्त्तस्व। विदूषकोऽपि नरपतेः सकाशं जिगमिषन् चेटीं प्राह–गच्छत्विति। तदनन्तरं तयोश्चेटीविदूषकयोस्ततः

विदूषक—कोयलों की आंख में होने वाले शूल की तरह मेरे पेट में भी वात से शूल जो हो रहा है।

दासी—तुम्हें ऐसा ही होता रहे।

विदूषक—अच्छा आप चली जावें। मैं महाराज के पास जा रहा हूँ।

(दोनों उस स्थान से चले जाते हैं)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिका-
वेषधारिणी वासवदत्ता च ।)

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ दमदवणं आअदा? [किं निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआसुह्मआणि पेक्खामि कुसु-

प्रस्थानं दर्शयति कविः निष्क्रान्ताविति । प्रवेशक इति एतस्य लक्षणं प्रागुक्तम् । अत्र कविः चेटीविदूषकाभ्यामनुदात्तभाषिणा प्रयोजितः वृत्तं वत्सराजविवाहसम्बन्धलक्षणं पतिष्यमाणं पुष्पवर्णकाहरणादिरूपं कथांशं च निर्दिष्टवानिति ।

कविरिदानीं भाविघटनानुरूपप्रसङ्गानुरोधेन सपरिवारां पद्मावतीं वासवदत्तया सह प्रमदवनं प्रवेशयति तत इति । प्रमदवनगतां पद्मावतीं श्रुत्वा चेटी तत्र गमनकारणं पृच्छति—किं निमित्तमिति-किं निमित्तम् किमर्थम् । तस्याः पतिरिदानींमन्तःपुरे वर्त्तते तदागमनमुपेक्ष्य भवती केन कारणेन प्रमदवनं प्रस्थितेति भावः पद्मावती चेटी प्रत्याह हलेति । हला इति चेटी-कृते सम्बोधनम् । ते प्रसिद्धाः प्रयत्नसंवर्धिता अदूरतो दृश्यमानाः । तावद् वाक्यालङ्कारे । शेफालिका गुलमकाः शेफालिका हरसिङ्गार परिजात नाम्ना

प्रवेशक

(तदनन्तर सपरिवार पद्मावती एवं अवन्तिका वेषधारिणी
वासवदत्ता का प्रवेश)

दासी—राजकुमारी जी ! आप किसलिये इस अन्तःपुर की वाटिका में पधारी हैं ।

पद्मावती—सखि ! वे हरसिगार के गुच्छे खिले हैं या नहीं, यही देख रही हूँ ।

मिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमितः वा न वेति ।]

चेटी--भट्टिदारिए! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोतिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहि [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकवलम्बकैराचिताः कुसुमै ।]

पद्मावती--हला ! जदि एव्वं किं दाणिं विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी-तेण हि इमस्सि सिलावट्टुऐ मुहूत्ताअ उपविसदु भट्टिदारिआ।

प्रसिद्धाः । गुल्मका गुल्मा एव गुल्मकाः प्रकाण्डरहिताः । कुसुमिताः कुसुमानि पुष्पाणि सञ्जातानि येषां तादृशाः । आर्ये सखि शेफालिका वृक्षेषु इदानीं पुष्पाण्युद्गतानि न वेति पद्मावती प्रश्नाशयः । चेटी तदुत्तरं प्रतिपादयति भर्तृदारिकेति । ते शेफालिका गुल्मकाः । प्रवालान्तरितैः विद्रुमव्यवहितैः । मौक्तिकलम्बकैः मुक्ता एव मौक्तिकानि तेषां लम्बकानि ललन्तिकाभिधाः कण्ठभूषणविशेषाः तत्सदृशैः कुसुमैः आचिताः व्याप्ताः । शेफालिका ध्रुवं विकसिताः सन्ति । पश्य मूले अरुणवर्णानि तदूर्ध्वं च धवलान्येतानि पुष्पाणि खलु प्रवालमिश्रमुक्तामणिनिर्मितकण्ठभूषणसदृशानि लक्ष्यन्ते इति भावः । कुसुमितशेफालिकां श्रुत्वा पद्मावती चेटी तस्याः पुष्पावचये नियोक्तुमिच्छन्ती ब्रूते--हलेति । यदि शेफालिकाः कुसुमिताः सन्ति तर्हि किमिदानी विलम्बसे विलम्बं करोषि । अतिशीघ्रं तानि कुसुमान्यवचीयन्तामित्यर्थः । पद्मावती-

दासी—राजकुमारी जी ! वे खिल तो गये हैं और बीच-बीच में मूँगे से गूँथी गई मोतियों की माला के समान फूलों से लदे हुये हैं ।

पद्मावती—प्रिय सखि ! यदि ऐसी बात है तो विलम्ब क्यों कर रही हो ।

दासी—तब आप इस पत्थर की चट्टान पर थोड़ी देर के लिये बैठ जाइये मैं शीघ्र ही इन फूलों को एकत्रित कर लेती हूँ ।

जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि]

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उववि‍सामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशावः ?]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभे उपविशतः)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्]

वचनानुसारं चेटी कुसुमावचयं प्रतिजानीते—तेन हीति-अस्मिन् समीपस्थे शिलापट्टके बृहत्पाषाणफलके मुहूर्तकं क्षणमिति यावता कालेन मया कुसुमावचयं कृत्वा गम्यते तावत्कालपर्यन्त भवत्या राजकुमार्याऽस्मिन् दृषत्फलके उपविश्यतामित्यर्थः । चेटी वचनानुरोधाद् दृषत्फलकोपर्युपवेशनार्थमवन्तिकाया अनुमतिं प्रार्थयते—आर्ये इति । अत्रोपवेशनं किं भवत्यै रोचते इत्यर्थः । अवन्तिका तत्र स्वकीयामनुमितिं प्रकटयति एवं भवत्विति एवम् वाढम् आवाभ्यामुपविश्यतामित्यर्थः ।

अवचितपुष्पा चेटी पद्मावतीमुपगम्य ब्रूते-पश्यत्विति । पश्यत्विति पौनःपुन्ये द्विः प्रयोगः । अर्धमनः शिलापट्टकैः अर्ध मनोगुप्तखण्डै इव शेफालिका-

---

पद्मावती—आर्ये ! तब क्या हम दोनों यहीं पर बैठें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही किया जाय ।

(दोनों बैठती हैं)

दासी—(फूलों को एकत्रित कर) देखिये राजकुमारी जी देखिये आधे भाग में मैनसिल के टुकड़ों की तरह इन हरसिंगार के फूलों से परिपूर्ण मेरी अञ्जुली को।

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या [अहो विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या]

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं । [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?]

पद्मावती—हला ! सा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

कुसुमैः निर्गुण्डीपुष्पैः मे मम अञ्जलिम्—करपुटम् । पश्यतु पश्यतु विलोकयतु विलोकयत्वित्यर्थः ।

चेट्या प्रदत्तानि पुष्पाणि गृहीत्वा पद्मावती तत्सौन्दर्यं प्रशंसन्त्याह—अहो इति । विचित्रता श्वेतरक्तोभयवर्णसौन्दर्यातिशायिता ।

प्रायशः कुसुमान्येकवर्णानि भवन्ति किन्तु एतानि वर्णद्वयवन्तीति नूनम् विस्मयकरत्वमेतेषाम् । पुनः अवन्तिकां प्रदर्शयति पश्यतु पश्यत्वार्येति—पुष्पाणि दृष्ट्वा वासवदत्ता ब्रवीत—अहो इति । दर्शनीयता मनोहरता । अमूनि पुष्पाणि विचित्रसौन्दर्यशालीनि सन्तीति भावः । उभाभ्यां कृतं प्रसूनशंसनं श्रुत्वा पुनः प्रसूनानयनोत्सुका चेटी पद्मावतीं पृच्छति भर्तृदारिके इति अवचेष्यामि अवचिनुयामित्यर्थः । राजकन्ये किमिदानीं पुनः प्रसूनावचयं कुर्याम् । चेटीवचनं श्रुत्वा पद्मावती निषेधति—हलेति ।

पद्मावती—(देख कर) वाह ! क्या ही विचित्र ये फूल हैं । आर्या ! आप देखें तो सही ।

वासवदत्ता—ये फूल तो अत्यन्त दर्शनीय हैं ।

दासी—राजकुमारी जी क्या और फूल चुनूँ ।

पद्मावती—नहीं नहीं और मत चुनना ।

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किं निमित्तं वारयसि ?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिना भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

मा मेति । द्विरुक्तिः निषेधदार्ढ्यार्थम् । अवचित्य अवचायं कृत्वा मामा परिश्रमं मा कार्षीः । अवन्तिका तन्निषेधकारणं जिज्ञासन्ती ब्रवीति हलेति वारयसि निवारयसि । पद्मावती तन्निषेधे कारणं कथयति -आर्यपुत्रेति-कुसुमसमृद्धिं पुष्पप्रचुरता सम्मानिना समादृता । सम्भावयेऽहमत्रागतो-मत्प्रियः समन्तात् पुष्पितं प्रमदवनं दृष्टवा प्रसन्नः ममादरं कुर्यादित्यर्थः । वासवदत्ता तत्प्रीतेरियत्ता परिच्छेत्तुमिच्छन्ती ब्रवीति हलेति त्वं पतिमेनं प्रेमदृष्टया पश्यसि अपि नाम ते वर्त्तते सहजं प्रेम पत्यौ ? पद्मावती नवोढा-नुरूपलज्जाभाव गोपयन्ती तत्रात्मनः स्वकीयामुत्कण्ठा प्रदर्शयन्ती ब्रवीति न जानामि न वेद्मि । आर्ये आर्यपुत्रो मम प्रीतिपात्रं वर्त्तते न वेति न जानामि किन्तु तद्वियुक्ता पर्युत्सुका भवामि । पद्मावतोवचः श्रुत्वा वास-

---

वासवदत्ता—प्रिय सखि ! क्यों मना करती हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! यहाँ आकर फूलों की इस बहार को देख कर प्रसन्न होंगे, उससे मैं सम्मानित होऊँगी ।

वासवदत्ता—सखि ! तुम्हें पति प्यारे हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! यह तो मैं नहीं जानती किन्तु उनके बिना जी भी नहीं लगता ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खर खु अहं करेमि । इअं वि णाम एवं मन्तेदि । [दुष्करः खल्वहं करोमि । इयमपि नामैव मन्त्रयते ।]

चेटी—अभिजाद खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति । [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं–प्रियो मे भर्तेति ।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो । [एकः खलु मे सन्देहः ।]

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताएत्ति ? [यथा ममार्यपुत्रस्यथैवार्याया वासवदत्ताया इति ।]

वदत्तायाः मानसं वितर्कं वर्णयति कविः दुष्करमिति दुष्करं दुर्विधेयम् । करोमि विदधामि । इयम् एषापि । मन्त्रयते गूढं परिभाषते । पद्मावत्या गूढोक्तेरभिप्रायं प्रशंसनपुरःसरं प्रकाशयति चेटी—अभिजातमिति–अभि॰ जातम् कुलीनतोचितम् । खलु निश्चये । मन्त्रितं कथितम् राजकुमार्या आत्मनः प्रेम पत्यौ यत्प्रकाशितं तत्सर्वथा कुलीनतासदृशमेव । सम्प्रति आत्मनः वासवदत्तायाश्च प्रियविषया प्रीतिं परिज्ञातुं पद्मावती वदति एक इति । एको मे संशयो वर्त्तते स चायमपनोद्यस्त्वयेत्यर्थः । कीदृशस्ते संशय इति वासवदत्ता पृच्छति किं किमिति । तत्सूचनार्थं द्विरुक्त्या त्वरयति वासवदत्ता । पद्मावतीसंशयविषयकं स्वकीयप्रष्टव्यमुपस्थापयति—यथेति–यथा यादृशं

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं बहुत दुष्कर कर रही हूँ वह भी तो इसी प्रकार कहती है ।

दासी—मुझे पति प्रिय हैं ऐसी बात राजकुमारी ने अपनी कुलीनता के अनुकूल ही कही ।

पद्मावती—आर्ये ! मुझे एक सन्देह है ।

वासवदत्ता—वह क्या वह क्या !

पद्मावती—आर्यपुत्र मुझे जैसे प्रिय हैं क्या उसी प्रकार आर्या वासवदत्ता को भी था ।

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं। [अतोऽप्यधिकम्।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ? [कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्उत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति।]

मम प्रेम तादृशं तत्परिमाणमेव तद्वर्तते पूज्यायाः तत्र वासवदत्ताया अपि। तस्योत्तरमवन्तिका ब्रूते—अतोपीति। यावत्प्रेम ते पत्यौ वर्तते ततोऽप्यधिकरूपेण वासवदत्ताया इत्यर्थः। पुनः पृच्छति कथमिति। कथं केन प्रकारेण। तस्यास्तत्र मत्तोऽधिकं प्रेम इति कथं जानासीति भावः। पद्मावतीकृतं प्रश्नमाकर्ण्य स्वस्वरूपप्रकाशनभिया स्वकीयोक्तौ मानसमनुतापमाचरन्ती वितर्कयति वासवदत्ता—हमिति—आर्यपुत्रस्य पत्युः पक्षपातेन प्रेममहिम्ना समुदाचारः मर्यादा अतिक्रान्तः उल्लङ्घितः। एवं विचार्य तस्योत्तरमुपलभ्याह प्रकाशम्—एवमिति। स्वजनम् आत्मीयवर्गम्। न परित्यजति—न परित्यजेदित्यर्थः। यदि तस्याः प्रेम न्यून भवेत्तदा सात्मीयवर्गं परित्यज्य तेन सह नागता भवेदित्यर्थः। अतो निश्चिनमनुमातुं शक्यते तस्याः समधिकं प्रेम पत्याविति। पद्मावती समर्थयति भवितव्यमिति। एतत्त्वदुक्तं सम्भवतीत्यर्थः।

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—यह तुम कैसे जानती हो।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र में अपना पक्षपात बता कर मैं व्यवहार भूल गई (अथवा मेरा सदाचार सीमा से बाहर हो गया) अच्छा तो इस तरह कहूँगी (प्रकाश) यदि आर्यपुत्र में उसका प्रेम स्वल्प होता तो वह उनके लिये कभी भी अपने आत्मीयजनों का त्याग नहीं करती।

पद्मावती—होदव्वं। [भवितव्यम्।]

चेटी—भट्टिदारिए! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति। [भर्तृदारिके! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति।]

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो। [उक्तो ममार्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिद? [ततः किं भणितम्?]

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घ णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्ता। [अभणित्वा किञ्चित् दीर्घं निश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः।]

भर्तुः वीणावादनकौशलं शिक्षित्वा यथा वासवदत्ता भर्तुर्वल्लभा जाता तथा त्वमपि तत्कौशलशिक्षणेन भर्तुः प्रियपात्रतामधिगन्तुं चेष्टस्वेति—आशयेन—चेटी पद्मावतीमुद्दिश्य ब्रवीति—भर्तृदारिके इति। तत्र भवत्याऽपि भर्ता प्रार्थनीयो यथा वासवदत्ता वीणावादन शिक्षिता तथा भवताऽहमपि शिक्षणीयास्मीति—कथयेत्यर्थः। पद्मावती तद्विषये स्वकीयां प्रार्थनां सूचयति उक्ता इति। अहं तदर्थमार्यपुत्रं प्रार्थितवतीत्यर्थः। ततस्तेन किमुत्तरितमिति पृच्छति अवन्तिका। तत इति ततः तस्मिन्समये किं किमुत्तरं दत्तम्। अवन्तिका प्रश्नमनुनिशम्य पद्मावती कथयति—अभणित्वेति—तूष्णीकः तूष्णीशीलः। मत्प्रार्थनां श्रुत्वा तदुत्तरं किमप्यनुक्त्वा दीर्घं निःश्वस्य केवलं मौनमालम्बितम्। एतेन वासवदत्तागतशिष्यजनोचितगुणगणस्मरणमहिम्ना

पद्मावती—हो सकता है।

दासी—राजकुमारी जी! पति से अच्छे ढंग से कहिये कि मैं भी बीन सीखूंगी।

पद्मावती—मैंने यह बात आर्यपुत्र से कही थी।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा।

पद्मावती—बिना कुछ कहे ही वे ऊँची उसास लेते हुये चुप हो गये।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमिरअ दक्खिणदाए मम अग्गदो न रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्यायाः वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

वत्सराजचित्ते विषाद उत्पन्न इति कविनाध्वनित इति भावः । पत्युः तूष्णीभावे कारणं जिज्ञासमाना वासवदत्ता पद्मावत्याः मानस वितर्कं जिज्ञासती आह—ततस्त्वमिति–भर्तुः कृते दीर्घनिःश्वासे मौनधारणे च कीदृशं तवानुमानमित्यर्थः । पद्मावती स्वमानसं वितर्कं प्रकटयति—तर्कयामिति–गुणान् सौन्दर्यानुरागादीनि । दक्षिणतायाः दक्षिणस्य भावो दक्षिणता तस्याः समरागतायाः । दक्षिणनायकलक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—एष त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिण. कथित इति । अहमनुमिनोमि यत् वीणाशिक्षणार्थं मयि प्रार्थिते स वासवदत्तायाः सौन्दर्यमनुरागादिकं स्मृत्वा केवल मौनमालम्बितवान् नवविवाहितायाः मम मनसि खेदो न भवेदिति नारुदत् । वासवदत्ता धन्या भाग्यवती ।

वासवदत्ता—उस पर तुम क्या अनुमान करती हो ।

पद्मावती—मैं ऐसा अनुमान करती हूँ कि वे आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर उदारता के कारण मेरे सामने रोये नहीं ।

वासवदत्ता—(अपने मन में) यदि यह बात हो तो मैं धन्य हो गई ।

(इसके अनन्तर राजा तथा विदूषक का प्रवेश)

विदूषकः—ही । ही । पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [ही ही । प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

विदूषकः—प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं बन्धुजीवस्य कुसुमानि बन्धुजीवकुसुमानि प्रचितानि अवचितानि पतितानि स्रस्तानि च तानि बन्धुजीवकुसुमानि तेषां विरलपातेन रमणीयं मनोहरम् प्रमदवनम् अन्तःपुरोद्यानम् । इतः अस्मात् स्थानात् ।

राजा—वयस्य मित्र ।

अन्वयः—तदा उज्जयिनीं गते अवन्तिराजतनया स्वैरम् दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः । (तेन) अद्य अपि तैः हृदयं सशल्यं एव । (इदानीं) भूयश्च वयं विद्धाः । मदनः पञ्चेषुः यदि अयं षष्ठः शरः कथं पातितः ? ॥ १ ॥

व्याख्या—कामेनेति—तदा तस्मिन् समये उज्जयिनीम् विशालाभिधां पुरीम् गते सम्प्राप्ते अवन्तिराजतनयाम् अवन्तिराजस्य प्रद्योतस्य तनयाम् कन्यां वासवदत्तां स्वैरम् स्वेच्छं दृष्ट्वा अवलोक्य कामपि अनिर्वचनीयां अवस्थां

विदूषक—ओह ! इकट्ठे होकर गिरे हुये इन दुपहरिया के पुष्पों से विरल रमणीय यह अन्तःपुर का बगीचा है; इधर से पधारें ।

राजा—प्रिय मित्र वसन्तक ! यह मैं आ गया ।

उस समय उज्जयिनी में जाने पर अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता को यथेष्ट रूप में देखने के कारण जब मैं अनिर्वचनीय स्थिति में पहुँच गया तब कामदेव ने अपने पाँचों बाणों से मेरे ऊपर प्रहार किया था जिससे आज भी मेरा चित्त विद्ध ही है—आज पद्मावती से विवाह हो जाने पर मैं पुनः

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥ १ ॥

विदूषकः—कहि णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावीदी लदामण्डव गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिद विअं पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअ गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्टा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुल दापव्वदअ गदा भवे !

परिस्थितिं गते प्राप्ते मयि उदयने कामेन मदनेन पञ्च इषवः पञ्चसङ्ख्याकाः बाणाः पातिताः निपातिताः। एतेन राज्ञः वासवदत्तां प्रति प्रणयातिशयः प्रतिपादितः। अद्य अपि अस्मिन्समयेऽपि तैः कामबाणैः हृदयं चित्तम् मदीयमिति शेषः सशल्यम् कीलकयुक्तम् एव। भूयश्च पुनरपि अस्मिन्काले विद्धाः ताडिताः। एवं च मदनः कामः पञ्चेषुः पञ्चबाणः यदि चेत् अयम् एषः साम्प्रतं षष्ठः शरः बाणः कथम् केन प्रकारेण पातितः प्रेरितः। कामस्य पञ्चबाणत्वं प्रसिद्धम्। इदानीं षष्ठः शरः मयि प्रेरयता तेन स्वनाम्नः निरर्थकत्वं प्रदर्शितमिति भावः ॥ १ ॥

विदूषक—तत्र भवती = माननीय। उताहो = अथवा। असनकुसुमसञ्चितम् = असनानां = सर्जकनामवृक्षविशेषाणां कुसुमानि = पुष्पाणि तैः सञ्चितः व्याप्तः तम्। व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम् व्याघ्रस्य चर्मणा अवगुण्ठितः समाच्छादितः तम्। शिलापट्टकम् प्रस्तरखण्डम्। अधिककटुकगन्धं सप्तच्छदवनम् अधिकः

कामबाण से विद्ध हो गया हूँ। भला कामदेव के तो पांचही बाण थे उसने यह छठा बाण कैसे गिराया ? ॥ १ ॥

विदूषक—माननीया तत्र भवती पद्मावती लता-मण्डप में गई होगी अथवा सर्ज के फूलों से व्याप्त बाघ के चमड़े से मढ़े हुये के समान दिखाई पड़ने वाले पर्वत तिलक नामक पत्थर की चट्टान पर गई होगी, अथवा तीव्र गन्ध वाले सप्तपर्ण वृक्षों के वन में प्रविष्ट हुई होगी। हो सकता है कि चित्र लिखित पशु-पक्षियों से परिपूर्ण लकड़ी द्वारा बनाये गये कृत्रिम दारु पर्वत

(ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअवल-देवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छंतिं पेक्खदु दाव भवं। [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत् अथवा आलिखित-मृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान्।]

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम् !

कटुको गन्धः येषां ते अधिककटुकगन्धाः = प्रकृष्टकटुगन्धयुक्ताः ते च ते सप्तच्छदाः सप्तपर्णनामवृक्षविशेषा. तेषां वनम् विपिनम्। आलिखितमृगपक्षि-सङ्कुलम् आलिखिताः बहुविधं चित्रिता ये मृगपक्षिणः पशुविहगास्तैः सङ्कु-लम् परिव्याप्तम्। दारुपर्वतकम् काष्ठरचितशैलप्रतिकृतिम्। गता याता। अत्र विदूषकेण पद्मावतीस्थितिविषये विकल्पचतुष्टयं प्रदर्शितम्। ही ही प्रमोदसूचकमव्ययपदम्। शरत्कालनिर्मले शरत्कालेन निर्मलम् तस्मिन् = शर-दृतुकृतस्वच्छे। अन्तरिक्षे = आकाशे। प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीया प्रसारितौ विस्तारितौ यौ बलदेवबाहू बलभद्रभुजौ तद्वद्दर्शनीया रमणीया ताम्। समाहितम् = एकाग्रतापूर्वकम्। गच्छन्तीम् प्रयान्तीम्। पश्यतु = अव-लोकयतु।

राजा—एनाम् = सारसपङ्क्तिम्।

नामक स्थान पर गई हो। (ऊपर की ओर देख कर) अहा ! शरद् ऋतु से निर्मल आकाश मण्डल में फैलाई गई बलभद्र की भुजा के समान सुन्दर एवं समाहित चित्त से जाती हुई इन सारस पक्षियों की पङ्क्ति को आप देखें।

राजा—मित्र ! इन्हें देख रहा हूं।

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं

अन्वयः—ऋज्वायतां विरलां नतोन्नतां निवर्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिलां निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमामिव एनां सारसपंक्तिं पश्यामि ॥ २ ॥

व्याख्या—ऋज्वायताम् ऋज्वी चासौ आयता ताम् = सरलदीर्घाम् । विरलाम = क्वचित्क्वचित्स्थिताम् । नतोन्नताम् नता चासौ उन्नता ताम् निम्नोर्ध्वरूपेण स्थिताम् । सप्तर्षिवंशकुटिलाम् सप्तर्षीणां वंश इव कुटिला ताम् = सप्तर्षिवर्गवक्राम् । निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य निर्मुच्यमानो यः भुजगस्तस्य उदरं तद्वन्निर्मलम् तस्य = कञ्चुकरहितसर्पजठरनिर्मलस्य । अम्बरतलस्य = आकाशस्य विभज्यमानाम् सविहितविभागां सीमाम् मर्यादाम् । इव एनां सारसपङ्क्तिं । पश्यामि अवलोकयामि । स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ २ ॥

चेटी—कोकनदमालापाण्डररमणीयाम् कोकनदानां माला इव पाण्डरा

सीधी और फैली हुई, विरल और ऊँची नीची, दोनों किनारों पर सप्तर्षि मण्डल के समान टेढ़ी, केचुलों को छोड़ देने वाले सर्पोदर के समान निर्मल तथा आकाश मण्डल की सीमा का विभाग करती हुई सारस पङ्क्ति को देख रहा हूँ ॥ २ ॥

दासी—राजकुमारी जी ! कमलों की पङ्क्ति के समान स्वच्छ समाहित होकर उड़ती हुई रमणीय इस सारस पङ्क्ति को देखें। अरे ! यह तो स्वामी आ गये ?

सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति। अम्भो। भट्टा। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्ता ?]

पद्मावती—हं! अय्यउत्तो। अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो। [हम् ! आर्यपुत्र: आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। [एवं भवेत्।]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषक—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्र भवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

रमणीया च तां = रक्तोत्पलस्रग् इव श्वेतमनोहराम्। समाहितम् = एकाग्रतापूर्वकम्। गच्छन्तीम् = प्रयान्तीम्। एतां = सारसपङ्क्तिं। अहो = आश्चर्यद्योतकमव्ययपदम्। तव कारणात् भवदर्थम्।

पद्मावती—हम् अनुनयबोधकमव्ययपदम्। तव कारणात् भवदर्थम् आर्यपुत्रदर्शनम् स्वस्वामिप्रत्यक्षीकरणम्।

वासवदत्ता—एवम् = इत्थम्।

विदूषकः—निर्गता = निष्क्रान्ता। भवद्दर्शनमकृत्वेति भावः। अपचित कुसुमान् = लूनपुष्पान्। शेफालिकागुच्छान् = निर्गुण्डीस्तवकान्।

राजेति—विचित्रता = नैकवर्णता।

पद्मावती—ओह ! यह तो आर्यपुत्र ! आर्ये ! आपके कारण आर्यपुत्र का दर्शन त्याग रही हूँ। इस कारण माधवी लतामण्डप में हम दोनो चले।

वासवदत्ता—हाँ ! अब यही करना चाहिये। (दोनों वैसा ही करती है)

विदूषक—ज्ञात होता है तत्र भवती पद्मावती यहाँ आकर चली गई है।

राजा—कथं भवान् जानाति ।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं । [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान् ।]

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य । वसन्तक !

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणीये उत्तामि त्ति । [वसन्तकसङ्कीर्तननाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्त इति ।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतिक्षिण्यावहे ।

वासवदत्ता-वसन्तकसंकीर्तनेन=वसन्तकनामोच्चारणेन ।

राजा अस्मिन्=निकटस्थे, शिलातले=शिलाफलके । आसीनौ= उपविष्टौ ।

वसन्तक.—शरत्कालतीक्ष्णः शरच्चासौ कालः तेन तीक्ष्णः=शरत्काल-तीव्रः दुःसहः=सर्वथा सोढुमशक्यः । आतपः=धर्म ।

राजा—वाढम्=युक्तम् ।

राजा—आप यह कैसे जानते हैं ।

विदूषक—आप इस हरसिंगार के गुच्छों की ओर देखें जिसमे से फूल तोड़ लिये गये हैं ।

राजा—अहो वसन्तक ! ये फूल कितने विचित्र हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) आर्यपुत्र द्वारा वसन्तक का नाम लेने से मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मै पुनः उज्जयिनी में हूँ ।

राजा—वसन्तक ! तब तक इस शिलातल पर बैठ कर पद्मावती की प्रतीक्षा करें ।

विदूषकः—भो ! तह । (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सई आदवो ता इमं दाव माहवीगण्डवं पविसामि । [भोस्तथा ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः ।]

राजा—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभौ परिक्रामतः)

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्म ? [एवमाकुलं कर्तुकामः आर्यवसन्तकः । किमीदानीं कुर्मः ?]

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीनं ओलम्बलदं ओधूय

विदूषकः—एवं भवतु = मम पृष्ठतः आगच्छतु ।

पद्मावती—एवम् = इत्यम् । आकुलं कर्त्तुंकामः = व्यग्रं विधातुमनाः ।

चेटी—मधुकरपरिनिलीनाम्—मधुकरैः परिनिलीना ताम् = भ्रमरपूर्णाम्

विदूषक—'श्रीमन्' ! अब ऐसा ही करना चाहिये । (बैठ कर पुनः उठ कर) ओह ! ओह ! यह तो शरदृऋतु का आतप बड़ा तीव्र और असह्य है इस लिये समीप के इस वासन्ती लता मण्डप मे चलना चाहिये ।

राजा—ठीक है । आगे चलो ।

विदूषक—यही करता हूँ । (दोनों चल पड़ते है)

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! इस लता मण्डप में प्रवेश कर हम लोगों को आकुल करना चाहते हैं । अब क्या करना चाहिये—

दासी—राजकुमारी जी ! भौरों से लदी हुई इस शाखा को जिसके सहारे ये लतायें खड़ी है हिला कर स्वामी को आने से रोकती हूँ ।

भट्टारं वारइस्सं। [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

पद्मावती—एवं करेहि। [एवं कुरु।] (चेटी तथा करोति।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भव। [अविहा अविहा, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषक—दासीएपुत्तेहि महुअरेहि पीडिदो ह्मि। [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।]

राजा—मा मा भवानेवम् ! मधुकरसत्रासः परिहार्यः।

पश्य—

अवलम्बलताम् = आलम्बनवल्लरीम् । अवधूय = आन्दोलयित्वा भर्तारम् = स्वामिनमुदयनम् । वारयिष्यामि = निवारयिष्यामि।

विदूषकः—अविहा अविहा = विषादसूचकमव्ययपदम् । दास्याः पुत्रैः नीचैः । पीडितोऽस्मि = व्यथितोऽस्मि।

राजाः—मा मा भवानेवम् कार्षीरिति शेषः। मधुकरसंत्रासः मधुकराणां संत्रासः = भ्रमरभयम् । परिहार्यः = त्यक्तव्यः।

पद्मावती—अच्छा ! ऐसा ही करो (दासी वैसा ही करती है)

विदूषक—हाय ! हाय ! आप ठहरिये, आप ठहरिये।

राजा—क्यों ? किसलिये।

विदूषक—इन नीच भौंरों से मैं सताया जा रहा हूँ।

राजा—नहीं नहीं। आप ऐसा मत कहें, मत कहें। भौंरों को दुःख देना उचित नहीं।

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभावुपविशतः ।)

अन्वयः—मधुमदकला मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढा मधुकराः पादन्यासविषण्णाः वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

व्याख्या—मधुमदकलाः मधुनः = पुष्परसस्य मदेन मानसविकारविशेषेण कलाः = अव्यक्तमधुरशब्दाः । मदनार्ताभिः मदनेन = कामेन आर्ताभिः आकुलाभिः । प्रियाभिः = भ्रमरीभिः । उपगूढा = आश्लिष्टाः मधुकराः = भ्रमराः पादन्यासविषण्णाः पादयोर्न्यासः तेन विषण्णाः = अस्मच्चरणविन्यासखिन्नाः वयम् इव कान्तावियुक्ताः = प्रियाविरहिताः । स्युः = भवेयुः । भ्रमरैरिदानीं तावत् प्रियाभिः सह मकरन्दास्वादमग्नैरमन्दानन्दसन्दोह अनुभूयते मञ्जुगुञ्जद्भिः । कुञ्जे च करिष्यमाणेनास्मदीयप्रवेशेन सम्भ्रमात्ते । अस्मानिव प्रियाभिर्वियुक्ता भविष्यन्तीति भावः । आर्यावृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या' ॥ ३ ॥

राजा—तस्मात् = मधुकरत्रासपरिहाररूपकारणात् । इहैव = लतामण्डपाद्बहिः शिलातले एव । आसिष्यावहे = उपनिवेक्ष्यामः । इह स्थित्वै पश्चात्त्यागमनं प्रतीक्षणीयमिति भावः ।

मकरन्द पान से उन्मत्त कामार्त्त अपनी प्रियाओं से आलिङ्गित हुये वे भौरे पैर की आहट मात्र से दुःखी हो हम लोगों की भाँति ही अपनी प्रियाओं से वियुक्त हो जायेंगे ॥ ३ ॥

इस कारण हम दोनों यहीं बैठें ।

विदूषक—अच्छा यही सही । (दोनों बैठ जाते हैं)

चेटी—भट्टिदारिए! रुद्धा खु ह्म वयं। [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् ।]

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो। [दिष्टयोपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो। [दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिदारिए! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी। [भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः ।]

चेटी—रुद्धा = बहिर्निर्गमनासमर्था। एतयो राजविदूषकयोरत्र शिलातले। उपवेशेन सर्वा वयमस्मिन्निकुञ्जे प्रनिरुद्धा संजाताः। तद्दृष्टिपरिहारेण नेतो निर्गन्तुं शक्यते इति भावः।

पद्मावती—दिष्टयेति-दिष्टया = दैवेन। आर्यपुत्रः = श्रीमान्। उपविष्ट शिलातले। न किल कुञ्जान्तःप्रविष्ट इति भाव.।

प्रियदर्शनजमानन्दं सहसा लब्ध्वा वासवदत्ता ब्रवीति—दिष्टयेति प्रकृतिस्थशरीरः प्रकृतिस्थं = नीरोगं शरीरं वपुर्यस्य सः। भर्त्तुः स्वास्थ्यं निरीक्ष्य भार्यान्तरगतचेतस; तस्य स्वविषये प्रेमन्यूनतां चाभिवीक्ष्य हर्षशोकाभ्यामश्रूणि मुञ्चन्तीं वासवदत्तां विलोक्य चेटी कथयति भर्तृदारिकेति—आर्यायाः = अवन्तिकायाः। दृष्टिः = नेत्रम्। साश्रुपाता = सबाष्पा।

दासी—राजकुमारी जी ! हम लोग तो यहीं रोक ली गईं। अब उनकी दृष्टि बचा कर निकलना सम्भव नहीं।

पद्मावती—भाग्यवश आर्यपुत्र बैठ गये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) भाग्य से आर्यपुत्र का शरीर स्वस्थ है।

दासी—राजकुमारी जी ! आर्या कीं आँखों से आँसू गिर रहे हैं।

वासवदत्ता—एषा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी। [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमपतितेन सोदका मे दृष्टिः।]

पद्मावती—जुज्जइ। [युज्यते]

विदूषकः—भो ! सुण्णं खु इदं पमदवनं। पुच्छिदव्वं किञ्चिअत्थि। पुच्छामि भवन्तं। [भोः ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् ! प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।]

रहस्यभेदभीतेरवहित्थां विदधाना वासवदत्ताह—एषेति--खलु = निश्चयार्थे। अविनयात् = विनयाभावात्। काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धापुष्पपरागेण। दृष्टिः = नेत्रम्। सोदका = अश्रुयुक्ता। अत्र हि भ्रमराः स्वैरं भ्रमन्ति तेषां सञ्चालनेन काशपुष्परागं मच्चक्षुषोरन्तर्गतं तेन हेतुना नेत्राभ्यामश्रूण्युद्गतानीति भावः।

एतत्कारणं युक्तं मन्यमाना पद्मावती प्राह—युज्यते इति सम्भाव्यते इत्यर्थः। भ्रमरपरिभ्रमणवशात् काशपुष्पपरागपतनेन युक्तं नेत्राभ्यामश्रूद्गिरणमित्यर्थः। रहस्यार्थप्रकाशनयोग्यमवसरमन्विष्यन् राजानं प्रति 'प्रीतिपात्रं ते पद्मावती वासवदत्ता वेत्येवं प्रश्नमुपक्षेप्तुकामः विदूषकः प्राह—भो इति–शून्यम् = आवयोः व्यतिरिक्ततृतीयजनरहितम्। प्रष्टव्यम् = प्रष्टुं योग्यम्। हे राजन् अत्र तृतीयः कोऽपि नास्ति। अतोऽहं यत्पृच्छामि तस्योत्तरं समुचितरूपेण निःशङ्कं दातुमर्हति भवान्। अत्र सगोपनं तव नोचितमित्यर्थः।

वासवदत्ता—भौरों की गड़बड़ी से कास के फूलों की धूलि उड़ कर पड़ जाने के कारण मेरी आँखों में पानी आ गया है।

पद्मावती—ऐसा सम्भव है।

विदूषक—महाराज ! यह प्रमदवन (अन्तःपुर की वाटिका) इस

राजा—छन्दतः ।

विदूषकः –का भवदो पिआ। तदाणि तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणि पदुमावदी वा। [का भवतः प्रिया । तदानी तत्रभवतो वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा ।]

राजा - किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

राजा—छन्दत इति छन्दोऽभिप्रायः । अभिप्रायानुसारेण निःशङ्कं यदभीष्टं ते तत्पृच्छेत्यर्थः ।

स्वं प्रश्नं राज्ञः सन्निधावुपस्थापयति विदूषकः—का इति–प्रिया= प्रीतिपात्रम् । तदानीम्=अतीतसमये स्थिता वासवदत्ता इदानीं अस्मिन्समये वर्त्तमाना पद्मावती वा वर्त्तते तत्रैतत्पृच्छामि भवतः स्नेहाधिको वासवदत्ताया पद्मावत्यां वा उभयोः कतरस्तेऽधिकं प्रीतिपात्रमिति प्रश्नमेतदाकर्ण्य तदुत्तरं दुष्करं मन्यमान आह राजा—किमिदानीमिति–किम्= किमर्थम् बहुमानसंकटे=अधिकसम्मानविपत्तौ । न्यस्यति निपातयति । तदानीं वासवदत्ता मया बहुमन्यत । साम्प्रतं पद्मावती वा बहु मन्यते उभयोः कस्यां ममाधिकं प्रेम ? इत्येतत् कथनं मे दुष्करमिति विदूषकप्रश्नान्तरं स्वपति-

---

समय सर्वथा शून्य है, मुझे कुछ आप से पूछना है अतः आप से पूछ रहा हू ।

राजा—इच्छानुसार (संकोचरहित हो) पूछो ।

विदूषक—उस समय की महारानी वासवदत्ता और इस समय में विद्यमान महारानी पद्मावती इन दोनों में आपको कौन सबसे अधिक प्यारी है ।

राजा—आप मुझे इस प्रकार बहुसम्मानरूप विपत्ति में क्यों डाल रहे हैं ?

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कटे निक्खित्तो अय्यउत्तो। [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ। [अहं च मन्दभागा।]

विदूषक—सेरं सेरं भणादु भव। एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान्। एकोपरता, अपरा असन्निहिता।]

राजा—वयस्य न खलु ब्रूयाम्। भवांस्तु मुखरः !

देवोक्तमित्थं वचनामाकर्ण्य पद्मावती चेटी प्रत्याह—हलेति–निक्षिप्तः = स्थापितः। उभयत्र प्रेयस्योः का नाम ते प्रियतरे त्यतादृशा पृच्छता विदूषकेण तदुत्तरप्रदानरूपे यादृशेऽतिदुष्करे कर्मणि नियुक्तोऽधुना मे प्रियतम इति भावः। आर्यपुत्रकर्तृकमेकस्या बहुमानसूचनं त्वपरस्याश्चेतसि बहुलमीर्ष्याभावं जनयेदिति तदुत्तरं नून दुष्करमिति भावः। पद्मावत्याभाषितं श्रुतवती वासवदत्ता स्वमनसा वितर्कमाह—अहं चेति। मन्दभागा = अल्पभाग्या। नूतनपरिणीतपद्मावतीसमागमेन विस्मृतातीतमत्प्रणयो राजा यदि वदिष्यति 'पद्मावती प्रियतरे'ति तदैव तच्छ्रुत्वा मया महान् कष्टोऽनुभूयत इत्यर्थः। स्वकीयप्रश्नस्योत्तरं दातुमनिच्छन्त राजानं विलोक्य विदूषकः प्राह--स्वैरमिति स्वैरं स्वैरं = स्वच्छन्दतानुसारम्। एका = वासवदत्ता। उपरता = दिवंगता। अपरा = पद्मावती असन्निहिता = दूरे स्थिता। अतो

पद्मावती—सखी ! जैसे आर्यपुत्र सङ्कट में डाल दिये गये है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मैं अभागिनी भी जैसे संकट में डाली गई।

विदूषक—आप निःसङ्कोच कहिये, एक तो मर गई। दूसरी इस समय पास में नहीं है।

राजा—मित्र ! मैं नही बताऊँगा। क्योंकि तुम मूर्ख (बकवादी) हो।

पद्मावती—एतएण भणिदं अय्यउत्तेण। [एतावता भणितमार्य-पुत्रेण।]

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं। एसा सन्दट्ठा मे जीहा। [भोः सत्येन शपे कस्मा अपि नाख्यास्ये। एषा सन्दष्टा मे जिह्वा।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम्।

यथार्थकथने भीतिर्न कर्त्तव्या। विदूषकप्रश्नस्योत्तरं प्रदातुमनिच्छन्नाह राजा—वयस्येति—वयस्य = मित्र ! न ब्रूयाम् = न वदेयम्। खलु = निश्चयेन। भवान् मुखरः = वाचालः रहस्यं गोपयितुमसमर्थो भवान् प्रकृत्या अवश्यं यत्र तत्र रहस्यं प्रकाशयिष्यति। अतस्तव प्रश्नस्योत्तरं मया दातुं न शक्यते इति भावः। पद्मावती कुञ्जान्तःस्था राज्ञो भावमवबुध्याह—एतावतेति = अनेन। आर्यपुत्रेण = भर्त्रा, भणितम् = प्रतिपादितम्। निषेधवचनेन वासवदत्तायामेव प्रणयविशेषं गूढतयाविष्कृतम् राज्ञेति पद्मावत्या सूच्यते।

विदूषकः—रहस्यार्थ प्रकाशनरूपाशङ्कां शपथेन निराकुर्वन्नाह—भो इति सत्येन = धर्मेण। सत्यस्य धर्मस्य च शपथं कृत्वा ब्रवीमि यद् भवदुक्तं न कुत्रापि प्रकाशयिष्ये इति। अतो भवता मयि न शङ्कनीयम्। सन्दष्टा दृढम् निरुद्धा मया। शपथे कृतेऽपि विदूषके तदुत्तरे स्वकीयमनुत्साहं दर्शयन् राजा प्राह—नोत्सहे। सखे = मित्र नोत्सहे—शपथे कृतेऽपि त्वयि विश्वासा-भावात् तादृश सूचयितुं न मे मनसि उत्साहो जायते इति भावः। राज्ञो

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने से तो कह दिया।

विदूषक—राजन् ! सत्य की सौगन्ध ! मैं किसी से भी नहीं कहूँगा। यह मेरी जीभ काट लीजिये।

राजा—मित्र ! कहने का उत्साह जी में नहीं होता।

पद्मावती —अहो ! इमस्स पुरोभाइदा। इत्ताएण हिअअं ण जाणादि। [अहो ! अस्य पुरोभागिता। एतावता हृदयं न जानाति।]

विदूषकः—किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं। एसो रुद्धो अत्त भवं। [किं न भणति मम ? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्र भवान्।]

राजा—किं बलात्कारेण ?

हृद्गतमभिप्रायमज्ञातवतो विदूषकस्य मौर्ख्यमाविष्कुर्वाणा पद्मावत्याह—अहो इति–अस्य = विदूषकस्य। पुरोभागिता = मूर्खता। एतावता अनेन ध्वनिना पुनः सूचनेनापीत्यर्थः हृदयं हृद्गतमभिप्रायं न जानाति राजा हि मुहुर्वासवदत्तायाः प्रीतिविशेषास्पदत्वं गूढमाविष्कृतम् तथापि विदूषकस्य बुद्धेः पन्थानं नारोहतीति अस्य मूर्खतायाः पराकाष्ठेति भावः। अत्रार्थे सौहार्दभावसुलभं सनिर्बन्धं वचः पुनः प्रयुङ्क्ते विदूषकः किन्नेति मम = मदग्रे शिलापट्टकात् शिलापट्टकं विहाय ततोऽन्यत्रेत्यर्थः। अनाख्याय अकथयित्वा। वासवदत्ता प्रिया पद्मावती वेत्यप्रतिपाद्य। मत्प्रश्नविषयीभूतं तारतम्यं मदग्रे न प्रकाश्यते किम् ? अप्रकाशिते चेदस्मादस्थानादेकपदमपि गन्तुं न शक्यते इति भावः। एष रुद्धोऽत्र भवानिति एषोऽहम् भवन्तं रुणध्मि। पश्यामि कथं नोच्यते इति। विदूषकमित्थं बलात्कर्तुमुद्यतं दृष्ट्वा राजा

पद्मावती—अहो ! इनकी मूर्खता (हठ)। जो इतना कह देने पर भी हृदय की बात नहीं समझ सके।

विदूषक—आप मुझ से क्यों नहीं कहते। बिना कहे इस पत्थर की चौकी से एक पग भी आगे नहीं जा सकते। लीजिये आप यहीं रोक लिये गये।

राजा—क्या जबर्दस्ती (जानना चाहते हो ?)

विदूषकः—आम, बलक्कारेण। [आम् बलात्कारेण।]

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत्।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साबिदो सि जइ सच्चं ण भणासि। [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।।]

राजा—का गतिः श्रूयताम्—

पृच्छति--किं बलात्कारेण=हठेन शुश्रूषसे किमिति भावः। प्रसह्य प्रतिश्रवणं जानानो विदूषक आह आमेति। आमिति स्वीकारसूचकमव्ययपदम्। बलात्कारेण=हठेन नूनमिदं भवता श्रोष्यामीत्यर्थः। तेन हीति- पश्याम=इत्यादरे बहुत्वम्। बलात्कारेण इत्थमिदं श्रोतुमिष्यते। चेत्त्वया तदा मयापि दृश्यते कथमेतच्छ्रूयते इति। पश्यामि बलपूर्वकं श्रवणप्रतिज्ञा ते सफला भवति मम वा तद्विषयाकथनप्रतिज्ञेति राजाशयः। दृढप्रतिज्ञं राजानं दृष्ट्वा आत्मनो बलात्कारं चाकिञ्चित्करं मत्वोपायान्तरं प्रस्तुवन् विदूषक आह—प्रसीदतु इति। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। वयस्येति -मित्रभावेन। शापितः=शापं दापितः। अहं भवन्तं प्रसादयामि क्षम्यतां मदीयोऽयमपराधः। किन्तु यदि सत्यं न भणसि तदावयोर्मैत्री विच्छिन्द्येदिति शेषः। विदूषकस्य चाग्रहं दृष्ट्वा राजाह—का गतिः--कः उपायः मित्रतासम्बन्धरक्षणाय विवशः सन् प्रीतितारतम्यं निवेदनीयमेवाह—पद्मावतीति—

विदूषक—जी हाँ जबर्दस्ती!

राजा—तब तो देखते है।

विदूषक—आप मान जाइये, मान जाइये। मित्रता की शपथ आपको यदि सत्य न कहें।

राजा—क्या उपाय है, अब तो लाचार हो गया अच्छा तो सुनो।

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अञ्जादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः यद्यपि पद्मावती मम बहुमता तु वासवदत्ताबद्धं मे मनो न हरति तावद् ॥ ४ ॥

व्याख्या—रूपशीलमाधुर्यैः रूपं च शीलं च माधुर्यं च तैः सौन्दर्यसच्चरित्रप्रीतिविशेषैः । यद्यपि पद्मावती = मगधराजकुमारी मम = उदयनस्य । बहुमता अधिकाधिकप्रीतिसम्मता । तु = परन्तु वासवदत्ताबद्धं = वासवदत्तासलग्नम् मे = मम मनः चित्तं न हरति = ततो नाकर्षति । पद्मावत्या सौन्दर्यादिगुणेषु लुब्धोऽहं तत्र बहुमानं वहामि तथापि वासवदत्ताप्रीतिपाशविवशं मे मनस्तया हर्तुं न शक्यते कथमपीत्यर्थः । पद्मावत्यां बहुमानं वासवदत्तायां चात्मनो मनोबन्धं निरूपयता राज्ञाऽपूर्वा चातुरी प्रदर्शिता । आर्या वृत्तम् ॥ ४ ॥

इत्थं पत्याविष्कृतं प्रीतिविशेषमवगत्य वासवदत्तात्मगतं सप्रसादं वचः वक्ति—भवतु इति-भृशार्थे द्वित्वभाव. । परिखेदस्य = वियोगदुःखस्य वेतनं = भृतिः पारितोषिकं वा । अज्ञातवासोऽपि = अविदितस्थितिरपि । बहुगुणः

यद्यपि पद्मावती रूप शील और प्रीति विशेष से मुझे बहुत अच्छी लगती है किन्तु तब भी वह वासवदत्ता में आकृष्ट हुये मेरे मन को नहीं हरती है ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) बस बस । इस विरह रूप दुःख का पुरस्कार मुझे दे दिया । हाँ यहाँ छिप कर पद्मावती के पास मेरा रहना भी अत्यन्त गुणकारी हुआ ।

भवतु। दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।]

चेटी—भट्टिदारिए! अदक्खिण्णो खु भट्टा। [भर्तृदारिके! अदाक्षिणः खलु भर्त्ता।]

पद्मावती—हला! मा मा एव्वं सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि। [हला! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति।]

=अधिकगुणसम्पन्नः। भर्त्तुरात्मनि प्रीतिविशेषमनुनिशम्य वियोगस्य पुरस्कारं प्राप्तवत्यस्मि। श्रीमत्याः पद्मावत्याः सन्निधौ प्रच्छन्नरूपेण क्लेशकारिणी मदीया स्थितिः बहुगुणशालिनी सञ्जातेति भावः। वासवदत्तायां राज्ञः पद्मावत्यपेक्षया प्रीतिविशेषमनुनिशम्य तदयुक्तं मन्वाना चेटी ब्रवीति—भर्तृदारिकेति–अदाक्षिण्यः=दाक्षिण्यरहितः। दाक्षिण्यं च सर्वासु नायिकासु समानप्रीतिमत्त्वमिति। राजकुमारि! वासवदत्तायां प्रणयविशेषं प्रकटयन्नूनं भवत्याः प्रियः दाक्षिण्यशून्यो वर्त्तते इति भावः। चेटच्युक्तं निषेधयन्ती भर्त्तारं च वासवदत्तागतचित्तं प्रशंसन्ती पद्मावत्याह—हलेति– एवम्=पूर्वोक्तम्। मा मा निषेधदाढर्याय द्विरुक्तिः। वादीरिति शेषः सदाक्षिण्यः=दाक्षिण्यसहितः। यो हि वासवदत्तायाः अभावेऽपि तस्याः श्लाघनीयगुणान् संस्मरति तत्र प्रीतिभावं च भूयांसम् बिभर्त्ति तदा कृतं दाक्षिण्यस्य निर्वहणम्। एतेन सापत्न्यसुलभं द्वेषभावमनावहन्त्याः पद्मावत्याः कुलीनत्वं प्रतिपादितं कविना भर्त्तुरुदारभावमात्मनि वहन्ती वासवदत्ता

दासी—राजकुमारी जी! राजा उदार नहीं है। क्योंकि वे सबको समान रूप से प्यार नहीं करते।

पद्मावती—नहीं नहीं। ऐसा नहीं। आर्यपुत्रसमानानुरागी ही हैं कि अब भी वासवदत्ता के गुणों को याद करते हैं।

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृश मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो । [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्त. ।]

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ । [किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।]

पद्मावतीवचनमनुनिशम्य तां प्रशंसन्त्याह—भद्रे इति–अभिजनस्य=सत्कुलस्य। सदृशं = योग्यम् । मन्त्रितं = कथितम् अयि भद्र सुन्दरि वासवदत्तागुणानुरक्तं स्वप्रियं प्रशंसन्ती त्वं सत्कुलोचितमेवोक्तवती यतः श्लाघनीयगुणासीति भावः। मुखरे विदूषके तद्रहस्योद्घाटनं सम्भाव्य तन्मुखादपि तत्प्रश्नस्योत्तरं जिज्ञाषया राजा प्रश्नमुपन्यस्यति–उक्तं मयेति = कथितम् प्रिया = बहुमता । मित्र ! भवतामनुरोधेन तथ्यं कथितवानहम् उभयोर्मध्ये का नाम भवतः प्रियेति त्वमपि ब्रूहीत्यर्थः । प्रीतितारतम्यरूपं प्रश्नमेनमनुनिशम्य पद्मावती ब्रूते—आर्यपुत्रोऽपीति--विदूषक इवार्यपुत्रोऽपि प्रीतिभेदजिज्ञासुः संवृत्त इति भावः । विदूषको यथा प्रीतितारतम्यं पृष्टवान् तथैवार्यपुत्रोऽपि। एवमुभयोः नास्ति किमप्यन्तरमिति भावः । राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दातुमनिच्छन् विदूषक आह—किं मे इति–विप्रलपितेन = निरर्थकेन वचसा । तत्र भवत्यौ = पूज्ये ।

वासवदत्ता—भद्रे ! महान् अपने कुल के अनुरूप कहा—

राजा—मैंने तो कह दिया । अब तुम कहो कि उस समय वासवदत्ता या इस समय पद्मावती में कौन तुम्हें अच्छी मालूम पड़ती है ।

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक हो गये ।

विदूषक—मेरे निरर्थक कहने से क्या लाभ ? मेरे लिये तो दोनों ही भली हैं ।

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण।

विदूषक—तेण हि ण सक्कं सोदुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम् ।

मम तु बहुमानास्पदं वासवदत्ता पद्मावती चेत्युभयं उभयोरपि मे समानैव दृष्टिरिति भावः। विदूषकस्योक्तिचातुर्यमाकलय्य पुनः राजा प्रतिवक्ति—**वैधेयेति**--वैधेयो = मूर्खः। एवम् = प्रीतितारतम्यं बलाच्छ्रुत्वा। तदानीं बलात्कारपूर्वकं मन्मुखादुभयोः प्रीतितारतम्यं निष्कास्य त्वया स्वयमस्य प्रश्नस्योत्तरं न दीयते तत्तावज्जानीहि मयाऽपि बलात्कारः प्रयोक्ष्यते इति। अतो हि मित्र त्वयापि प्रीतितारतम्यं वक्तव्यमेवेत्यर्थः।

राज्ञा बलात्कारमाशङ्कमानः विदूषकः पृच्छति--**किमिति**। आत्मनः प्रश्नस्य मन्मुखादुत्तरमाकर्णयितुं भवता हठप्रयोगः करिष्यते किम् ? तदेव कर्त्तव्यं भविष्यतीति राजा सूचयति **अथेति**--अथ किम् = किमन्यत्। अत्र कः सन्देह इत्यर्थः। नूनं बलात्कारं करिष्यामि। तद्वैफल्यं प्रदर्शयन्नाह विदूषकः—**तेन हीति**--हि = निश्चये बलात्कारेण नाभिधास्ये। अतो हठयोगं प्रयोक्ष्यमाणोपि भवान् तदुत्तरं मन्मुखान्न श्रोतुं शक्नोति। स्वबलात्कारं निरर्थकं मन्यमानो राजा कुपितं विदूषकं प्रति सामोपायं प्रस्तुवन्नाह—

राजा—मूर्ख ! मुझ से जबर्दस्ती सुन कर अब स्वयं क्यों नहीं मुझ से बतलाते।

विदूषक—क्या मुझ से भी जबर्दस्ती सुनना चाहते हैं ?

राजा—और क्या ? जबर्दस्ती ही।

विदूषक—तब तो नहीं सुन सकते।

राजा—कृपा कीजिये। महाब्राह्मण ! कृपा कीजिये। आप अपनी इच्छा-नुसार ही कहिये—

विदूषक—इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। वत्तहोदी पदुमावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ सदक्खिणा। अअं च अवरो महन्तो गुणो सिणिद्धेण भोणेअण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता–कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे अनुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता- कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

प्रमोदत्विति- महाब्राह्मण इति परिहासवचनम्। भोजनप्रियत्वाद्यभिप्रायेण। विशिष्ट उदारो वा ब्राह्मण इति तदर्थः। स्वैरं = स्वच्छन्दं निःशङ्कं च। स्वच्छन्दतायाः निःशङ्कतायाश्च सातिशयं द्योतनाय द्विरुक्तिः। बलात्करणभीतिमसम्भाव्य शीघ्रं प्रसन्नो भूत्वा स्वेच्छया निःशङ्कं वक्तव्यमुत्तरमिति भावः। पूर्वोक्तसामवचनेन प्रमोदन् राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुराह विदूषकः—इदानीमिति–अहं बहुमानदृष्ट्या वासवदत्तां पश्यामि। इत्थं वासवदत्तां प्रति आत्मनो बहुमानं संसूच्य स्वस्मिन् पद्मावतीकृतकोपवारणाय तद्गुणानपि वर्णयति भोजनभट्टो विदूषकः–तत्र भवतीति बहुमता = अधिकसम्मता। तरुणी = युवतिः। दर्शनीया–दर्शनयोग्या। अकोपना = कोपरहिता। सदाक्षिण्या = उदारा। स्निग्धेन = घृतादिप्रचुरस्नेहसंबद्धेन। भोजनेन = खाद्यपदार्थेन। प्रत्युद्गच्छति = प्रत्युद्व्रजति अन्विष्येति शेषः। श्रीमान् विदूषकः क्वास्ते इति मामितस्ततोऽन्विष्य सरसं भोजनं मम पुरतः समुपस्थापयन्ती मह्यं

विदूषक—तो आप सुनें। पूजनीया वासवदत्ता मुझे अधिक सम्मत है। यद्यपि कि माननीया पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमान-रहित, मिष्टभाषिणी एवम् सभी लोगों पर समान कृपा करने वाली है तथापि वासवदत्ता में एक महान् गुण यह भी था कि आर्य वसन्तक कहाँ गये' ऐसा कह कर मुझे खोजती हुई स्वादिष्ट भोजन से मेरा सत्कार करती थीं।

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ ! सुमरेहि दाणि एदं। [भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदिदानीमेतत् ।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै।

विदूषक —अविहा वासवदत्ता ! कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—(सविषादम्) एवम् ! उपरता ।

समादरं सम्पादयन्तीति संस्मृत्य वासवत्तायां महान् मे आदर इति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। विदूषकमुखेन स्वां बहुमतां पद्मावतीं च गुणवतीमनुनिशम्य वासवदत्ता ब्रवीति—भवत्विति–पर्याप्तमिति । स्मर = ध्यानं कुरु। मरसेन भोजनेन मत्कर्तृकं तवानुगमनं त्वया स्मरणीयमेव। श्रीमती वासवदत्ता मम बहुमते'ति विदूषकवचनमाकर्ण्य तं प्रशंसन्नाह राजा—भवत्विति देव्यै = महाराज्ञ्यै। प्रेममग्नं राजानं तथा प्रलापिन वीक्ष्य विदूषकः तं वासवदत्ताया उपरमं संस्मारयन्नाह—अविहेति–अविहा इति खेदे। वासवदत्ता काक्वा कथयिष्यते भवता इति शेषः। चिरात् = बहोः कालात्। सखे इदानीं भवता वासवदत्तेति कथयिष्यते। क्वेदानीं सा। सा तु बहोः कालाद् विनष्टेति विदूषकाभिप्रायः। राजा विषण्णो ब्रूते—एवमिति–सखे सत्यमुच्यते भवता। सा तु परलोकं गता। नेदानीमुपलब्धा।

वासवदत्ता—अच्छा ! अच्छा वसन्तक ! आप इस समय इसी को याद करें।

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक ! यह सब मैं देवी वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक—हाय वासवदत्ता ! महाराज अब वासवदत्ता कहाँ ? वह तो बहुत समय हुआ स्वर्गवासिनी हो गई।

राजा—(खेद के साथ) हाँ ऐसा ! वासवदत्ता मर गई।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसवादिओ ।
[रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि । अदो ! पिअं

अन्वय—अनेन परिहासेन मे मनः त्वया व्याक्षिप्तम् । तत इयं वाणी पूर्वाभ्यासेन तथा एव निःसृता ॥ ५ ॥

व्याख्या—अनेन = पूर्वोक्तेन । परिहासेन = केलिवाक्येन । मे = मम मनः = चित्तम् त्वया = भवता, व्याक्षिप्तम् = दूरं प्रेरितम् । ततः = कारणात् । इयम् = एषा वाणी वाक् पूर्वाभ्यासेन = पुरातनसंस्कारेण । तथा एव । निःसृता = निर्गता । वासवदत्तायामुपरतायामपि त्वदीयपरिहासेन साधुनापि वर्त्तते इति मनसः मुग्धतया परवशस्य मम मुखाद्वाणी निर्गतेति भावः ॥ ५ ॥

पद्मावती सविषादं वदति रमणीय इति । खल्विति—वाक्यसौन्दर्ये । नृशंसेन = क्रूरेण । विसंवादितः = विनाशितः । प्रियाविषयकः प्रियतमप्रणयप्रकाशकः हृदयङ्गमः वार्त्तालापप्रसङ्गः दुर्जनेनानेन विदूषकेण वासवदत्तां स्मारयता सम्प्रति विघटित इत्यर्थः । पूर्वप्रपञ्चितं वचः आकलयन्ती वासवदत्ता ससन्तोषं कथयति—भवत्विति–भृशार्थे द्विर्भावः । विश्वस्ता = जातविश्वासा । अप्रत्यक्षम् = परोक्षरूपम् मया हि तादृशप्रणयसूचकमार्यपुत्रप्रयुक्तं वचनं परोक्षेणापि श्रवणाभ्यां पीयते इति धन्यास्मीति भावः ।

इस परिहास से तो तुमने मेरा मन बहुत दूर खींच लिया । इस इस कारण पूर्व के अभ्यास वश मेरी वाणी उसी प्रकार निकल गई ॥ ५ ॥

पद्मावती—इस दुष्ट विदूषक ने सुन्दर कथा-प्रसङ्ग बिगाड़ दिया ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा ! अच्छा ! मुझे विश्वास हो गया

णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि। [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते।]

विदूषक—धारेदु धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः ईदृशमिदानीमेतत्।]

राजा—वयस्य! जानाति भवानवस्थाम्! कुतः—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।

सुहृदं राजानं विषादभावापन्नं दृष्ट्वा विदूषकस्तं समाश्वासयन्नाह—धारयत्विति—प्रकृतिस्थमात्मानं कारयत्वित्यर्थः। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। विधिः = भाग्यम्। अनतिक्रमणीयः अनुल्लङ्घनीयः। इदानीम् = अधुना। ईदृशम् भाग्यमिति शेषः।

मित्रवर! एतद्वियोगवैक्लव्यम् धैर्यं सन्धार्य सह्यताम् भवता। यतो विधिगतिः न केनापि उल्लङ्घयितुं शक्यते। यद्भावितं तद्भवत्येव। अत्र न कस्यापि स्वातन्त्र्यमिति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। विदूषकोक्तिनिशम्य मविषादं राजा ब्रवीति -वयस्येति—अवस्थां दुखदां दशां जानाति कष्टकरी विरहावस्था जानात्येव येनैतादृशमुपदिश्यते।

अन्वयः—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्। स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं

जो इस प्रकार परोक्ष में भी ऐसे वचन मेरे कानों को सुनने के लिये मिल रहे है। यह तो परम प्रसन्नता का विषय है।

विदूषक—आप अपने को सम्भालिये, सम्भाल लीजिये। भाग्य का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता। इस समय तो यह वियोग दुःख चुपचाप सहना ही पड़ेगा।

राजा—मित्र! तुम मेरी अवस्था को जानते हो क्योंकि प्रियजनों में

यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्ण खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः।) [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्रभवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

याति। तु एषा यात्रा यत् इह वाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्राप्तानृण्या सती प्रसादं याति ॥ ६ ॥

व्याख्या—बद्धमूल. बद्ध मूल येन सः = दृढमूलः। अनुरागः = प्रणय.। त्यक्तु = हातुम्। दुःखम् = कष्टम् यथा भवति तथा। स्मृत्वा स्मृत्वा = भूयोभूयः स्मरण कृत्वा। दुःखम् = कष्टं। नवत्वं = नूतनत्वं। याति = प्राप्नोति। तु परन्तु। एषा = इयं यात्रा = लोकस्थितिः। यत् इह अस्मिन्, वाष्पं = अश्रु विमुच्य = परित्यज्य बुद्धिः = निश्चयात्मिका धिषणा प्राप्तानृण्या = आसादितानृण्या। प्रसादं = नैर्मल्यम्। याति = प्राप्नोति। शालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

महान् हि वासवदत्ता प्रणयमहिमा यः विरहे तत्स्मरणं महद्दुःखमुद्बोधयति। तेन व्याकुलं मनः रोदनाल्लघूभवति। ध्रुवं मनोऽधमर्णं भवति अश्रुपात एव तदृणनिर्यातनं नाम। येन कथमपि पर्याकुलं मन. प्रसन्नतां गच्छतीति भावः। दुःखाद्रुदन्तं राजानं दृष्ट्वा विदूषकः प्राह --अश्रुपातेति—अश्रुपातक्लिन्नम् वाष्पपतनार्द्रम्। मुखोदकम् = मुखप्रक्षालनजलम्। रोदनेन

दृढ़ हुये अनुराग का त्याग बड़ा कठिन होता है और बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नवनवायमान हो जाता है। ऐसी दशा मे मात्र आँसू बहाना ही उपाय है। क्योकि ऐसा करने से मन प्रियजनों के प्रेम से उऋण होकर प्रसन्न हो जाता है ॥ ६ ॥

विदूषक—आपका मुख आँसूओं के गिरने से मलिन हो गया है इसलिये मुख धोने के लिये पानी लाता हूँ।

पद्मावती—अय्ये ! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं । जाव णिक्कमहा । [आर्ये ! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम् । यावन्निष्क्रमामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । अहव चिट्ठ तुवं । उक्कण्ठिद भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं । अह एव्व गमिस्सं । [एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।]

हि राज्ञो मुखं भृशं मलिनं सञ्जातम् अतो तत्प्रक्षालनार्थं जलमानेतुं गम्यते मयेत्यर्थः । अश्रुपूर्णेक्षणः प्रियतमः न किलास्मान् द्रष्टुं शक्नुयादिति कुब्जानिर्गमनावसरः समुचित इति विचार्यमाणा पद्मावती अवन्तिकां ब्रूते—आर्ये इति–बाष्पाकुलपटान्तरितं = अश्रुव्याप्तवस्त्राच्छादितम् । निष्क्रमामः = निर्गच्छामः । कुब्जान्निर्गमनस्यायमेवावसर इति । अवन्तिकायास्तत्रानुमितिं प्रार्थयति पद्मावती । पद्मावतीं दृष्ट्वाऽवन्तिका ब्रूते –एवमिति–समीचीनोऽयं ते विचारो यदधुनास्माभिर्गन्तव्यमिति पुनः किञ्चित्समयोचितं विचार्य पद्मावतीनिर्गमनं निवारयितुं सा पक्षान्तरमुपन्यस्यति—अथवेति । उत्कण्ठितम् = समुत्सुकं पतिम् उज्झित्वा = त्यक्त्वा अयुक्तमनुचितम् । पद्मावति ! सर्वासां नो निर्गमन मनुचितम् त्वयात्रैव स्थातव्यम् त्वां द्रष्टुं भृशमुत्कण्ठते ते पतिः अतस्तदनादृत्य तवेतो निर्गमनमनुचितमिति अहमेव गमिष्यामीति भावः ।

(चला गया)

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्र का मुख अश्रुप्रवाहपूर्ण होने से मानो कपड़े से ढका है । इस समय हम लोग निकल चलें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही । अथवा तुम यहीं ठहरो । उत्कण्ठित हुये स्वामी को छोड़ कर तुम्हारा यहाँ से जाना उचित नहीं । मैं ही जाऊँगी ।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ । [सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला प्रविश ।]

विदूषक—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा) एसा एत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा अत्रभवती पद्मावती !]

अवन्तिकोपस्थापितमिमं प्रस्तावमनुमोदमाना चेटी ब्रूते—सुष्ठ्वति—सुष्ठु = उचितम् । आर्या = अवन्तिका । उपसर्पतु = गच्छतु । भर्त्तारमिति शेषः । राजकुमार्या हि भर्त्तुः समीपं गन्तव्यमिदानीमेतया इतो गम्यतामिति भावः । पद्मावत्यस्मिन्नर्थे अवन्तिकाया अभ्यनुज्ञां याचमाना प्राह—किं नु खलु इति—मया किं भर्त्तुः समीपमधुना गन्तव्यम् । अत्राभ्यनुज्ञायते किं भवत्येति—तच्छ्रुत्वा स्वकीयामभ्यनुज्ञां ददमानाऽवन्तिका ब्रूते—हला प्रविशेति—सखि ! त्वयावश्यमेवप्रियसन्निधौ गन्तव्यमित्येवं पद्मावती निगद्य वासवदत्ता ततो निर्गच्छतीत्याह ।

राज्ञो मुखप्रक्षालनार्थं जलमानेतुं गतस्य विदूषकस्य राजसन्निधौ प्रवेशमाह—प्रविश्येति—कमलिनीपत्रपुटे जलमादाय राज्ञः समीपमागतः विदूषकस्तत्रागतां पद्मावतीं पश्यन्नाह—एषेति—अहो ! अत्र श्रीमती पद्मावती

चेटी—आर्या उचित कहती है । अतः आप स्वामी के पास जावें ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या मैं जाऊँ ?

वासवदत्ता—हाँ सखि जाओ । (ऐसा कह कर चली गई ।)

(विदूषक प्रवेश कर);

विदूषक—(कमल के पत्ते में पानी लिये हुये) अहा ! ये माननीया पद्मावती यहाँ आई हुई हैं ।

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ । किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक । किमेतत् ?]

विदूषकः—एदं इद । इद एदं । [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्य भणतु ।]

विदूषक—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेणो सस्सुपाद खु तत्तहोदो मुहं । ता गृह्णादु होदी इदं मुहोदअ । [भवति !

विराजते । जलमानयन्तं विदूषकं दृष्ट्वा तत्कारणं जिज्ञासमाना पद्मावती पृच्छति—आर्येति—आर्यपुत्रकर्तृकरोदने भवत्कर्तृक जलानयने चेत्युभयत्र किं कारणमित्यर्थः । अत्र यथार्थं कारणं कथ्यतामिति भावः । यथार्थ कारणं संगोपयन् यथा कथञ्चित् पद्मावत्याः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्विदूषक आह—एतदिदमिति-एतत् = मत्करस्थम् । इदं = जलम् । मत्करे किमिदमिति भवती पृच्छति चेदिदं जलम् । पुनः पदप्रातिलोम्येन तदर्थकं वाक्यान्तरमाह—इदमिति--जलमेवेदं भावः । प्रियतमस्य रोदनकारणं सुस्पष्टं जिज्ञासितुं पुनः पद्मावती त्रिवारं पृच्छति—भणत्विति--सुस्पष्टं कारणमुच्यतां तत्र भवतः अश्रुपातस्य जलानयनस्य च । मदीयं मनः एतत्समाकर्णयितुं भृशमुत्कस्कण्ठितमिति भावः । वासवदत्तावियोगजेन दुःखेन राजा रोदित्युक्ते सति सहजसपत्नीभावः जन्येर्ष्यावशात् पद्मावती स्वप्रियतमे प्रणयकोपमाविष्कुर्यादिति विदूषक. सत्यं कारणमनुक्त्वा कारणान्तरं समयोचितमसत्यं च निर्दिशन्नाह-भवति । इति वातनीतेन = पवना-

---

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—यह वह । वह यह ।

पद्मावती—कहें कहें आर्य ! कहें ।

विदूषक—श्रीमति ! हवा के झोंके से उड़े हुये काश पुष्प के पराग के

वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम्। तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम्।]

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिणो एव्व होदि। (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो। इदं मुहोदअं। [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। जयत्वार्यपुत्रः। इदं मुखोदकम्।]

धूतेन। काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धारजसा। साश्रुपातम् = अश्रुजलपूर्णम्। श्रीमतः स्वामिनः वाताव धूतकाशकुसुमस्य रजः नयनयोरभ्यन्तरं गतम्। तेन हेतुना राज्ञो मुखमश्रुपूरितं जातमिति भावः। अतो राजकीयमुख-प्रक्षालनार्थं मयानीतमेतज्जलं गृह्णाना भवत्या प्रक्षाल्यता चाश्रुकलिलं राज्ञो मुखम्।

विदूषकस्य तदुदारवचनमाकर्ण्य स्वान्ते पद्मावती तं प्रशंसति—अहो इति–अहो प्रशंसावाचकमव्ययपदम्। परिजन =भृत्यवर्गः। उदारो जनः उदारजनमेव परिजनं लभते। यो यादृशः स ताद्रशमेव सहचरमाप्नोति। अयम् परिजनः स्वस्वामिविषये कीदृशी चिन्तामुद्वहति इति स्वगतमभिधाय भर्त्तुः समीपं गत्वा ब्रवीति—जयत्विति–सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् स्वामी। स्वामिन् मुखप्रक्षालनार्थमेतज्जलम्। एतेन स्वमुखं प्रक्षालनीयमित्यर्थः। पद्मावती-मागतां विलोक्य सानन्दं राजा ब्रूते–अये इति। अये इति सम्भ्रमं व्यनक्ति। अहो अस्मत्प्रिया पद्मावती समागता। अपवार्य पद्मावत्याः सकाशान्मुखं परावर्त्य विदूषकसम्मुखं कृत्वा अन्याश्राव्यत्वं यथा भवेत्तथा। इदम् = एतत्

आँख मे पड़ने से राजा का मुख अश्रुपूर्ण हो गया है, इसलिये इनका मुख धोने के लिए इस जल को आप लें।

पद्मावती—(मन ही मन) अहो ! उदार पुरुष के परिजन भी उदार ही होते हैं (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह मुख धोने के लिए जल है।

राजा—अये ! पद्मावती ! (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषक।—(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावती आस्यताम् ।

पद्मावती—ज अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्ययु आज्ञापयति ।]

किं = किं प्राप्तम् । अयि मित्र ! सहसोपलब्धया पद्मावत्या किमिदमानीतम् । मया च स्वरोदनकारणं किमस्यै निवेदनीयम् इति राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं कर्णे कथ'ति विदूषकः—एवमिवेति—पद्मावती यथा न शृणुमादिति कर्णे कथयति वास्तवं रोदनकारणं वक्तुमनुचितमिति 'काशकुसुमपरागेणाक्षि-पतितेन राजा रोदिति—तदर्थं च मुखप्रक्षालनीयं जलं मयानीतं भवत्या गृह्यतां प्रक्षाल्यतां च राज्ञो मलिनं मुखमित्येवं निवेदितम् । तथैव भवताऽपि आत्मनो रोदनकारणं निवेदनीयमित्यर्थः ।

विदूषकनिवेदितं रहस्यार्थमवधार्य तं प्रशंसन्नाह राजा—साध्विति ब्रवीति । मित्रवर ! समीचीनमुत्तरं प्रदत्तं त्वया—मयापि तदेव निवेदयिष्यते । पद्मावत्यानीतजलेन राज्ञो मुखप्रक्षालनं दर्शयति कविः—आचम्येति । मुखं प्रक्षाल्येत्यर्थः । पद्मावतीमुपदेशयितुमिच्छन् राजा आह—पद्मावतीति प्रिये ! समुपविश्यतामित्यर्थः । भर्त्तुराज्ञायाः सादरं स्वीकरणं नाटयति पद्मावती

राजा—ऐं ! पद्मावती (केवल विदूषक की ओर अपना मुख कर) वसन्तक ! यह क्या है ?

विदूषक—(कान में) यह ऐसा है ।

राजा—वाह वसन्तक ! वाह (मुख धोकर) पद्मावती बैठो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा (बैठ जाती है)

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि !
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

यदिति । राजा पद्मावतीं स्वसमीमुपवेश्य--विदूषकवचनानुसारं वस्तुस्थितिं संगोपयन् स्वरोदने अनृतं कारणान्तरमुपनिवेदयन्नाह—पद्मावतीति--

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साश्रुपातम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—भामिनि=कोपनशीले ! शरच्छशांकगौरेण शरत्कालीनशशाङ्क इव गौरस्तेन शरच्चन्द्रशुक्लेन । वाताविद्धेन = समीरसम्प्रेरितेन । काशपुष्पलवेन इक्षुगन्धापुष्परजःकणेन । इदम् = एतत् । मम = मे । मुखं = वदनम् । साश्रुपातम् = अश्रुपातक्लिन्नम् । अस्तीति शेषः । अयि प्रिये ! अत्र प्रमदवने वायुनाक्षिप्यमाणाः काशपुष्परेणवः समन्ततः पतन्ति ते एव मन्नयनयोरन्तर्गताः अश्रूण्युद्भावयन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

पुनरस्यानृतवचनस्यौचित्यं समर्थयन् स्वमनसि राजा आह -इयमिति ।

अन्वयः—नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् । इयं कामं धीरस्वभावा तु स्त्रीस्वभावः कातरः ॥ ८ ॥

राजा—प्रिये पद्मावती ! वायु के द्वारा उड़ाये गये शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सफेद इन काश पुष्पों के पराग के पड़ जाने से मेरे मुख पर अश्रुपात हो गया ॥ ७ ॥

(मन में)

नयी ब्याही हुई यह बाला (वासवदत्ता के वियोगजन्य दुःख से होने

विदूषक—:—उइदं तत्तहोदो मअधराअस्स अवरह्लकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं। सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिवो पीदिं उप्पादेदि। ता उट्ठदु दाव भव। [उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्लकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जदर्शनम्। सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान्।]

व्याख्या—नवोद्वाहा नव उद्वाहो यस्याः सा = नूतनपरिणया। इयं = एषा। बाला = युवतिः। सत्यम् कारणं। श्रुत्वा = आकर्ण्य। व्यथां = दुःखम्। व्रजेत् = प्राप्नुयात्। यद्यपि इयं = पद्मावती, कामम् = पर्याप्तं यथा स्यात्तथा धीरस्वभावा = धीरप्रकृतिः। तु = परन्तु। स्त्रीस्वभावः = नारीप्रकृतिः। कातरः = अधीरः। नूतनपरिणीतेयमश्रुपातस्य तथ्य कारणं ज्ञात्वा भृशमुद्विग्ना भवेद्यद्यपि प्रकृत्येयं धीरा नोद्विजेत तथापि स्वभावतः स्त्रियः अधीरा भवन्तीति मया युक्तमेवोचरितमिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

तत्कालं समुचितं मगधराजोपसर्पणरूपं कार्यं राज्ञाऽनुष्ठेयमावश्यकं स्मारयन् विदूषको ब्रूते—उचितमिति—मगधराजस्य = मगधाधिपस्य अपराह्लकाले = दिनस्य चतुर्थभागे। प्रतीष्टः = स्वीकृतः प्रीतिमुत्पादयति = सन्तोषं जनयति। अपराह्लकाले श्रीमान् मगधराजः भवन्तं पुरस्कृत्य मार्गे परिचितानां दर्शनार्थं गन्तुमर्हति। हि—निश्चये। सम्मानः प्रतीष्टः = स्वीकृतः सन् सम्मानकर्तुरान्तरं तोषविशेषमुद्भावयितुं प्रभवति। तमेतं तेन करिष्यमाण-मादरं स्वीकर्तुमर्हति भवानिति। अतस्तदर्थम् अनुतिष्ठतु तावद्भवान्। उत्थातव्यं

वाले इस अश्रुपात रूप) सत्य बात को सुन कर दु.खी हो जायगी। यद्यपि इसकी प्रकृति गम्भीर है किन्तु स्त्रियों का स्वभाव तो कातर होता ही है ॥ ८ ॥

विदूषक—महाराज मगधेश्वर को आपको आगे कर अपराह्ल काल के समय अपने मित्रों का साक्षात्कार करना उचित है सत्कार की स्वीकृति प्रीति उत्पन्न करती है इसलिये आप अब उठें।

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

—:❋:—

भवतेति । विदूषकोक्तिं समर्थयति राजा—बाढमिति । बाढम् वरम् । प्रथमः कल्पः = मुख्यो विधिः । उत्थाय = उत्तिष्ठन् ब्रवीतीति शेषः ।

अन्वयः—लोके विशालानां गुणानां सत्काराणां च कर्तारः नित्यशः सुलभाः । तु विज्ञातारः दुर्लभाः ॥ ९ ॥

व्याख्या—लोके=जगति । विशालानां=महतां । गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनाम् सत्काराणां=आदराणां च कर्त्तारः=सम्पादयितारः । नित्यशः=प्रायः सुलभाः = सुप्राप्याः । तु = परन्तु । विज्ञातारः = वेत्तारः कृतज्ञा इत्यर्थः । दुर्लभाः = दुष्प्राप्याः, नित्यमुपकर्त्तारः सत्कर्त्तारश्च लोकाः बहुधा बहुतमा दृश्यन्ते किन्तु कृतज्ञा सत्कारज्ञाश्च लोके स्वल्पतमा एव । अतो मगधराज कृत-सत्कारस्य तद्गुणविशेषस्य च कृतज्ञताऽस्माभिः प्रकाशनीया इत्यर्थः ॥ ९ ॥

निष्क्रान्ताः = निर्गताः ।

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

—:❋:—

राजा—अच्छी बात है यह तो मुख्य कार्य है ।

(उठ कर)

महान् गुण एवं महान् सत्कारों को करने वाले बहुधा सुलभ हुआ करते हैं । किन्तु उनसे सत्कृत होकर कृतज्ञता का ज्ञापन करने वाले लोग स्वल्प ही होते हैं ।

(सब लोग चल देते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं । [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

विदूषकमुखाद्वासवदत्तां प्रियतमामाकलय्य प्रसङ्गाद्वासवदत्तावियोगविकलस्य राज्ञो रोदनम् । पद्मावतीसमागमो मगधराजसमीपोगमनं चेति चतुर्थाऽङ्के संसूचितम् । इदानीं किल पञ्चमेऽङ्के शिरोवेदनावशात्पद्मावत्या अस्वस्थतामाकलय्य, तत्रोपस्थाय तत्प्रतीक्षया तस्याः शय्यायां शयनसुखमनुभवतः तान् तान् वासवदत्ताविषयकान् स्वप्ने विलापप्रलापानुपवर्ण्य जाग्रदवस्थायां विदूषकेण समं तद्विषयमालपतो राज्ञो महाराजदर्शकादेशात् स्वपरिपन्थिनमारुणिं प्रति सेनयाभिगमनोत्साहो दर्शयिष्यते । तदनुगुणमत्र प्रवेशकमुखेन चेटीद्वयस्य करणीयं दर्शयन् पद्मिनिकां नाम्नीं चेटीं दर्शयति कविः—ततः प्रविशतीत्यादिः पद्मिनिका चेयं भर्तृदारिकायाः पद्मावत्याः शिरोवेदनां मधुरिकामुखेन वासवदत्तां निवेदयितुं विदूषकमुखेन च स्वयं राजानं निवेदयितुं समुत्सुका मधुरिकामन्विष्यन्ती तदुचितं वचः प्रस्तौति—मधुरिकेति । अयि मधुरिके सत्वरमागच्छ । कार्यविशेष. समुपस्थित इति तदामन्त्रणानुसारं मधुरिकाप्रवेशं दर्शयति कविः–प्रविश्येति सख्या पद्मिनिकयामन्त्रिता कृतप्रवेशा च मधुरिका ब्रवीति—हलेति··सखि एषाहमुपागता । किमर्थमाहूयते ।

(तदनन्तर पद्मिनिका नाम की दासी का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुरिके ! मधुरिके ! जल्द आ ।

(मधुरिका प्रवेश कर)

मधुकरिका—हला ! इअह्मि। किं करीअदु ? [हलां ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीषंवेदणाए दुक्खाविदेत्ति। [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि। केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्वणिवेदेहि। तदो सअं एव्वआगमिस्सदि।

प्रस्तुतं निवेदयति पद्मनिका—हलेति··सखि ! साम्प्रतं श्रीमत्याः राजकुमार्याः शिरसि वेदना सञ्जाता । तत्कारणेन सा नितरामस्वस्थता वहन्ती दुःखिता वर्त्तते । तस्येयं कष्टकरी अवस्था त्वया न ज्ञायते किम् । तच्छ्रुत्वा मधुकरिका ब्रूते—हा धिगिति–सखि नूनं कष्टकरं वृत्तान्त श्रावितवत्यसि । तर्हि कथय किं मया विधेयमिति–तत्कालोचितं कर्त्तव्यं निर्दिशन्ती पद्मिनिका ब्रूते—हलेति । शब्दायस्व = कथय । सत्वरमितो गत्वा त्वां भवतीमवन्तिकामिमं वृत्तान्तं निवेदयेति । तदाह्वानं नावश्यकम् सा स्वयमेवागता भविष्यतीत्याह—केवलमिति । कार्यमधुना चिकित्सकस्य । अवन्तिकोऽस्थाय किं विधास्यत इत्याशयेनाह मधुकरिका—हलेति–मधुराभिः=मनोहराभिः वचोभिः । विनोदयिष्यति=दुःखम् अपनेष्यति। दुःखसमये मनोहरवचनयुक्ताभिः कथाभिः सा

मधुकरिका—सखि ! यह मैं आ गई । क्या कार्य करना है । कहो ।

पद्मिनिका—सखि ! क्या तुम नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती शिरोवेदना से व्यथित हैं ।

मधुकरिका—हाय ! तब तो बड़े दुःख की बात है ।

पद्मिनिका—सखि ! तू शीघ्र जा और आर्या अवन्तिका को

[हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व। केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय। ततः स्वयमेवागमिष्यति।]

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहिं कहाहिं भट्टिदारिआएसीसवेदणं विणोदेदि। [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति।]

मधुकरिका-जुज्जइ। कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ?[युज्यते। कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहिके किल सेज्जा त्थिण्णा। गच्छ दाणिं तुवं

भर्तृदारिकायाः शिरोवेदनं लघु करिष्यत्यतः सत्वरं सूचनीयमिति भाव। पद्मिनिकाचिन्तितमुपायमभिनन्दन्ती मधुकरिका पृच्छति—कुत्रेति—शयनीयं =शय्या। कुत्र = कस्मिंस्थाने। रचितम् = परिकल्पितम्। सखि त्वयोक्तं साधूपपद्यते। किन्तु प्रथमं तावदिदं वक्तव्यम्—सा राजकुमारी वेदनाक्रान्ता यत्र वर्त्तते तत्स्थानं कुत्रास्ति ? यत्रावन्तिकया गन्तव्यमिति मधुकरिका जिज्ञासते। पद्मिनिका तदुचितं वचनं प्रस्तुवन्त्याह—समुद्रगृहके = तन्नामके

बुला ला। केवल राजकुमारी की शिरोवेदना बतलाना। वे स्वयं आ जायेंगी।

मधुकरिका—सखि ! वे इस विषय में क्या कर सकती है ?

पद्मिनिका—इस समय वे मनोहर कहानियों से राजकुमारी का मनोरञ्जन कर उनकी शिरोवेदना दूर करेंगी।

मधुकरिका—तब तो ठीक है अच्छा बताओ राजकुमारी जी की शय्या कहाँ लगाई गई है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृहनामक स्थान में उनकी शय्या लगाई गई है।

अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअं अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

मधुकरिका—एव्वं होदु । (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छरा-

स्थाने । आस्तीर्णा=परिकल्पिता । अन्विष्यामि=गवेषयामि । सखि समुद्रगृहे तत्र भवत्याः पद्मावत्या शयनं कल्पितम् । तत्रोपस्थापयितुमवन्तिकां सम्प्रति गन्तव्यं त्वया तत्समीपम् । अहं च भर्तुर्निवेदनार्थं=स्वामिनं संसूचयितुम् आर्यम्=पूज्यं वसन्तकमन्वेष्टुं गच्छामीति भावः । सख्या वचनमनुमोदमाना मधुरिका ततः प्रस्थातुमिच्छन्ती ब्रूते—एवं भवत्विति । आर्यामवन्तिकां सूचयितुं गच्छाम्यहम् तावत्त्वमपि पूज्यं वसन्तकमन्वेष्टुं प्रयाहीति । मधुकरिकाप्रस्थानं दर्शयति निष्क्रान्तेति । विदूषकान्वेषणे चिन्तां नाटयति पद्मिनिका कुत्रेति । समयेऽस्मिन् श्रीमान् विदूषकः क्वोपलभ्यते येनाहं तद्दर्शनं प्राप्नुयामिति ।

पद्मिनिकाचिन्तासमकालमेव विदूषकं प्रवेशयति कविः—ततः प्रविशतीति । मदनसन्तापसन्तप्तस्य राज्ञश्चिन्तयेतस्ततो सञ्चरतो विदूषकस्य

अच्छा तुम जाओ । मैं भी राजा से निवेदन करने के लिए आर्य वसन्तक को ढूंढने जा रही हूँ ।

मधुकरिका—ऐसा ही करो । (निकल जाती है)

पद्मिनिका—तो इस समय आर्य वसन्तक का कहाँ पता लगाऊँ ?

(उसी समय विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—आज महारानी वासवदत्ता के वियोग से विकल चित्त वाले

अस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुह्यवहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ। (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते। अयि ! पद्मिनिका ? पद्मनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं-भट्टिदारिआ

चिन्तनीयमाह–अद्य खल्विति । खलु इति निश्चये देवीवियोगविधुरहृदयस्य देव्याः = वासवदत्तायाः = वियोगेन विरहेण विधुरं = विकलं हृदयम् = चित्तं यस्य तादृशस्य । पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य–पद्मावत्या = तन्नामिकाया राजकुमार्या = पाणिग्रहणेन विवाहेन, समीरितस्य = प्रवर्त्तितस्य । अत्यन्तसुखावहे = अत्यन्तानन्ददायके । मङ्गलोत्सवे = मङ्गलमये उत्सवे । काले = समये । मदनाग्निदाहः = कामानलसन्तापः । अधिको वर्धते = नितरामेधते । प्रियतमायाः वासवदत्तायाः विरहेण विषयं प्रतिनैरपेक्ष्यं प्राप्तोऽपि गुणवतीं पद्मावतीं परिणीय तत्रभवानुदयनो विषयेषु भृशं प्रवृत्तिमाधत्तेऽधुनेत्यर्थः । एवं राज्ञः स्थितिविषये । चिन्तयन् विदूषयकस्तत्र पद्मिनिकामागतां वीक्ष्य विस्मयं प्रकटयति अयीति । अहो इयं पद्मिनिका समुपस्थिता । पुनस्तस्याः अकस्मादागमनकारणं जिज्ञासमानो ब्रवीति–पद्मिनिके इति–अयि पद्मिनिके त्वमिह किमर्थमागताऽसि ? किं तेऽत्र कार्यम् । तदनन्तरं तस्यैवान्वेषणे पराय"ा

तथा पद्मावती के साथ विवाह करने से विषय सुख से प्रेरित हुये माननीय वत्सराज के कामाग्नि का सन्ताप अत्यन्त सुखप्रद इस मङ्गल के उत्सव में अधिक बढ़ रहा है। (पद्मिनिका की ओर देखकर) पद्मिनिके ! यहाँ क्या हो रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! राजकुमारी पद्मावती सिरदर्द से दुःखित हैं। क्या आप यह नहीं जानते ?

पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति । [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि । [भवति ! सत्यं ? न जानामि ।]

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

पद्मिनिका तद्द्वारेण राज्ञो निवेदनीयं पद्मावतीवृत्तं कथयति आर्येति । आर्य= मान्य विदूषक ! तत्र भवती पद्मावतीदानीं शिरोवेदनामनुभवतीति वार्त्ता नोपलब्धा किं भवतेति । तद्विपकं स्वकीयकमज्ञानं प्रदर्शयन्विदूषको ब्रवीति—भवतीति । अहं सत्यं वदामि पद्मावत्याः अस्वस्थताविषये नाहं किमपि जानामि । इदानीं त्वयैव सूच्यते इत्यर्थः । पद्मावत्यस्वस्थताविषये उचितं कर्तव्यं निर्दिशयन्ती पद्मनिका ब्रवीति—तेन हीति । शीर्षानुलेपनम्= शिरस्यनुलेपनीयं पीडापनोदनमौषधम् । सम्पादयितुमिति शेषः । त्वरयामि=शीघ्रतां करोमि । भवता हि वृत्तमिदं स्वामिने निवेदनीयम् । मयापि साम्प्रतं तच्छिरोवेदनोपचारार्थं किञ्चिदौषधं त्वरया सम्पादनीयमिति भावः । शिरोवेदनां वहन्ती क्वापि शयानावश्यमेव वर्तते इति विदूषकः पृच्छति—

विदूषक—श्रीमती ! मैं सचमुच नहीं जानता ।

पद्मिनिका—तब आप यह बात राजा से निवेदन कर दें । मैं भी तब तक उनके सिरदर्द को दूर करने के लिए लेप लगाने की औषधि लेकर शीघ्र आती हूँ ।

विदूषक—पद्मावती की सेज कहाँ पर लगाई गई है ।

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा ? [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अह वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं [गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवन्त निवेदयिष्यामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।

कुत्रेति । पद्मिनिकोत्तरयति—समुद्रगृहके इति–समुद्रगृहे हि तस्याः शयनं परिकल्पितमिति हेतोः तत्र भवान् भर्त्रा सह गच्छत्विति पद्मिनिकोऽभिप्रायः ।

कविः द्वयोरपि मञ्चान्निष्क्रमणं सूत्रयति–निष्क्रान्ताविति सम्प्रति समयोचितं प्रवेश राज्ञो दर्शयति कविः–श्लाघ्यामिति इदानीं श्रीमानुदयनो वासवदत्तायाः स्मरणानुभावं नाटयन् ब्रवीति—

अन्वयः—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहम्) लावणके हुतवहेन

पद्मिनिका—समुद्रगृह नाम के महल में उनकी शय्या बिछाई गई है ।

विदूषक—अच्छा तुम जाओ । मैं महाराज से निवेदन कर रहा हूँ ।

(दोनों वहाँ से निकल जाते हैं)

(तदनन्तर राजा का प्रवेश)

राजा—समय के माहात्म्य से पुनः जिस पर स्त्री परिग्रह रूप भार आ

लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टि
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

विदूषक—तुवरदु तुवरदु दाव भवं। [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

हृताङ्गयष्टि श्लाघ्यां अवन्तिनृपतेः सदृशी तनूजां ता हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ॥ १ ॥

व्याख्या—कालक्रमेण = समग्रमहिम्ना कालपर्यायेण कालातिक्रमणानन्तरं वा। पुनरागतदारभारः पुनः=भूयः। आगतः=उपस्थितः दारभार=पद्मावती-परिग्रहणरूपा धूर्यस्मिन् सोहम् लावणके = तन्नाम्नि ग्रामे हुतवहेन अग्निना। हृताङ्गयष्टि हृता = दग्धा अङ्गयष्टिस्तनुलता यस्या सा तादृशीम् श्लाघ्याम् = गुणगौरवेणादरणीयाम्। अवन्तिनृपतेः = अवन्तिदेशाधिपस्य सदृशीम् = अनुरूपां। तनूजां = कुमारीं। हिमहता = हिमेन हताम् तुषारनाशितां पद्मिनीम् = कमलिनीम् इव। चिन्तयामि = ध्यायामि। कथञ्चित्पद्मावतीं परिणीनवतोऽपि वह्नौ दग्धा प्रशंसाम्पदां अनुरूपामवन्तिराजकुमारीं वासवदत्तामुद्दिश्य मे मनस्यारूढो शोकभारो न तावल्लघु भवतीत्यर्थः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

पद्मावतीवृत्तं निवेदयितुं विदूषकस्य प्रवेशमाह--प्रविश्येति-राजानं त्वरयन् विदूषको ब्रूते—त्वरतामिति। राजन्! भवता त्वरा कर्त्तव्येत्यर्थः।

पड़ा है ऐसा मैं सर्वथा प्रशंसा के योग्य अपने अनुरूप लावणक गाँव में आग से जलाई गई अतएव तुषार से अभिहत कमलिनी की तरह अवन्तिराज महासेन की कन्या वासवदत्ता को याद कर रहा हूँ।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—आप बहुत शीघ्रता करें।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पद्मिणिआए कहिदं। [पद्मिनिकया कथितम्।]

राजा—भोः! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।

ईदृश्यास्त्वरायाः किं कारणमिति—प्रष्टुं राजा ब्रवीति—किमर्थमिति। राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्विदूषको ब्रवीति—तत्र भवतीमिति—पद्मावती अस्वस्था वर्त्तते इति तत्र शीघ्रतया भवतीपस्थातव्यमिति विदूषकोक्ताभिप्रायः। राजा 'पद्मावती शिरोवेदनामनुभवतीति केनोक्तम्' इत्येवं विदूषकं पृच्छति—कैवमाहेति। 'वृत्तमिदं पद्मिनिका कथितवती'ति विदूषकः प्राह—पद्मिनिकयेति पद्मावत्या अस्वस्थतायाः श्रवणात् सकष्टमाह राजा—भोः कष्टमिति—कष्टकरीयं वार्त्ता—किं तत्कष्टमिति अग्रिमे पद्ये वर्णयति कविः।

अन्वयः—रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा अद्य मम

राजा—किसलिये ?

विदूषक—महारानी पद्मावती शिरोवेदना से व्यथित हैं।

राजा—तुमसे ऐसा किसने कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने।

राजा—हाय! महान् कष्ट की बात हैं।

रूप सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्रियतमा पद्मावती को पाकर यद्यपि

पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]

शोको मन्द इव । पूर्वाभिघातसरुजः अनुभूतदुःखः पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

व्याख्या—रूपश्रिया = सौन्दर्यशोभया । समुदिताम् = संयुक्ताम् ; गुणतः = दयादाक्षिण्यादिगुणैः । युक्तां = सहितां । प्रियाम् = पद्मावतीम् । लब्ध्वा = सम्प्राप्य । समाश्वस्तस्येति शेषः । मे शोकः = तद्विनाशजन्मा विषादः । मन्द इव = किञ्चित्स्वल्प इव सञ्जात इति शेषः । पूर्वाभिघातसरुजः पूर्वः प्राथमिकः स चासावभिघातश्च पूर्वाभिघातस्तेन सरुजः वेदनायुक्त । अपि पुनः अनुभूतदुःखः = अनुभूतं भुक्तं दुःखं कष्टं येन तादृशोऽहम् । पद्मावतीं = नवोढामिमाम् । तथैव = विनाशं गतां वासवदत्तामिव विनाशं गमिष्यन्तीम् । समर्थयामि = सम्भावयामि । पूर्वं वासवदत्ता यथाभूद्विनष्टा तथैवेयमपि शिरोवेदनार्त्ता विनष्टा भविष्यतीति सम्भावये । विपन्नो जनः सर्वतो विपत्त्यैवाभिभूयते इत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम ॥ २ ॥

ईदृशं दुःखोद्गारं समुद्गिरन् पद्मावतीसमीप जिगमिषू राजा विदूषकं—अथेति । कुत्र न खलु स्थीयते पद्मावत्या । कुत्र वा मया

मेरा शोक कुछ मन्द हो रहा था किन्तु प्राथमिक आघात से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव कर पद्मावती को भी उसी (वासवदत्ता की) तरह होने वाली जैसी सम्भावना कर रहा हूँ ॥ २ ॥

अच्छा पद्मावती किस स्थान पर हैं ।

विदूषक—समुद्र गृह नामक स्थान में उनकी सेज बिछाई गई हैं ।

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

विदूषकः—एदु एदु भवं। [एत्वेतु भवान्।]

(उभौ परिक्रामतः।)

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु भवं। [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।]

राजा—पूर्वं प्रविश।

विदूषकः—भो ! तहा। (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [भोः ! तथा। अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

गन्तव्यमिति। राज्ञः प्रश्नमुत्तरयति विदूषकः समुद्रगृहके इति। समुद्रगृहके = तस्याः शयनं परिकल्पितमित्यर्थः। राजा समुद्रगृहस्य मार्गनिर्देशनाय विदूषकमादिशति—तेन हीति। सखे ! त्वया तत्प्रदेशस्य मार्गो निर्देष्टव्य इत्यर्थः। मार्गं प्रदर्शयन्नाह विदूषकः—एत्विति। अत्र द्वित्वं त्वराभिप्रायेण। तन्मार्गानुसरणं कुर्वतो राजविदूषकयोस्तत्र गमनं सूच्यते, उभाविति। गन्तव्यस्थानं प्राप्य तत्र राजानं प्रवेशयितुमिच्छन् विदूषक आह—इदमिति—मित्रैतद्वर्त्तते समुद्रगृहम्। अस्यान्तः प्रविश्यतां भवता। 'अग्रे सेवकेन गन्तव्यं स्वामिना च पश्चादिति लौकिकं व्यवहारमपेक्ष्य विदूषकप्रवेशं प्रथममिच्छन् राजा प्राह—पूर्वमिति। विदूषकः प्रथमं प्रवेशोपक्रमं कृत्वा राजानं निषेधयति—अविहेति। तिष्ठत्विति सम्भ्रमे द्विर्भावः। अहह। कष्टं

राजा—तब उसका मार्ग दिखाइये।

विदूषक—आइये। आप आइये।

(दोनों घूमते हैं)

विदूषक—यह समुद्रगृह है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

विदूषक—जो। अच्छी बात है। (प्रवेश कर) ओः ठहर जाइये। ठहर जाइये।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दीपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

सखे स्थीयतामत्र भवता। एवं प्रवेशद्वारे-अवलम्बिनी पुष्पस्रजमवलोक्य तस्यां सर्पबुद्धया पश्यन् विदूषको राजानमग्रे गन्तुं निषेधितवान्। निरुद्धगती राजात्मनो निषेधकारणं पृच्छति विदूषकम्—किमर्थमिति—बिदूषको राज्ञः प्रवेशनिषेधे कारणमाह-एष इति। एषः जन्तुसामान्यः। दीपप्रभावसूचितरूपः दीपप्रभावेण = प्रदीपमहिम्ना सूचितं = व्यञ्जितं रूपम् = आकृतिविशेषो यस्य सः। वसुधातले = पृथिव्याम्। परिवर्त्तमानः विचेष्टमानः। मित्रात्र प्रवेशद्वारे कोऽपि जन्तुर्वर्त्तते यस्य रूपं दीपप्रभावे प्रकाशितं भवति। अयं हि लम्बमानः सन् भूतले चेष्टितं करोतीत्थं जन्तु-सामान्यं निर्दिश्य तद्विशेषतां प्रतिपादयति—अयमिति-अयम् = पूर्वोक्तः। काकोदरः = सर्पः। यः लम्बमानः सन् भूतले बिचेष्टते स सर्पोऽस्तीत्यर्थः। रुग्णायाः पद्मायत्याः दृशोरुपघातो मा भूदितिपूर्णः दीपप्रकाशो नोक्तः। दीपस्य मन्दप्रभावे च विदूषकेण सम्यङ् न निरूपयितुं शक्यतेऽतो स्रजि तस्य सर्पभ्रमः। विदूषकोक्तिमाकर्ण्य किञ्चित्प्रविश्य राजा विदूषकसर्पप्रतिभासविषयं तत् स्रजमवलोक्य विदूषकमूर्खतायां हसन् स्वान्ते विस्मयमाविष्करोति—अहो इति। वैधेयस्य = मूर्खस्यास्य विदूषकस्य सर्पव्यक्तिः = सर्पज्ञानम्। मूर्खो विदूषकः। दृश्यमानममुं वस्तुविशेषं सर्परूपतया गृह्णातीत्याश्चर्यम्। तदनन्तरम-ग्रिमेण पद्येन तस्य सन्देहं दूरीकरोति—ऋज्वायतामिति—

राजा—क्यों ?

विदूषक—इस दीपक के प्रकाश में जो रूप दिखाई पड़ रहा है—वह रेंगता हुआ सर्प है।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥ ३ ॥

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पद्मावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे ।

अन्वयः—हे मूर्ख ! त्वम् ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालां सर्पं इति अवगच्छसि ! या निशि मन्दानिलेन किञ्चित्परिवर्त्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि करोति ॥ ३ ॥

व्याख्या—हे मूर्ख = हे मूढ । त्वं = विदूषकः । ऋज्वायताम् = ऋज्वी चासौ आयता ताम् = सरलदीर्घाम् । क्षितौ = भुवि । भ्रष्टाम् = पतिताम् । मुखतोरणलोलमालाम् मुखं = प्रधानं यत्तोरणं = गृहस्य वहिर्द्वारम् तत्र या लोला = पवनकम्पनवशाच्चञ्चला माला अवलम्बमाना पुष्पस्रक् ताम् सर्पं इति अवगच्छसि = सर्पोऽयमिति मन्यसे । या = माला । निशि = रात्रौ मन्दानिलेन = मन्दं वहता समीरणेन किञ्चित्परिवर्त्तमाना परितः संस्पन्दमाना । भुजगस्य = सर्पस्य । विचेष्टितानि = व्यापारान् करोति = वितनोति ॥ ३ ॥

अयि सखे ! प्रधानभूते समुद्रगृहस्य बहिर्द्वारेऽवलम्बिनी सरला लम्बमाना च मालेयमिदानीं भूमौ पतिता या मन्दं वहता समीरणेन किञ्चिच्चाञ्चल्यं

(राजा प्रविष्ट होकर और देख कर मुस्कराहट के साथ)

ओह ! इस मूर्ख को सर्प की प्रतीति हो रही है । अरे मूर्ख ! तू इस सीधी और लम्बी माला को जो रात में मुख्य द्वार से पृथ्वी पर गिर कर वायु के झकोरे से हिलती हुई चेष्टा करती है सर्प समझ रहे हो ॥ ३ ॥

विदूषक—(देख कर) आप ठीक कहते हैं ।

[सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदरः। तत्र भवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम्।

विदूषक—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

नीयते त्वयैषा निशासमये सर्प इति सम्भाव्यते तस्मान्मूर्खोऽसि त्वम्। वस्तुतस्तु इयं बहिर्द्वारावलम्बिनी स्रगेव या पवनान्दोलनेन विचेष्टते इति भावः।

राज्ञोऽवधारणं सत्यं मन्यमानो विदूषको ब्रवीति—सुष्ट्वेति-खलु = निश्चये। राजन् ! भवदीय वचः सत्यम् मिथ्यैवास्ति मम भ्रमः। बहिर्द्वारे लम्बमानो वायुवशेन कम्पमानोऽयं पदार्थः न सर्प—इति निःसन्देहमवगतम्मयेत्यर्थः। तदनन्तरं तद्गृहान्तः प्रविश्य तत्र शयने पद्मावत्याः अनुपस्थितिं दृष्ट्वा आह—तत्र भवतीति-स्थानेऽस्मिन्नुपस्थाय पद्मावत्याः पुनरितः प्रस्थानं सम्भावये। यतो हि पद्मिनिकयात्रैव तस्याः शयनीयं सूचितं किन्त्वत्र तद्दर्शनं न जायते इत्यतः कल्प्यते मया यत्सागत्य निर्गतेति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। लक्षणैस्तस्या अनागमनं सम्भाव्य राजा विदूषकोक्तिं निराकुरुते—वयस्येति-मित्र ! मन्ये सेयमत्र नागता। केन लक्षणेन। इति विदूषकः पृच्छति-कथं भवानिति। राजोत्तरं ददाति। किमत्रेति-अत्र विषये किं मया वक्तव्यम् ? किं वा त्वया विज्ञेयम्। तस्या अनागमनलक्षणं किमपि कथनं नावश्यकम्। ननु प्रत्यक्षमेवैतत्। तथापि तव सन्तोषार्थं विशदीकरोमि। ज्ञायताम् = अवधार्यताम्।

यह सर्प नहीं है। (प्रविष्ट होकर और देख कर) मालूम होता है आर्या पद्मावती यहाँ आकर चली गई हैं।

राजा—मित्र ! वे (पद्मावती) नहीं आई होंगी।

विदूषक—यह आप कैसे समझ रहे हैं।

राजा—इसमें क्या जानना है। (देखो)

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥ ४ ॥

अन्वयः—हि शय्या अवनता न । तथा आस्तृतसमा व्याकुलप्रच्छदा न । अमलं शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः क्लिष्टं न । रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता । प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति ॥ ४ ॥

व्याख्या—हि=यतः । शय्या=तल्पम् । अवनता = देहभारेण निम्नीभूता न । तथा=तेनैव प्रकारेण । आस्तृतसमा आस्तृता=कुथाद्यास्तरणोपेता च सा समा= समानरूपा । मनागपि विषमतां निम्नोन्नतत्वं नाधिगता । अथ न च व्याकुल-प्रच्छदा व्याकुलः गात्रपरिवर्त्तनेन सङ्कुचितः प्रच्छदो आस्तरणं=वस्त्रम् यस्यां सा । अमलं = स्वच्छं । शिरोपधानम् शिरः उपधीयते आध्रियते यत्रेति शिरोपधानम्=उपवर्हः । अत्र शिरशब्दस्यादन्तत्वम् चिन्त्यम् । शीर्षाभिघातौषधैः= शिरोवेदनापनोदकैरनुलेपनैरौषधिविशेषैः क्लिष्टं = मलिनीकृतं न = नास्ति । श्रीमत्याः पद्मावत्याः अनागमनसाधनानि लक्षणानि प्रतिपाद्य शय्यान्तरगतं लक्षणान्तरमप्याह—रोगे इति । रोगे = आमये व्याधौ वा । दृष्टिविलोभनं = जनयितुं = विधातुं । काचिच्छोभा चित्रविलेखनादिसम्भवा कापि सुन्दरता । न कृता = नापादिता । एभिर्हेतुभिस्तत्र पद्मावत्या अनागमनं संसूच्य 'अत्रागत्य गता भवेदि'ति विदूषकोक्तिं निराकुरुते—प्राणीति—प्राणी = शरीरी

शय्या झुकी नहीं है । चादर पहले के समान ही है शरीर के पार्श्व परिवर्त्तन से कहीं सिकुड़ी नहीं है । शिरः स्थान पर लगाई गई तकिया लेपादि औषधि से मलीन नहीं हुई है । अभी तक रोगी के नेत्र के विश्रामार्थ कोई सजावट नहीं दिखाई पड़ती है । रोग पीड़ित मनुष्य जब बिछौने पर पड़ जाता है; तो अपने आप उसे शीघ्र नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवबिसिअ तत्तहोदिं षडिवालेदुं भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवती प्रतिपालयतु भवान्।]

राजा—बाढम्। (उपविश्य) वयस्य ! निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हो त्ति करेदु अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि। होम् इति करोत्वत्रभवान्।]

रुजा = रोगेण। शयनं प्राप्य = तल्पमधिगत्य, पुनः शीघ्रं भूयस्तदानीमेव। स्वयं स्वतो। न मुञ्चति ततो गन्तुं न वाञ्छतीत्यर्थः। अनुमानालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः॥ ४॥

अनुकूलतर्कयुक्तमिदं वचनमाकर्ण्य राज्ञः पद्मावतीप्रतीक्षाया तत्र क्षणकालिकोपवेशनं प्राप्तकालं संसूचयन् विदूषको ब्रवीति–तेन हीति। यद्येवं नून मत्र शयनीये क्षणकालमवस्थाय तदागमनं भवता प्रतीक्षितव्यम्। अचिरात्सागमिष्यति ततस्तस्याः प्रवृत्तिर्लप्स्यते इत्यर्थः। राजा विदूषकोक्तिं समर्थयन्नाह—बाढमिति–समयोचितमिदानीं सूचितं त्वयात्रोपविश्य तदागमनं प्रतीक्षे इति भावः। राज्ञस्तस्यां शय्यायामुपवेशनमाह–उपविश्येति। शयनीयमुपविष्टो निद्रोपगमस्य लक्षणं पश्यन् राजा विदूषकं प्रत्याह–वयस्येति। मित्र ! निद्रा मां बाधते तन्निवारणार्थं कथय काञ्चित्कथामिति विदूषकं प्रेरितवान्। राज्ञः कथनानुसारं विदूषकः कथां कथयितुं प्रवृत्तः अहमिति। हमित्यनुकरणम्। अयं शब्दः लोकैः श्रवणसावधनतासूचनार्थं

विदूषक—तो आप इस शय्या पर बैठ कर कुछ समय तक पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छी बात है (बैठ कर) मित्र ! मुझे निद्रा आ रही है, कोई कहानी कहो।

विदूषक—मैं कहानी कह रहा हूँ आप बीच-बीच में हुँकारी भरते जाइये।

राजा—बाढम् ।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम । तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्लाणाणि वत्तन्ति किल । [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम । तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल ।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा, कहा, अण्णं कहइस्सं । [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि ।]

व्यवह्रियते । विदूषकः कथयति भवदीयं मनोविनोदयितुं मयां कथ्यते कथा । 'अहं सावधानतया शृणोमि कथ्यतां विषयोऽग्रिमः' इत्येतत्सूचनार्थं हूंमिति शब्दस्योच्चारण मध्ये मध्ये भवता क्रियतां, येन पुनरग्रिमकथावर्णने ममोत्साहो वर्धेत इति भावः । विदूषकोक्तिमङ्गीकृत्य राजा आह—बाढमिति—स्वीक्रियते ते वचः । एवं करिष्यामीत्यर्थः । तत काश्चित्कथा प्रस्तौति विदूषकः-अस्तीति । उदकस्थानानि = जलावगाहनस्थानि । काचिदुज्जयिनी नाम नगरी, तस्यामनेके जलाशया अत्यन्तसुन्दराः सन्तीति श्रूयते । उज्जयिन्यां किमपि कमनीयं वर्णनमकृत्वा जलाशयाना प्रदर्शनमिदं विदूषकस्य प्राज्ञतातिशयं द्योतयति । विदूषकेण प्रस्तुतमुज्जयिनीनामधेयं श्रुत्वा तत्र किमप्यतीतं प्रियाविषयकं वृत्तं मनसि कृत्वा तत्सम्बद्धा कथेयं प्रस्तुतेत्याशय सूचयन् अस्फुटमाह राजा—कथमिति । कदाचिदुज्जयिनीविषयिणी कथा नास्मै रोचेत इत्याशयमवबुध्य विदूषकः प्राह—यदीति—मदुक्तोज्जयिनीविषयिणी कथा यदि भवते न रोचते—तर्हि ततोऽन्या काचित्कथा प्रस्तोष्यते मयेति

राजा—ठीक हैं ।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है वहाँ बहुत ही मनोहर स्नान के योग्य जलाशय है ।

राजा—क्या कहा उज्जयिनी नाम की नगरी ?

विदूषक—यह कहानी पसन्द न हो तो दूसरी कहूँगा ।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा । किन्तु ।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥ ५ ॥

विदूषकाभिप्रायः तत्कथाविषये आत्मनोऽप्रियत्व निषेधन् राजा स्वाभिप्रायं व्यनक्ति–वयस्येति मित्र ! त्वया प्रस्तुतेयं कथा मम तावदप्रियेति न मन्तव्यम् 'नूनं प्रियैवेत्यर्थः । न खलु नाभिप्रेता इति निषेधद्वय विधिमेव गमयति ।

अन्वयः—प्रस्थानकाले स्वजन स्मरन्त्या स्नेहात् प्रवृत्तं नयनान्त लग्नम् बाष्पं मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपते. सुतायाः स्मरामि ॥ ५ ॥

व्याख्या—प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये । उज्जयिनीतो वत्सराज प्रतीति शेष. । स्वजनम् आत्मीयजनम् । मातृपित्रादिकमिति भावः । स्मरन्त्याः = ध्यायन्त्या. अतएव स्नेहात् = प्रणयात् प्रवृत्तं = जनितम् । नयनान्तलग्नम् = नेत्रान्तःसम्बद्धम् बाष्पम् = अश्रु । मम एव = उदयनस्य एव । उरसि = वक्षःस्थले । पातयन्त्याः मुञ्चन्त्याः अवन्त्याधिपते = प्रद्योतस्य । अस्मिन् पदे समासे अवन्त्यधिपते· व्यासे च अवन्त्या अधिपतेरिति भाव्यम् । किन्तु

राजा—मित्र ! यह कथा मुझे अच्छी नहीं लगती ऐसी बात नहीं ।

परन्तु उज्जयिनी से मेरे साथ प्रस्थान करने के कारण उस समय अपने स्वजन (माता पिता) आदि का स्मरण करने वाली दोनों नेत्रों के छोरों से स्नेहपूर्वक आँसूओं को मेरे छाती पर गिराने वाली उज्जयिनी के स्वामी की पुत्री वासवदत्ता का मैं स्मरण करने लग जाता हूँ ॥ ५ ॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

वृत्तानुरोधेन इदं द्वयमनुसर्त्तुमपारयता कविना 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं कदापि नेति' तथा प्रतिकूलमाचरितम् । अस्य श्लोकस्य प्रथमे चरणे उपेन्द्रवज्रा द्वितीयादिचरणत्रये इन्द्रवज्रेत्युभयोर्योगादुपजातिनामकं वृत्तम् ज्ञेयम् । तल्लक्षणं तु । स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । किञ्च उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौः' । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्तदा इति ।

अन्यदपि वासवदत्तागतमतीतं वक्तुं प्रतिजानीते—अपि चेति-

अन्वयः—उपदेशेषु अपि बहुशो माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—उपदेशेषु = मत्कर्तृकवीणावादनशिक्षणेषु । अपि । बहुशः बारम्बारम् । माम् ईक्षमाणया = शिक्षकं मां पश्यन्त्या यया स्रस्तकोणेन = भ्रष्टवीणावादनसाधनेन । हस्तेन = करेण । आकाशवादितं = व्योमवादनम् लयतालशून्यम् वादनम् । कृतम् = विहितम् । अस्य श्लोकस्येदं तात्पर्यम् यद् वासवदत्तायाः वीणाप्रशिक्षणकाले मया बहव उपदेशा दीयन्ते स्म सा तु तानुपदेशान् सावधानतया शृण्वती स्नेहान्ममुखार्पितदृष्टिरासीत्तत्र क्षणे च तदानीं स्वीयहस्ताच्च्युतः कोणो न विदितस्तयातो कोणाभावेऽपि प्रेममुग्धतया वीणारागस्वरव्यक्तिरहितं सा कथञ्चिद् वादितवती इदं सर्वमुज्जयिनीनामधेयश्रवणादेकसम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकं भवतीति मन्मनोरङ्गमञ्चेऽधुनापि नृत्यतीति तात्पर्यम् अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ६ ॥

बीन बजाने के समय शिक्षा देते हुये मुझे बारम्बार देखने में तल्लीन होने के कारण उस वासवदत्ता के हाथ से कोण (बीन बजाने का मेजराव) गिर जाया करता था और वह केवल हाथों के सहारे स्वर लयताल रहित बीन बजाने लगती थी ।

विदूषकः—मोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं ब्रह्मदत्तं णाम। तहिं किल राआ कम्पिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

विदूषकः—किं राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ?]

अनेनोज्जयिनीवर्णनेन राज्ञो विमनायमानं मानसमाकलयन् विदूषको विषयान्तरवर्णनं प्रस्तौति—भवत्विति। राजन्नास्ता तावदुज्जयिनी विषयिणीयं कथा सा च भवन्तमनुभूतमतीतं स्मारयन्ती नूनं विमनीकरोतीति अधुनान्या कथा वर्णयिष्यते मयेति विदूषकोक्तेरभिप्रायः। तदनन्तरमेवान्यकथास्वरूपमवतारयति—अस्तीति। ब्रह्मदत्तनामके नगरे काम्पिल्यनामको राजा प्रसिद्धोऽस्तीत्यर्थः। नामधेयव्यत्यासास्पदमिदं वचनं विदूषकस्य मूर्खतानिदानभूतमाकर्ण्यानवधानवशादेतदित्थं निर्गतं भवेद् भ्रमाद्वेति वस्तुतत्त्वपरीक्षाचिकीर्षया 'किमुक्तं त्वयेति पृच्छति राजा—किमिति—उक्तमिति शेषः। अत्र द्विरुक्तिः तदर्थश्रवणे राज्ञः औत्सुक्यप्रदर्शनार्थम्। विदूषकेण हास्यं जनयितुं मौर्ख्यात्तथैव पूर्वोक्तं पठ्यते पुनस्तदेवेति। राजा तच्छ्रुत्वा वस्तुतत्त्वं दर्शयन्नाह—मूर्खेति। काम्पिल्यनगरे राजासीद् ब्रह्मदत्त इत्येवं वदेति राज्ञोऽभिप्रायः। अज्ञो विदूषको राज्ञः वचनं निशम्य 'भवदुक्तमेव सत्यमिति स्वीकुर्वन् पृच्छति

विदूषक—अच्छा दूसरी कथा कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर है वहाँ काम्पिल्य नाम का एक राजा है।

राजा—क्या कहा ! क्या कहा !

विदूषक—पुनः वही बात कहता है।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ऐसा कहो।

विदूषक—क्या कहे। राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य।

राजा— एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओठ्ठगअं करिस्सं । राजा ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणि सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं बेला । अत्तणो पावारअं गह्णिअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

किमिति । राजा विदूषकं प्राह—इत्थमेवैतद्वर्तते त्वं तु विपरीतमुक्तवानसीत्याह—एवमेतदिति । राज्ञो वचनमनुनिशम्य विदूषक आह – तेन हीति । तेन = कारणेन । ओष्ठगतम् = कण्ठगतमभ्यस्यमिति यावत् । यद्येवं तर्हि क्षणकालपर्यन्तं भवता प्रतीक्षितव्यम् । यावन्मया कण्ठस्थीक्रियते इति भावः । तदेव पठयमान आह—राजा ब्रह्मदत्त इत्यादि पौनःपुन्येन पठति । अभ्यस्तं कृत्वा कथयति—इदानीमिति । ननु मित्र! कण्ठस्थीकृत भवदुक्तमितः परं न कदापि विस्मरिष्यामि—सम्प्रति श्रूयता भवता । इत्थं निगद्य यावद्राजानं श्रावयति तावत्तं निद्रालुमवलोक्य किञ्चिच्चिकीर्षुरभिधत्ते—अयीति—अयीति प्रश्नार्थकमव्ययपदम् । श्रीमान् राजा सुप्तः किम् । एवं चेज्जागारित्वा एकाकिना मया किं कर्त्तव्यमतः शैत्यबाधानिवारणार्थं प्रावरणं गृहीत्वागमिष्यामीति । अस्मिन् खलु शीतकाले शीतता मामाकुली करोति—अतः स्वकीयप्रावरकवस्त्रं गृहीत्वा मयागन्तव्यमित्यर्थः । ततः प्रस्थानं सूचयति—निष्क्रान्त इति । पूर्वं पद्मिनिका नाम चेटी पद्मावत्याः शिरोवेदनां

राजा—हाँ वह ऐसा ही है ।

विदूषक—तो आप कुछ समय तक प्रतीक्षा करें । तब तक मै अभ्यास करता हूँ (राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य इस प्रकार से बारम्बार अभ्यस्त कर) अच्छा अब आप सुनिये । अरे ! यह तो सो गये । इस

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी)

चेटी— एदु एदु अय्या। दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [एत्वेत्वार्या। दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता।]

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए। [हा धिक्! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः?]

चेटी --समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।]।

निवेदयितु मधुरिकानाम्नी स्वीयां वयस्यां वासवदत्ता समीपं प्राहिणोत्। साम्प्रतं मधुरिकावासवदत्तयोर्द्वयोरप्येकत्र सम्मेलनं दर्शयति कविः-ततः प्रविशतीत्यादि। अवन्तिकामागच्छन्तीमवलोक्य प्रकृतमाह चेटी—एतु एत्विति–अत्र वीप्सागमने त्वरा द्योतनार्थम्। दृढम् = भृशम्। श्रीमत्या सत्वरमागम्यतां। राजकुमारी पद्मावती शिरोव्यथा व्याकुलीकरोत्यधनेति। चेट्युक्तं वृत्तमिदमाकर्ण्य दुःखमनुभवन्ती वासवदत्ता पद्मावतीशयनस्थानं पृच्छति–हा धिगिति। इदं श्रुत्वा कष्टाय कल्पते मे हृदयम्–तद्ब्रूहि तस्या शयनं कुत्र कल्पितमिति। चेटी उत्तरयति समुद्रगृहके इति—अवन्तिकाब्रवीति–

समय बहुत ठण्ढ पड़ रही है तो अपना ओढ़न लेकर आता हूँ। (ऐसा कह कर निकल जाता है।

(तदनन्तर अवन्तिका का वेष धारण किये हुये वासवदत्ता और दासी का प्रवेश)

दासी—आर्या आइये आइये। राजकुमारी शिरोवेदना से बहुत आकुल हैं।

वासवदत्ता—तब तो बड़े दुःख की बात है। अच्छा राजकुमारी की शय्या कहाँ लगाई गई है।

दासी—समुद्रगृह नामक स्थान में उनकी शय्या बिछाई गई है।

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि । [तेन ह्यग्रतो याहि ।]

(उभे परिक्रामतः ।)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । (निष्क्रान्ता) [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाणभुदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सथा जादा।

तेनेति समुद्रगृहस्य पन्थानं दर्शयितुमग्रे त्वयागन्तव्यमहं त्वामनुगच्छामीति भावः । उभे । परिक्रामत इत्यनेन वासवदत्ताचेटयोः समुद्रगृह प्रति प्रस्थानं सूचयति । गन्तव्यदेशान्तिकं गत्वा चेटी ब्रवीति—इदमिति । एतद्वर्त्तते समुद्रगृहम् प्रविश्यतां श्रीमत्या । मया च भर्तृदारिकायाः शिरोवेदनानिग्रहार्थमनुलेपनमौषधं सम्पादयितुं गम्यते इति भावः । अथ कविस्तस्या प्रस्थानमाह—निष्क्रान्तेति ।

अन्तः प्रविश्य वासवदत्ता तत्र पद्मावत्याः शय्यायामेव शयित प्रियतमं पद्मावतीबुद्धया पश्यती तदीयस्वास्थ्यं विचिन्त्य दूयमाना ब्रूते—अहो इति । अहो विषादसूचकमव्ययपदम् । खल्विति निश्चये । ईश्वराः = देवाः । मे = मम विषये इति शेषः । अकरुणाः = निर्दया विरहपर्युत्सुकस्य = मद्वियोगो-

वासवदत्ता—तो आगे चलो ।

(दोनों चलती हैं)

दासी—यह समुद्रगृह है । आर्या इसी में प्रवेश करें । तब तक मैं भी शिर में लगाने वाले लेप के लिये शीघ्रता करती हूँ । (चली जाती है)

वासवदत्ता—अहो ! मुझ पर देवता लोग भी निर्दय हो गये हैं । मेरे विरह से उत्कण्ठित आर्यपुत्र के विश्रामस्थान भूत यह पद्मावती भी अस्वस्थ

जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि। इअं पदुमावदी ओसुत्ता जाव उवविसामि ! अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि। ता इमस्सि सय्याए उववसामि। (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा। णिव्वुत्तरोआए होदव्वं ! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूए दि मे आलिङ्गेहि त्ति। जाव सइस्स। (शयनं

त्कण्ठितस्य। विश्रामस्थानभूता = विनोदपात्रभूता। अस्वस्था = रुग्णा। परिजनस्य = सेवकजनस्य। प्रमादः = कर्त्तव्यविस्मृतिः। दीपसहायाम् = प्रदीपसहचराम्। अवसुप्ता = निद्राणा। अन्यासनपरिग्रहेण = आसनान्तरस्वीकारेण। प्रतिभाति = प्रतीतो भवति। उपविशन्त्या = उपवेशनं कुर्वत्या। प्रह्लादितम् इव = आनन्दितमिव। दिष्टया = भाग्येन। अविच्छिन्नमुखनिःश्वासा अविच्छिन्नः मुखनिःश्वासो यस्याः सा = निरन्तरगृहीतवदननिःश्वासा। निवृत्तरोगया = स्वस्थया। एकदेश संविभागतया = एकभागविभागत्वेन। आलिङ्गय = आश्लिष्य। शयिष्ये शयनं करिष्यामि। नाटयति = अभिनयति। वासवदत्तोस्य गद्यस्य तात्पर्यम्—हा हन्त ! सर्वथा दैवैर्निदयत्वमवलम्बितं मयि ! या पद्मावती मद्वियोगवशाद्गाढमुत्कण्ठाभावं बिभ्रतः प्रियस्य सन्तापजातं प्रशमय्य तस्य मनो विनोदयति स्म सापि साम्प्रतं शिरोवेदनया दुःखिता सुतरामस्वास्थ्यं भजते। कश्चिदित्येवं वदन्त्या वासवदत्तायास्तद्गृहान्तः प्रवेशं परितो वीक्षणं चाभिधाय चिन्तापुरःसरं तद्

हो गई ! तो इस समुद्रगृह में प्रवेश करती हूँ। (पुनः प्रवेश कर और देख कर) अहो इन परिचारक वर्गों की कितनी असावधानी है जो बीमार इस पद्मावती को दीपक के सहारे छोड़ दिया है। यह पद्मावती सो रही है। तब तक बैठती हूँ अथवा दूसरे आसन पर बैठने से स्नेहाल्पता व्यक्त होती है इस कारण इसी को शय्या पर बैठती हूँ। (बैठ कर) क्या कारण है कि इसके साथ बैठने से मेरा हृदय आज आह्लादित हो रहा है। भाग्य से

नाटयति) [अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि। अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यज्यति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्टयाऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासाः । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसविभागतया । शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।]

वचनोद्गारमाह—[प्रविश्यावलोक्य] अहो इति—अहो भृशं विस्मयकरी असावधानता परिचारकवर्गस्य योऽधुना वेदनावशादस्वस्थतामनुभवन्तीं पद्मावतीं दीपं प्रज्वाल्यैकाकिनीं परित्यक्तवान् । अत्रोपचारार्थं कोऽपि न तिष्ठति । शेते किलैषा पद्मावती । रोगिणो दूरेऽवस्थानं तन्मनसि जुगुप्साभावं जनयेदिति अस्या एव शयने मया उपवेष्टव्यमिति । अथेदानीं पद्मावतीशयनमुपविष्टायास्तस्या मनोगतान्वितर्कान् कविराह—किं न्विति । न जानामि कारणेन केन पद्मावत्या सहोपवेशनान्मम मनः प्रसीदति । यद्यपि रोगिणां निःश्वासपवनाः मन्दं मन्दं चरन्ति किन्त्वस्यास्तु अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा वर्तन्ते तेन सम्भावयामीयं स्वस्था लब्धारोग्या भवेदिति । अहमेवेति—पूर्वोक्तं विचार्य वासवदत्ता स्वस्नेहानुरूपं सहशयनं तत्कालोचितं कर्त्तव्यं मन्यमाना पक्षान्तरमुपक्षिपति इयं पद्मावती शय्याया एकदेशे शयाना वर्तते । अतः स्वानधिष्ठितं प्रदेशं प्रियजनशयनोचितं ध्यायन्ती सविधे इह शयित्वाहमाश्लेषणीया । इति व्यक्तमाकूतमात्मनो निवेदयति। अतः कारणात्स्नेहप्रदर्शनार्थं मयैतया सह शयिष्यते । इति शयनीयं नाटयति एवं कविना तत्र शयनीये वासवदत्ताया अवस्थानं प्रदर्शितमिति भावः ।

इसका निःश्वास अबाधित सुख से अविच्छिन्न चल रहा है । अतः इन्हें अब रोगमुक्त हो जाना चाहिये । अथवा शय्या के एक देश में सोने से मानों यह मुझ से कह रही है कि मुझे आलिङ्गन करो । तो शय्या के शेष स्थान में सो जाऊँ । (सोने का अभिनय करती है)

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हुं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठिह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो। [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः।]

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो। ण एत्थ कोच्चि

दृढसङ्कल्पबलात् सुलभस्मरणां स्वप्रियतमां वासवदत्तां स्वप्ने सुप्तो राजा विचिन्तयन् ब्रूते—राजा—हा ! वासवदत्तेति। स्वकीयनामग्रहणं प्रियतमेन गृहीतं श्रुत्वा वासवदत्ताऽकस्मात्ससम्भ्रममुत्थिता सविस्मयं शङ्कावितर्कं वचनमाह—हुमिति—सहसा = अतर्कितः। निष्फलः = फलशून्यः। यद्यहमिदानीं प्रबुद्धस्यार्यपुत्रस्य दृग्गोचरता गता तदा शङ्के श्रीमतो यौगन्धरायणस्य मत्स्वरूपप्रच्छादनमूला स्वामिराज्यप्रत्याहरणरूपा कृतपूर्वा महती प्रतिज्ञा मत्स्वरूप प्रदर्शनादद्य नैष्फल्यं गतेति भावः। पुनः राजा स्वप्ने नामान्तरेण सम्बोधयति हेति—अवन्तिराजपुत्रि = प्रद्योतनृपतेः पुत्रि ! क्वासि त्वं देहि मे दर्शनमहं त्वां विना विषीदामीति वाक्यशेषः। स्वप्नावस्थावस्थितं स्वप्रियतमं विलोक्य वासवदत्ता ब्रवीति—दिष्टयेति। सौभाग्य-

---

राजा—(स्वप्न देखते हैं) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(चौंक कर) हैं ! आर्यपुत्र ! पद्मावती नहीं। तो क्या मैं देख ली गई। आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा भार मेरे दिखाई पड़ जाने से व्यर्थ हो गया क्या ?

राजा—हा अवन्तिराजकुमारी !

वासवदत्ता—मेरे भाग्य से आर्यपुत्र यह स्वप्न देख रहे हैं। यहाँ कोई

जणो। जाव मुहूतअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि। [दिष्टया स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः। नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मूहूर्तकं स्थित्वा दृष्टि हृदयं च तोषयामि।]

राजा—हा! प्रिये! हा! प्रियशिष्ये! देहि मे प्रतिवचनम्।

वासवदत्ता—आलवामि भत्त! आलवामि। [आलपामि भर्तः! आलपामि।]

राजा—किं कुपितासि?

वासवदत्ता—ण हि, ण हि, दुक्खिदाह्मि। [नहि नहि, दुखितास्मि।]

मेतन्मे यदयं प्रियतमः स्वप्नविचेष्टितान्यावनुते। अत्र स्थले आर्यपुत्रं विहाय नास्त्यन्यो जन. यो हि—मां पश्येदिति। तस्मादहं क्षणकालमिहावस्थाय स्वनेत्रहृदययोस्तृप्तिं सम्पादये इति भावः। राजा पुन: प्रलपति—हा प्रियेति। प्रियशिष्ये = प्रीतिपात्रच्छात्रे। प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्। 'क्वासि' सप्रेम त्वामाह्वयन्तं मां 'इयमत्रास्मी'ति प्रत्युत्तरेण कथं न सम्भावयसी'ति प्रत्युत्तरेण कथं न सम्भावयसीति भावः। प्रणयानुरोधात्तदुचितं वाचं रोद्धुमपारयन्ती वासवदत्ता ब्रवीति—आलपामीति। प्राणप्रिय! इदमिदानीं प्रत्युत्तर ददामीति भाव:। राजा पुनरपि विलपति—किमिति। राज्ञो वचनमनुनिशम्य वासवदत्तोत्तरयति—नहीति। नैवास्मि कुपिता। न चास्ति मे कोपस्यावकाश: स्वप्रियतमे। किन्तु हतभाग्याहं दुःखमयीं दशा-

मनुष्य तो नहीं है जो मुझे इस अवस्था में देख ले। तो कुछ समय तक बैठ कर अपने नेत्र और हृदय को सन्तुष्ट करती हूँ।

राजा—हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये! मुझे उत्तर दो।

वासवदत्ता—भद्र! मैं बोलती हू। बोलती हूँ।

राजा—क्या तुम क्रुद्ध हो।

वासवदत्ता—नहीं क्रुद्ध तो नहीं पर दु.खी अवश्य हूँ।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किं ? [इतः परं किम् ?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि बिरचिआ ? [आ आपेहि इहापि विरचिका ?]

मनुभवामीति भावः। पुनः स्वप्ने तां कुपितां निश्चित्य राजा स्वचित्तेऽभिधत्ते—यद्यकुपितेति—यदीति सम्भावनायाम्। अथ सम्भाव्यते—त्वं कुपिता नासीति तर्हि कथं न धत्से—अलङ्कारान् स्वशरीरे। राज्ञः स्वप्ने तादृशविरहावस्थोचितालङ्काररहिता वियोगिन्येव प्रादुरासीदिति तथैवोच्यते। वासवदत्ता ब्रवीति—इतः परं किमिति—विरहयोगादहं दुःखितास्मीत्यलङ्कारधारणं न मे रोचते नान्यत् किमपि तत्परित्यागे कारणं यतो हि दुःखितानामलङ्कारा भारभूता भवन्तीत्याशयः। सापत्न्यभावं कोपे कारणं सम्भावयन् राजा ब्रवीति—किमिति सपत्न्या विरचिकायाः स्मरणमिदानीं ते सञ्जातं किम्। येन रुष्टासि त्वमिति भावः। विरचिका नाम्नी च स्त्री काचिदासीदुदयनस्य राज्ञः प्रिया (तत्सम्बद्धा कथा सरित्सागरे द्रष्टव्या) सपत्नीनामस्मरणात्कोपकलुषिता सती सरोषं वचनं ब्रवीति वासवदत्ता—आ इति। इत्यव्ययपदं कोपे स्मरणे च। इहापि पद्मावतीगृहेऽपि विरचिका नाम्नी सपत्नी स्मर्यते स्मार्यते चेति शेषः। अपेहि=दूरमपसर। सपत्नीनामगृह्णन् त्वं दूरमपेहि—न रोचते ते वचनं मह्यमिति भावः। विरचिका—

राजा—यदि क्रुद्ध नहीं तो अलङ्कार क्यों नहीं पहनी हों।

वासवदत्ता—विरह दुःख के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है।

राजा—क्या विरचिका का स्मरण कर दुःखी हो।

वासवदत्ता—(क्रोध के साथ) ओह हटिये। यहाँ भी विरचिका ?

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। [हस्तौ प्रसारयति।]

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि। को वि म पेक्खे। ता गमिस्सं। अहव सय्यासपलाम्बअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं। (तथा

सम्बन्धस्मरणमूलकं वासवदत्ताकृतं कोपं सम्भावयन् राजा प्रसादयितुमुद्यतः सन् ब्रवीति—तेन हीति। विरचिकार्थं = विरचिकानामग्रहणजन्यापराधक्षमापनार्थम्—यदि नाम विरचिकास्मृतिस्त्वां कोपयति तर्हि त्वं प्रसन्ना भव। अहं त्वामनुनयामि। एषममापराधः क्षन्तव्यस्त्वयेत्युक्त्वा प्रसादनोपायमभिनयति (हस्तौ प्रसारयति) अञ्जलिबद्धं हस्तयो. प्रसारणं प्रसादनोपायभूत लोकाचारानुमतमिति। एतावदवधि विरहिणो राज्ञः स्वप्नावस्थोचितालापा उपवर्णिताः। स्वप्ने वासवदत्तादर्शनरूपं तमेनं विषमधिकृत्य कृतं स्वप्नवासवदत्तमिति नामकरणं चास्य नाटकस्यानुगतार्थतां यातीति रहस्यं पाठकैराकलनीयम्। इदानीं हस्तप्रसारणाद्राज्ञो निद्राभङ्गं तत्रान्यजनोपगमनं चाभिशङ्क्य स्वस्वरूपगोपनार्थं ततः प्रस्थातुकामाया वासवदत्तायाः वचनमाह कविः—चिरमिति। चिरं स्थितास्मि। अत्र स्थिताया मे भूयान्समयोऽतीतः दैवादेतावत्कालपर्यन्तं न केनापि दृष्टाहम्। अतो यावन्न कोऽपि मां पश्येत्तावदितः प्रस्थातव्यं मया। पुनः किञ्चिद्विचार्य स्नेहोचितं कर्त्तव्यान्तरं पक्षान्तरेणोपस्थापयति—अथवेति—शय्यालम्बितम् शय्यायाः प्रलम्बितम् = शयनाधस्तले लम्बमानम्। आर्यपुत्रस्य = स्वप्रियस्य। लम्बमानम् हस्तं = करम् पुनः शयनस्थलेऽवस्थाप्य गन्तव्यमिति भावः। तथा कृत्वा निष्क्रान्ता = लम्बमानस्य प्रियकरस्य शयनेऽवस्थापनं ततः प्रदेशान्निर्गमनं च वासवदत्ताया इति सूच्यते। प्रेयसीकरसंपर्शात्तदा-

राजा—इसलिये विरचिका के लिये तुम्हें मानता हूँ।

(दोनों हाथ फैलाते हैं)

वासवदत्ता—मैं बहुत समय तक यहाँ ठहरी कोई मुझे देख न ले

कृत्वा निष्क्रान्ता ।) [चिरं स्थितास्मि। कोऽपि मां पश्येत् । यद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।]

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ ! हा ! धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडित ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथ ॥ ७ ॥

नीमकस्मात्प्रबुद्धो राजा समीपतो गच्छन्तीमिव वासवदत्तां पश्यन् सहसा शयनादुत्थाय जिघृक्षुर्जिज्ञासमानश्चाह–वासवदत्तेति । अत्र तिष्ठ तिष्ठेति द्विरुक्ती वासवदत्ताग्रहणविषयिणी त्वरामाविष्करणार्थम् । वासवदत्ते स्थीयताम् किञ्चित्त्वया स्थीयताम् कुत्र गम्यते इत्येवं वदंस्तद्ग्रहणार्थं पृच्छन् द्वारपार्श्वाभिहत: सन्नग्रे गन्तुमशक्नुवन् तत्प्राप्तौ निराशो भूत्वा शोचति–तदेव वर्णयति कविः हा धिग् = कष्ट गतैवं सा ।

अन्वयः—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् आह द्वारपक्षेण ताडितः। ततअय मनोरथो भूतार्थः (वा) इति व्यक्तं न जानामि ॥ ७ ॥

व्याख्या—सम्भ्रमेण = त्वरया । निष्क्रामन् = निःसरन् । समुद्रगृहप्रकोष्ठादिति शेष । अहम् द्वारपक्षेण = द्वारपार्श्वभागेन । ताडितः = आहतः । अस्मीति शेषः । ततः = तस्मात् कारणात् । अयं मनोरथः = अभिलाषः ।

इसलिये जाती हूँ । अथवा शय्या से नीचे लटके आर्यपुत्र के हाथ को शय्या पर स्थापित कर तब जाऊँगी ।

राजा—(एकाएक उठ कर) वासवदत्ते ठहरो ठहरो । हाय धिक्कार है ।

मैं सहसा वासवदत्ता का स्वरूप जानने के लिये जल्दी से निकलता हुआ द्वार के दिवाल मे टकरा गया । इससे उसके स्वरूप को स्पष्ट रूप से नही जानता कि वह यही है या नही ? अतः मेरा वासवदत्ता के परिचय में जानने का मनोरथ व्यर्थ हो गया ॥ ७ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, ध्ररते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु

भूतार्थः = सत्यम् इति व्यक्तं स्पष्टम् न जानामि = न वेद्मि । गतेरुपरोधाद्वासवदत्तादर्शनमिदं वास्तवम् सङ्कल्पमयं वेति किमप्यहं निर्धारयितुं न प्रभवामीत्यर्थः ॥ ७ ॥

राजनि शयाने सति स्वशैत्यापनोदार्थं प्रावरकवस्त्रमानेतुं गतस्य विदूषकस्य प्रवेशो सूचयति कविः—प्रविश्येति । तत्रोपगतो राजानं जाग्रतं विलोक्य सप्रसादं विदूषको ब्रूते—अयीति—अयं मे महान् प्रमोदस्य विषयो यन्महामान्यो महीपतिः प्रबुद्धवानिति भावः । वासवदत्ताविषयकं प्रियं वृत्तं स्वसुहृदं विदूषकं निवेदयितुकामो राजा तदुचितं वचः प्रस्तौति—वयस्येति—वयस्य = मित्र । प्रियं = प्रीतिकरम् । वृत्तमिति शेषः । आवेदये = कथयामि । ध्ररते प्राणानिति शेषः । मित्र प्रसन्नतापूर्वकं वृत्तमिदं सूचयामि त्वाम्—जीवति वासवदत्तेति निश्चयमवगच्छेति भावः । राज्ञो वचनमनुनिशम्य विदूषकस्तन्निषेधन्नाह—अविहेति । अविहा = विषादद्योतकमव्ययपदम् । उपरता = मृता । परलोकं प्रस्थितायास्वतस्या भूयान् समयोऽतिक्रान्तः दुर्लभं तद्दर्शनम् तत्प्राप्तिरद्यासम्भवेत्यर्थकेन वचनेन विदूषकः राजोक्तं निवारयामास

विदूषक—(प्रवेश कर) अरे ! आप जाग गये ।

राजा—प्रिय मित्र ! मैं तुम्हें प्रसन्नता की बात बताता हूँ कि वासवदत्ता जी रही है ।

विदूषक—हाय वासवदत्ता ! वासवदत्ता अब कहाँ है ? बहुत दिन हुये वासवदत्ता तो मर गई !

उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदअण्हाण-सङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे । [अविहा !

इति भावः । विदूषकोक्तिं खण्डयन् राजा ब्रवीसि—वयस्येति मा मा = नैव नैव । वासवदत्ता नास्तीदानीं दुर्लभं च तद्दर्शनमिति भवता न वक्तव्य-मित्यर्थः ।

अन्वय—हे सखे ! (वासवदत्ता) शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोध-यित्वा गता । (सा) 'दग्धा' इति ब्रुवता रुमण्वता पूर्वं वञ्चितः अस्मि ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे सखे = हे मित्र ! शय्यायां = शयनीये अवसुप्तं = निद्राणं, मां बोधयित्वा जागरयित्वा गता = याता । वासवदत्तेति शेषः । दग्धा = भस्मीकृता । इति इत्थं ब्रुवता = वदता । रुमण्वता = तदाख्यमन्त्रिणा, पूर्वं = प्रथमं वञ्चितः प्रतारितः अस्मि = अभवम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

वासवदत्ताविषयकं राज्ञः शोकानुभावं वीक्ष्य विदूषको ब्रूते—अविहेति । अविहा = शोकसूचकमव्ययपदम् । एतत् = वासवदत्तादर्शनम् । असम्भाव्यं

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं कदापि नहीं । वासवदत्ता शय्या पर सोये हुये मुझे जगा कर चली गई । 'वासवदत्ता जल गई' ऐसा कहने वाले रुमण्वान् नाम के अपने ही महामन्त्री द्वारा ठगा गया हूँ ॥ ८ ॥

विदूषक—हाय ! यह अनहोनी बात तो नहीं जल स्नान की चर्चा

असम्भावनीयमेतन्न । आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्यात्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! वअस्स ! एदस्सि णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम

न किन्तु सम्भाव्यमेव । उदकस्नानसंकीर्तनेन = जलकीर्त्तनख्यापनेन । तत्र भवतीम् = माननीयां । वासवदत्ता स्वप्ने दृष्टा भवेत् । विदूषकोक्तौ सवितर्कमाह राजा–एवम् । किमहं स्वप्नं दृष्टवान् । स्वप्नबलेन च मे तद्दर्शनम् । काकूक्तिरियम् राज्ञः । पुनस्तत्र वितर्कयति राजा—यदीति ॥ ८ ॥

अन्वयः—तावदयं स्वप्नः यदि ? अप्रतिबोधनं धन्यम् । अथवा अयं विभ्रम स्यात् । चिरं मे विभ्रम. अस्तु हि ॥ ९ ॥

व्याख्या—तावद् = वाक्यालङ्कारे । अयं = वासवदत्तादर्शनव्यापारः । स्वप्नो यदि = स्वापो भवेच्चेत् । तर्हि अप्रतिबोधनम् = जागरणाभावः स्वप्नो वा । धन्यम् = सफलम् । अथवा = पक्षान्तरे अयम् = वासवदत्तादर्शनव्यापारः विभ्रमः = भ्रान्तिः स्यात् = भवेत् तर्हि चिरम् = बहुकालम् । मे = मम । विभ्रमः = भ्रान्ति । अस्तु = भवेत् । स्वप्नाद् भ्रान्तेर्वा यथाकथञ्चिद्वासवदत्तादर्शनम् भवेच्चेद्धन्यो भवेयमिति वासवदत्तासमानवस्त्वन्तरदर्शन सम्भाव्यमानो विदूषको ब्रवीति—भो वयस्येति । भो मित्र !

करने से और उस सम्बन्ध से वासवदत्ता की याद आ जाने से आपने उन्हें स्वप्न में देखा होगा ।

राजा—ऐसा ! मैंने स्वप्न देखा ।

यदि यह स्वप्न है तो न जागना भी धन्य है अथवा यदि यह भ्रान्ति है तो चिरकाल तक मुझे ऐसी भ्रान्ति होती ही रहे ॥ ९ ॥

विदूषक—प्रिय मित्र ! इस नगर में अवन्ति सुन्दरी नाम की एक यक्षी निवास करती है उसी को आपने देखा होगा ।

जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति सा त्वया दृष्टा भवेत् ।]

राजा—न, न

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥ १० ॥

नाम्नावन्तिसुन्दरी कापि यक्षी गन्धर्वी पुरमेतदलङ्करोति सा चापूर्वं सौन्दर्यं वहन्ती वासवदत्तामनुकरोति तस्या एव दर्शनमिदानीं भवता लब्धं स्यादित्यहं सम्भावये । तन्निषेधन्नाह राजा—न नेति । द्वौ नञौ प्रकृतार्थं दृढयतस्तेन नहि भो अवन्तिसुन्दरी मया न दृष्टा किन्तु वासवदत्तैव साऽऽसीदिति निश्चयं विश्वसिमितथाहि—

अन्वयः—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम् ॥ १० ॥

व्याख्या—स्वप्नस्य = स्वापस्य । अन्ते = अवसाने । विबुद्धेन = जागरूकेन । मयेति शेषः । चरित्रम् = सद्वृत्तम् । अपि जीवितमित्याक्षिप्यते तेन जीवितेन सह पातिव्रतानुरूपशीलम् रक्षन्त्याः = पालयन्त्याः वासवदत्ताया इति शेषः । नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् नेत्रयोः = नेत्राभ्याम् विप्रोषितम् = दूरीभूतम् । अञ्जनं = कज्जलं यस्मिन् तत् । दीर्घालकम् दीर्घा = लम्बमाना अलका चूर्णकुन्तला यत्र तादृशम् वदनं = मुखम् । दृष्टं = साक्षात्कृतम् । अत्र नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकमिति मुखविशेषणद्वयेन प्रोषितभर्तृकाभिर्नेत्रयोरञ्जनसम्बन्धो वेणीबन्धश्च सर्वथा परिहरणीय इति वासवदत्तायाश्चरित्रं भृशं व्यक्ततां नीतम् कविना ॥ १० ॥

राजा—नहीं नहीं ।

स्वप्न के अन्त जागता हुआ मैंने सच्चरित्र से परिपूर्ण वासवदत्ता के अञ्जन रहित नेत्रों से युक्त तथा लम्बे-लम्बे अलकों से युक्त मुख को देखा ॥ १० ॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

विदूषकः मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु भवं चउस्सालं

वासवदत्तायाः प्रत्यक्षदर्शनहेतुभूतं स्वशरीरसमुद्भूतं किञ्चिच्चिह्नमपि दर्शयति राजा । अपि चेति । मित्र पश्य पश्य वासवदत्तासाक्षात्कारकलक्षणं मया वक्ष्यमाणमिदमन्यमपि चिह्नम्—योऽयमित्यादि ।

अन्वयः—सन्त्रस्तया तया देव्या यः बाहुः निपीडितः स्वप्ने उत्पन्नसंस्पर्शः सन् अपि रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

व्याख्या—सन्त्रस्तया = अतिशयभीतया । तया = देव्या वासवदत्तया । यः अयम् = एषः बाहुः = भुजः निपीडितः = स्वकरेण गृहीत्वा शयनीये आरोपितः तेन कारणेन स्वप्ने निद्रायाम् उत्पन्नसंस्पर्शः = सञ्जातदयिताकरसम्पर्कः बाहुरिति शेषः । रोमहर्षम् रोमाञ्चं न मुञ्चति न त्यजति । वासवदत्ता प्रणयेन मदीयं भुजं गृहीतवती स्वप्नेऽपि तत्पाणिस्पर्शेन मदीयोऽयं भुजो रोमाञ्चितोऽभवदित्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ११ ॥

इदानीं राजानं तदनुचिन्तनाद्विषयान्निवर्तयितुकामो विदूषक आह—मेति । अनर्थकम् = असम्भाव्यविषयम् । चिन्तयित्वा = संस्मृत्य । मा विषण्णो

और भी मित्र देखो देखो ।

अत्यन्त भयभीत हुई उस देवी ने जो मेरा यह हाथ पकड़ा स्वप्न में स्पर्श होने पर भी अभी तक (जागरितावस्था) में भी वह रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ११ ॥

विदूषक—इस समय आप असम्भाव्य विषय की चिन्ता कर विषण्ण मत हों । आप आइये आइये । बैठके वाले घर में चलें ।

पविसामो। [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्। चतुःशालं प्रविशामः।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीय—जयत्वार्यपुत्रः। अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्।

भवान् भवत्विति। चतुःशालम् = शालाचतुष्टयोपेतं गृहविशेषं। प्रविशामः = प्रवेश कुर्मः। काञ्चुकीय इति–आर्यपुत्रः = सम्मान्यः। जयतु। उत्कर्षातिशयेन वर्त्तताम्। अमात्यः = महामन्त्री बलसमुदायेन = सैन्यसमूहेन। आरुणिम् = तन्नामकं भवच्छत्रुम्। अभिघातयितुम् = बिनाशयितुम्। उपयातः = प्रस्थितः। मामकानि = मदीयानि। हस्त्यश्वरथपदातीनि = चतुरङ्गसैन्यानि। विजयसाधनानि = विजये हेतुभूतानि। सन्नद्धानि = उद्यतानि सन्तीति शेषः। अयमर्थः–अस्मन्महाराजा दर्शकमहोदया श्रीमतं निवेदयन्ति–यत्किल श्रीमता रुमण्वता परिपन्थिनमारुणि भवता प्रमाथयितुमिच्छता महान्तं सैन्यसमूहमात्मना सहादाय सम्प्रत्यत्रोपस्थितमिति भावः। आक्रमणकार्योचितानि संविधानानि यथोचितमारचितानि—इति सूचयन्नाह–अपि चेति।

(प्रवेश कर)

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र महाराज की जय हो। हम लोगों के महाराज दर्शन ने आपको कहा है कि आपके महामन्त्री रुमण्वान् बहुत बड़ी सेना के साथ आरुणि को मारने के लिए चल दिये हैं। उसी प्रकार विजय के अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाएँ भी तैयार है इस कारण आप उठिये॥ ११॥

अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

अन्वयः—(हे राजन्)! ते रिपवः भिन्नाः । भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः या पार्ष्णी तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये विधानं कृतम् । अरिप्रमाथजननं यत् यत् साध्यं तत तत् मया अनुष्ठितम् । बलैः त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा च । वत्साश्च तव हस्ते सन्ति ॥ १२ ॥

व्याख्या—(हे राजन्) ते = तव । रिपवः = शत्रवः । भिन्नाः = भेदं सम्प्राप्ताः । नानाविधैरुपायैरिति शेषः । भवद्गुणरताः = भवद्दयादाक्षिण्यादिगुणानुरक्ताः । पौराः = नागरिकाः । समाश्वासिताः = आश्वासनं सम्प्रापिताः । या पार्ष्णी = सैन्यपृष्ठम् । तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये = त्वद्विजययात्राकाले । विधानम् = अवश्यं करणीयसंरक्षणम् । कृतं = विहितम् । अरिप्रमाथजननम् = शत्रुनाशोत्पादकं यत् यत् साध्यम् = साधनीयम् । तत् तत् मया = दर्शकेन । अनुष्ठितम् = सम्पादितम् । बलैः = सैन्यैः त्रिपथगा = भागीरथी गङ्गा । नदी = सरित् । अपि तीर्णा = पारे गताः । वत्साश्च वत्सदेशवासिनो जनाः । तव हस्ते सन्ति । शत्रूणां परस्परं भेदः । शत्रोरधीनतां गताना

और भी—

आपके शत्रुओं में परस्पर भेद उत्पन्न कर दिया गया हैं । आपके दया, दाक्षिण्यादि गुणों में अनुरक्त नागरिकों को धैर्य प्रदान कर दिया गया है । आपके आक्रमण काल में सेना के पृष्ठभाग की रक्षा की विधि भी सोच ली गई है । इस प्रकार शत्रुओं के नाश के जितने भी साधन (उपाय) है वह सब मैंने तैयार कर लिया है । इतना ही नहीं हमारी सेनाओं ने गङ्गा

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

पुरवासिजनानामाश्वासनम् सैन्यपृष्ठरक्षोपायः सेनापि गङ्गायाः परं पारं प्राप्य सन्नद्धावस्थापिता एवं शत्रुघ्नं समरोचितं सकलमपि विधानं संरचितम् । एवं पुनर्वत्सदेशवासिनो जनाः भवदीयवशेऽचिरादेव स्थास्यन्ति । भवताऽपि प्रयाणोद्यमः शीघ्रमालम्बनीय इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं नाम च्छन्दः ॥ १२ ॥

काञ्चुकीयवचनं श्रुत्वा राजा सोत्साहम् उत्थाय ब्रवीति—बाढमिति बाढम् = साधु समीचीनेयं व्यवस्था कृता । संग्रामे स्वकर्तव्यं सम्पादयितुमप्युद्यतोऽस्मीत्यर्थः ।

अन्वय.—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि उपेत्य दारुणकर्मदक्षं तम् आमारुणि नाशयामि ॥ १३ ॥

व्याख्या—नागेन्द्रैः महागजैः तुरङ्गैः अश्वैः तीर्णे पारं गते । विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे विकीर्णाः विक्षिप्ताः बाणाः शराः ते एव उग्रतरङ्गाः भयङ्करोर्मयः तैः भङ्गः यस्मिन् तस्मिन् । महार्णवाभे महार्णव आवर्ते. महासमुद्र इव आभा यस्य तस्मिन् युधि = युद्धे उपेत्य = गत्वा दारुणकर्मदक्षम् दारुणं भीषणं यत्कर्म तस्मिन् दक्षः निपुणः तम् । आरुणि = तन्नामकं स्वशत्रुं । नाशयामि = निहन्मि । उपेन्द्रवज्रानामकं छन्दः । रूपकमुपमा च तेन संसृष्टिरलङ्कारः ॥ १३ ॥

के उस पार जाकर डेरा डाल दिया है । अब आपका वत्सदेश आपके हाथ है ।

राजा—(उठकर) अच्छी बात है । मैं अभी इस प्रकार के युद्ध में जाकर भयंकर कर्म में निपुण उस आरुणि नाम के शत्रु को युद्ध मे मारता हूँ जो (युद्ध)

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

—:❈:—

युद्धोपक्रमं नाम भविष्यत्कार्यं संसूच्य प्रसङ्गान्तरमवतारयितुं पश्चात्सर्वेषां निष्क्रमणं दर्शयति निष्क्रान्ताः सर्वे इति ।

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

—:❈:—

हाथी और घोड़ों से पार करने योग्य तथा निक्षिप्त बाणरूपी उग्रतरङ्गों से व्याप्त महासमुद्र के समान है ।

(सब निकल जाते हैं)

॥ पञ्चम अंक की भाषा टीका समाप्त ॥



षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

इह षष्ठेऽङ्के घोषवतीं नाम्नीं वीणां केनचिद्वादितां श्रुतवतो वत्सराजस्य तत्प्राप्तिस्तयैव समं प्रियानवाप्तिमूलको मानसशोकज्वराविर्भावः। तत्काले एव महासेनभूपतिना देव्या महाराज्ञया च प्रेषितयोर्नूतनराज्यलाभाभिनन्दनाय कुशलवृत्तान्तावगतये च दूतयोरुपस्थितिः। वत्सराजस्य सन्निधौ पद्मावत्युपस्थानं च। महाराज्ञीप्रेषितदूतीकर्त्तृकं वत्सराजाय वासवदत्ताचित्रपटसमर्पणम्। चित्रदर्शनेन तदाकारसाम्यात् पद्मावत्याः स्वसमीपे न्यस्तायामवन्तिकाया वासवदत्तात्वशङ्का। एतस्मिन्नेव काले वासवदत्तां न्यासरूपेण स्थापितां ग्रहीतुं यौगन्धरायणस्य पद्मावतीसन्निधावागमनम्। स्वरसाम्येन राज्ञोऽपि तत्र महासेनपुत्रीत्वसम्भावना। तदनन्तरम् अपनीतकपटवेषेण यौगन्धरायणेन स्वपरिचयपुरःसरं रहस्योद्भेदन तावत्कालपर्यन्तं वासवदत्तानियोजनरूपापक्षमाप्रार्थनम् च। सर्वेषां महासेनमहाराजसमीपे प्रस्थानप्रस्तावश्चेति विषया उपन्यस्ताः।

अथ कविः काञ्चुकीयप्रतीहाराभ्यां मध्यमनीचपात्राभ्यां मिश्रविष्कम्भकरूपेणाग्रिमं वृत्तं सूचयितुं काञ्चुकीयस्य प्रवेशं दर्शयति ततः प्रविशतीत्यादिना।

महाराजमहासेननृपतेः सकाशादागतोऽयं काञ्चुकीयस्तत्सन्देशवाचं निवेदयितुमिच्छन् वत्सराजद्वारान्तिकमागत्य द्वारपालत्वेन क इहोपस्थितोऽस्ति येन मे सन्देशस्तं प्रति प्राप्येते'ति तत्समयोचितं ब्रूते—क इति। काञ्च-

---

(तदनन्तर काञ्चुकीय का प्रवेश)

काञ्चुकीय—अरे भाई ! यहाँ कौन है ? इस सुवर्ण-निर्मित बाहर के द्वार को कौन सनाथ कर रहा है ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

नद्धारतोरणम् = सुवर्णरचितबहिर्द्वारम् । अशून्यम् = अनतिरिक्तम् । मनाथमिति यावत् 'कः पुनरत्र राजभवनस्य द्वारभूमौ स्थितः मन् स्वीयं कार्यमनवरतं विदधानो जाग्रतीति प्रश्नाशयः ।

प्रश्नसमकालमेव प्रतीहारीमुपस्थापयति कविः प्रविश्येति । प्रतीहारी प्रविश्य ब्रूते—अयीति—अयि सम्मान्य ! किं करणीयमस्ति । मह्यमादिश्यतामिति भावः । स्वीयमागमनं संसूचयितुमाह काञ्चुकीयः भवतीति । निवेद्यतामिति त्वरार्थं द्विरुक्तिः । वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय वत्सराज्यलाभेन वत्सराज्यप्राप्त्या प्रवृद्धः समृद्धः उदयो = उत्कर्षः यस्य तस्मै । महासेनस्य = उज्जयिनीपतेः सकाशात् समीपात् । प्रेषिता = प्रहिता वासवदत्तोपधात्री = वासवदत्तापालिका प्रतीहारभूमिम् = द्वारभुवम् । उपस्थितौ = सम्प्राप्तौ । श्रीमन्महासेनमहीपतेराज्ञया समागतो रैभ्यनामा काञ्चुकीयोऽहम् श्रीमत्या प्रद्योतनृपतेः पत्न्याः सम्प्रेषिता वसुन्धराख्या वासवदत्ताया उपमाता चेत्येता-

---

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य ! यह मैं विजया उपस्थित हूँ । कहिये मुझे क्या करना है ?

काञ्चुकीय—श्रीमति ! वत्सराज्य की पुनः प्राप्ति से उदीयमान महाराज उदयन से जाकर कहिये कि महासेन महाराज प्रद्योत के पास से रैभ्य सगोत्रीय एक काञ्चुकीय और माननीया महारानी अङ्गारवती के द्वारा

प्रतीहारी—अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स । [आर्य ! अदेशकाल: प्रतीहारस्य ।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिता । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीएसद्दो विअ सुणीअदि त्ति । [शृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।]

वुभौ वत्सराजस्य विजयावसरे कमपि स्वामिनो सन्देशं कथयितुमुपस्थितौ इत्येव तावन्निवेदनीयमित्यर्थः ।

काञ्चुकीयोक्तं राज्ञे निवेदनीयं सन्देशमाकर्ण्य तन्निवेदनेऽनवसरं सूचयति प्रतीहारी-आर्य अदेशकाल इति । देशश्च कालश्च देशकालौ अविद्यमानौ देशकालौ यस्य सः देशकालरहितः इत्यर्थः । राज्ञो निवेदनार्थमयं द्वारपालोपस्थितियोग्यो देशः कालश्च नास्ति । इदानीं यत्र राजा तिष्ठति तत्र द्वारपालगमननिषेधो वर्त्तते ! प्रतीहारीवचनमाकर्ण्य कथमयवसरो देशश्चास्मत्सन्देशप्रापणाय नानुकूल इति पृच्छति काञ्चुकीयः-कथमित्यादि तदुत्तरं सोपपत्तिकं ब्रवीति प्रतीहारी-शृणोत्विति । सूर्यामुखप्रासादगतेन =सूर्यामुखभवनप्राप्तेन ! केनापि = अज्ञातजनेन । वीणा = वल्लकी । वादिता = शब्दिता । राजभवनान्निर्गतेन राज्ञा केनापि वाद्यमानं वीणाध्वनिमश्रावि । तच्छ्रुत्वा कथित घोषवत्या शब्द इव श्रूयते इति ।

भेजी गई वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाई ये दोनो द्वार पर उपस्थित है ।

प्रतीहारी—आर्य प्रतीहारी द्वारा राजा से निवेदन करने का इस समय उचित देश और काल नही है ।

काञ्चुकीय—उचित देश और अवसर नहीं ऐसा कैसे ?

प्रतीहारी—आर्य ! सुनें । आज महारानी के सूर्यामुख नामक महल

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो-कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति। तेण भणिअं—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणी त्ति। तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं—दिट्ठासि घोसवदि! सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य! ईदिसो अणवसरो। कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति। तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो

तदुत्तरं किं संवृत्तमिति काञ्चुकीये पृष्टे सति प्रतीहारी उत्तरयति--तत इति--ततः = तदनन्तरं। आगमः = प्राप्तिः। ततो घोषवती सदृशं स्वरमनुनिशम्य वीणावादकस्योपसमीपं गत्वा 'कस्मात् पुरुषात्, कस्मात्स्थानाद्वा घोषवती मिमां लब्धवान् भवानिति? राज्ञा पृष्टः-सन् घोषवतीवादकः पुरुषः उत्तरयति-भणितम् = उक्तम्। नर्मदातीरे = रेवातटे। कूर्चगुल्मलग्ना = दर्भस्तम्बसम्बद्धा लब्धा वीणेति शेषः। अनया = वीणया। प्रयोजनं = कार्यम्। भर्त्रे = स्वामिने। उपनीयतां = समर्प्यताम्। अङ्के = उत्सङ्गे। मोहम् = मूर्च्छाम्। ततः = अनन्तरं मोहप्रत्यागतेन = मूर्च्छानिवृत्तेन। वाष्पपर्याकुलेन = रोदनव्याकुलितेन। मुखेन = वदनेन। भर्त्रा = स्वामिना। सा = वासवदत्ता। ईदृशः = एतादृशः। अनवसरः गमनानुकूलकालः न। कथं = केन प्रकारेण। निवेदयामि = संसूचयामि। अहं नर्मदातटङ्गतवा-

---

में पहुँच कर किसी ने वीणा बजाई। उसे सुन कर महाराज ने कहा यह तो घोषवती का सा शब्द सुनाई पड़ता है।

काञ्चुकीय—तब उसके बाद क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तदनन्तर उस व्यक्ति के पास जाकर पूछा तुम्हें यह वीणा कहाँ मिली ? उसने कहा—हमने नर्मदा नदी के किनारे

भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति। आर्य ! ईदृशोऽनवसरः। कथं निवेदयामि ?]

काञ्चुकीयः– भवति ! निवेद्यताम्। इदमपि तदाश्रयमेव।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि। एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादा

नस्मि। तत्र च दर्भस्तम्बेषु पतितेयं वीणा मया लब्धा यद्यपेक्ष्यते श्रीमता तर्हीमां श्रीमते समर्पयामि। ततस्तेन राज्ञे सा वीणा समर्पितेतियोजनीयम्। राजा च तां गृहीत्वा निजोत्सङ्गे निधाय वासवदत्तां संस्मरन् मूर्च्छितोऽभवत्। मोहोपगमनान्तरं वाष्पपर्याकुलेन मुखेन रोदितुमारेभे—अयि घोषवति त्वदीयं दर्शनं जातम्। किन्तु वासवदत्ता न दृश्यते—इति तदनन्तरं प्रतीहारी वदति—आर्य ! ईदृशोऽनवसर इत्यादि। अतः कथमिदानीं राज्ञः समीपं प्रापणीयं भवदीयं सन्देशभाषितमिति।

प्रतीहारीवचनमाकर्ण्य—काञ्चुकीयो ब्रवीति 'भवतीति। निवेद्यताम् = संसूच्यताम्। इदम् = निवेदनम्। तदाश्रयम् = वासवदत्ताविषयम्—देवि ! अस्मदीयागमनमिदं वासवदत्तामेव विषयीकरोति। तदिदं भवत्या राज्ञे निवेदनीयमेवेत्यभिप्रायः। श्रुत्वैतत्तदागमनं निवेदयितुं प्रतीहारी प्रतिजानीत—

कुशो की झाड़ी मे पड़ी हुई इसे देखो। यदि महाराज को इसकी आवश्यकता हो तो इसे समर्पित कर दूँ। तब उसे गोद में रख कर महाराज मूर्च्छित हो गये। फिर जब चेतना में आये तो मुख पर अश्रुधारा बहाते हुये बोले—घोषवती ! तू दिखाई पड़ी किन्तु वह नहीं। आर्य ! इस कारण राजा के पास जाने का अवसर नहीं है जो आपके आने का सन्देश कहूँ।

काञ्चुकीय—श्रीमती जी ! निवेदन कर दीजिये। क्योंकि यह सन्देश भी तद्विषयक ही है।

प्रतीहारी—आर्य ! यह मैं निवेदन करती हूँ। अच्छा ये महाराज सूर्यामुख प्रासाद से उतर रहे हैं। तो यहीं पर निवेदन करती हूँ।

ओदरइ। ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [आर्य ! इयं निवेदयामि। एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति। तदिहैव निवेदयिष्यामि।]

काञ्चुकीयः—भवति। तथा।

(उभौ निष्क्रान्तौ।)

(मिश्रविष्कम्भकः)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्या
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।

आर्यं इति। एषः = पुरोदृश्यमानः। अवतरति = अवरोहति। निवेदयिष्यामि = विज्ञापयिष्यामि। स्पष्टोऽर्थः।

प्रतीहार्युक्तं समर्थयति काञ्चुकीयः—भवतीति। अयि श्रीमति ! एवमेव कर्त्तव्यम् समीचीनोऽयमवसरो राज्ञे निवेदयितुमित्यर्थः।

उभौ निष्क्रान्तावित्यनेन—प्रतीहार्याः काञ्चुकीयस्य च राज्ञः समीपे गमनं सूच्यते।

ततः प्रविशतीति—कविरिदानीं श्रीमतो वत्सराजस्य रङ्गमञ्चे विदूषकेण समं प्रवेशं प्रदर्शयति। घोषवती वीणामुद्दिश्य राजा स्वकीय शोकमुद्गिरति—

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले सुप्ता

काञ्चुकीय—श्रीमती ! ऐसा ही करो।

(दोनों का प्रस्थान)

(मिश्र विष्कम्भक)

(तदनन्तर राजा और विदूषक रङ्गमञ्च पर आते है)

राजा—अरी मधुर शब्द करने वाली वीणा ! तू तो कभी वासवदत्ता के

विहगगणरजोविकीर्णदण्डा

प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

(सती) कथं नु विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता ॥ १ ॥

व्याख्या—हे श्रुतिसुखनिनदे श्रुत्योः = कर्णयोः सुखः = हर्षकारकः निनदः ध्वनिः यस्या सा । वीणे इति शेषः । देव्याः = वासवदत्तायाः । स्तनयुगले = पयोधरयुग्मे । जघनस्थले = कटिपुरोभागस्थाने च सुप्ता = शयिता सती । सम्प्रति कथं नु = केन प्रकारेण । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा विहगगणस्य = पक्षिसमूहस्य रजोभिः – धूलिभिः विकीर्णः – व्याप्तः दण्डो यस्याः सा । प्रतिभयम् भयङ्करम् । अरण्यवासम् = वनवासम् । अध्युषिता = संस्थिता असीति शेष. । अस्य श्लोकस्येदं तात्पर्यम्–अयि घोषवति ! या त्वं पुरा वासवदत्तया सस्नेहं कोमलाङ्गे लालिता सती शयनसुखमन्वभूः सैव त्वं दुर्दैवशात्पक्षिगणमलदूषितं वीणादण्डं दधाना भयानकवनवासं प्राप्तवत्यसीति भावः ।पुष्पिताग्रावृत्तम् । अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा इति तल्लक्षणम् ॥ १ ॥

अपि चेति–अस्निग्धा = स्नेहरहिता । इदमपि निश्चितं तवाधुना वासवदत्तां प्रति स्नेहो नास्ति—तदेव सूचयति–इत्यादि । एतत्पदमग्रिम-श्लोकान्वयि ।

स्तनों पर कभी कटयग्रभाग में सोती रहती थी । वही तू आज इस समय चिड़ियों के मल से दूषित दण्ड वाली होकर यह भयानक अरण्यवास कैसे करती है ॥ १ ॥

और भी । अरी घोषवती ! तू सर्वथा स्नेहरहित है ।

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥ २ ॥

अन्वयः —श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि। विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि) ॥ २ ॥

व्याख्या—(या त्वं तपस्विन्या) श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि श्रोण्या कटिभागेन समुद्वहनानि पार्श्वेन निपीडितानि पार्श्वनिपीडितानि श्रोणीसमुद्वहनानि च तानि पार्श्वनिपीडितानि = कटिभागभुजाधोभागसम्पीडनानि । खेदस्तनान्तरसुखानि=खेदे सति स्तनयोरन्तर तत्र यानि सुखानि = वादनप्रयासे सत्यपि कुचमध्यस्थापनानन्दकराणि । विरहे माम उद्दिश्य = उपलक्ष्य परिदेवितानि=विलपितानि । वाद्यान्तरेषु वाद्यस्य=वीणायाः यानि अन्तराणि मध्यानि तेषु = वीणावादनावसरमध्येषु । उपगूहितानि = आलिङ्गितानि च न स्मरसि = न चिन्तयसि । अतएव असिनग्धासीति भावः । वादनावसरे यत्किल वाद्यभाण्डमङ्केन वासवदत्ता धृतवती । यच्च तस्यास्तदानीं पार्श्वभागेन वीणादण्डस्य संघर्षण जायते । यच्च वादनपरिश्रमान्मध्ये विश्रमार्थं सा वक्षोजमध्यभागेन वीणादण्डमालिङ्ग्य तूष्णीमवस्थिता, मद्वियोगकाले च यद् बहून्विलापान् कृतवती लोकोत्तरेषु मत्कृतेषु तत्तद्वादनकलाकौशलेषु यच्च

जो कि उस बेचारी के इन बातों का स्मरण भी नहीं करती जो तुम्हें कभी अपने गोद में एवं कभी पार्श्वभाग में रखती थी। थक जाने पर कूचों पर रख कर तुम्हारा आलिङ्गन करती थी। विरह की दशा में मुझे उपलक्षित कर विलाप करती थी। इतना ही नहीं मेरे द्वारा नाना प्रकार की वीणा बजाये जाने पर जो मेरी प्रशंसा में हास्ययुक्त प्रशंसासूचक वचन कहा करती थी ॥ २ ॥

विदूषक—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य ।]

राजा -वयस्य ! मा मैवम् ।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

मत्प्रशंसायाम् सहासं वचनमुक्तवती—तदेतदखिलं चेष्टितमिदानीं मृतां दशां वहन्त्यास्तस्या वासवदत्ताया किमपि न स्मर्यते त्वयेति भावः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २ ॥

प्रियावियोगपरितप्तचित्तमित्थं विलपन्तं राजानं दृष्ट्वा ततो निवारयन् विदूषको ब्रवीति—अलमिति–अयि मित्र ! भृश व्याकुलो मा भूस्त्वम् । तस्या उपलब्धेरभावात्तत्कृते शोको निरर्थक इति भावः । विदूषकवचनं श्रुत्वा स्वकीयमन्तारस्यानिवार्यत्वं सूचयति राजा–वयस्य मा मैवमिति ।

अन्वयः—चिरप्रसुप्तो मे कामः वीणया प्रतिबोधितः । यस्याः घोषवती प्रिया तां देवीं तु न पश्यामि ॥ ३ ॥

व्याख्या-–चिरप्रसुप्तः चिरेण प्रसुप्तः = बहुकालं यावच्छयितः । मे = मम । कामः=अभिलाषः । वीणया = वल्लक्या घोषवत्या । प्रतिबोधित. = उद्बोधितः

विदूषक—महाराज इस समय अधिक सन्ताप कर खिन्न न हो ?

राजा--मित्र ! ऐसा मत कहो । ऐसा मत कहो ।

बहुत काल से सोई हुई मेरी अभिलाषा को इस वीणा ने जगा दिया है । हाय ! जिसे यह घोषवती प्रिय थी उन महारानी को नहीं देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्र-मानय।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः) [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो ख महासेणस्स सआसादो रैम्भसगोत्तो

यस्याः = वासवदत्तायाः । घोषवती प्रिया = अभीष्टा । तां देवीम् = वासवदत्तां तु न पश्यामि = न विलोकयामि । अनुष्टुप् छन्द ॥ ३ ॥

प्रियतमाविषयिणीयं ममोत्कण्ठा साधनाभावाद्हृदये निलीनप्रायाऽभवत् । किन्त्वद्योपलब्धेयं घोषवती वासवदत्तां स्मारयन्ती नितान्तमुत्कण्ठामुद्बोधयति । एषा घोषवती यस्यै भृशमरोचत् सा मे प्रिया वासवदत्ता न तावल्लोचनगोचरतां गच्छतीति भावः इत्येवं भृशं विलप्य राजा वीणासंस्कारसम्पादनविधौ विदूषकमाज्ञापयति—वसन्तकेति । शिल्पिजनसकाशात् = वीणासंस्करणकलाकुशलसमीपात् । नवयोगाताम् = नूतनतन्त्र्यादियोजनयुक्ताम् । कृत्वा = विधाय । मित्र विदूषक ! चिरादनुपयोगान्नष्टभ्रष्टावयवामिमां घोषवतीं कुशलकारूणां समीपं नीत्वा नूतनावयवयोजनेन समीचीनां कारयित्वा ममान्तिकं सत्वरमानेतव्येति भावः ।

राजाज्ञां परिपालयितुं विदूषकः प्रतिजानीते—यद् भवानिति—एषोऽहं

अच्छा वसन्तक ! इस घोषवती को कुशल शिल्पियों के पास ले जाकर मरम्मत करा कर अभी लाओ।

विदूषक—महाराज को जैसी आ ा !

(बीन लेकर निकल जाता है)

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो। महाराज महासेन के यहाँ से

कंकुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ता-धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [जयतु भर्ता । एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—तेन हि पद्मावतीं तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी—ज भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद्भर्ताज्ञापयति ।]

भवदादेशमनुसृत्य तदुचितं कर्त्तुमुद्यतोऽस्मीति भाव. । विदूषको वीणां संस्कारयितुं वीणां नीत्वा ततः प्रस्थित इत्याह—वीणां गृहीत्वेति इदानीं राज्ञः सन्निधौ पूर्वनिर्दिष्टं प्रतीहारीप्रवेशं दर्शयति—प्रविश्येति—विजयाशंसनपूर्वकं पूर्वोक्तकाञ्चुकीयसन्देशं राजानं निवेदयन्ती प्रतीहारी ब्रूते जयत्विति । जयतु = सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । महासेनस्य = उज्जयिनीभूपतेः देव्याः = राज्ञ्याः । प्रतीहारम् = द्वारम् । श्रीमान् महामान्यो महासेनः रैभ्यसगोत्रं कञ्चुकीयम् श्रीमती प्रद्योतराजपत्नी अङ्गारवती च । तच्छ्रुत्वा राजा ब्रवीति तेन हीति ।

तेन = कारणेन । तावद् आहूयताम् = आकार्यताम् । पूर्वं पद्मावत्याह्वयितव्या तदनन्तरं दूताविमावुपस्थापयितव्याविति राज्ञोऽभिप्रायः । भर्त्तुराज्ञामादरं स्वीकुर्वन् प्रतीहारी ब्रूते—यदिति । यत्किलादिश्यत आर्येण तत्तावन्मया साध्यते इत्यर्थः । ततस्तस्या निर्गमन सूचयति निष्कान्तेति—प्रतीहार्यां गतायां

रैभ्य गोत्रीय कञ्चुकी तथा महारानी अङ्गारवती के द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाई द्वार पर उपस्थित हैं ।

राजा—तो पद्मावती को बुलाओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा । (कह कर चली जाती है)

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदित. ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती— जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

राजा स्वगतं भाषते किन्नु खल्विति–पद्मावतीपरिणयरूपो विजितराज्यप्राप्तिरूपो वा वृत्तान्तः महासेनेन श्रुतः यदुद्दिश्य त्वरया दूतप्रेषणं कृतं भवेत् । पद्मावत्याः सह पुनः प्रतीहारी प्रविशति अत्र भर्त्ता विराजते अतो श्रीमत्या राजकुमार्या तत्र गन्तव्यमिति प्रतीहारी पद्मावतीं प्रत्याह—एत्वेतु इति–गमने त्वराद्योतनार्थं द्वित्वं भर्त्तुः समीपं प्राप्ता पद्मावती भर्त्तुविजयाभिनन्दनं करोति—जयत्विति–दूतोपस्थितिवार्त्तामुद्दिस्य राजा पद्मावतीं पृच्छति–पद्मावतीति । पूर्वोक्तं प्रियस्य वचनमनुनिशम्य वासवदत्ताबन्धु-

---

राजा—क्या महासेन ने मेरा विवाह करना एवं राज्य की पुनः प्राप्ति की बात इतनी शीघ्रता से जान लीं ।

(तदनन्तर पद्मावती और प्रतीहारी दोनों का प्रवेश)

प्रतीहारी—राजकुमारी जी ! पधारे पधारे ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—राजकुमारी ! क्या तुमने सुना कि महासेन के पास से रैभ्य गोत्रीय कञ्चुकी एवं माननीय महारानी अङ्गारवती के द्वारा भेजी गई वसुन्धरा नाम वाली वासवदत्ता की धाय द्वार पर उपस्थित हैं ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे जादिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं। [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एवं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यसि ?]

राजा—कोऽत्र दोषः ?

जनेषु स्वीयत्वाभिमानं वहन्ती पद्मावती उत्तरयति—आर्यपुत्रेति प्रियम् = अभीष्टम् । ज्ञातिकुलस्य = सम्बन्धिबन्धुजनस्य । अत्र मे इति पदं मध्यमणिन्यायेन प्रियं ज्ञातिकुलस्येत्युभयत्रान्वयि । तेन मे प्रियम् । मे ज्ञातिकुलस्येत्यर्थो करणीयः । पद्मावत्युक्तं प्रशसन्नाह राजा—अनुरूपमिति । अनुरूपं = योग्यम् स्वकुलसदृशमिति भावः । अभिहितम् = उक्तम् । आस्यताम् = उपविश्यताम् । निःशङ्कमत्र भवत्या उपवेष्टव्यमित्यर्थः । तदानीं सहोपवेशनमनुचितं मन्यमाना पद्मावती कथयति—आर्यपुत्रेति एवं जनं समुपागतं = वासवदत्तायाः स्वजनम् । स्वामिन् ! नूतनपरिणीतया मया सार्धमुपविश्य किं भवता वासवदत्तायाः स्वजनः साक्षात्करिष्यते अनुचितमेतन्मन्येहमिति भावः । तत्र सहोपवेशन निषेधन्तीं पद्मावतीं तत्कारणं जिज्ञासमानो राजा ब्रवीति—कोऽत्रः दोष इति । दोष = अनौचित्यम् । तदेवा-

---

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मुझे अपने वश के बन्धु बान्धवों का समाचार सुनना प्रिय लगता है ।

राजा—तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ता के बन्धुजन भी मेरे स्वजन ही है । अच्छा पद्मावती बैठो, तुम क्यों नहीं बैठ रही हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या मेरे साथ बैठ कर आप उन लोगों से बातचीत करेंगे ?

राजा—इसमें क्या दोष है ?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि। [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति ।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीतिबहुदोषमुत्पादयति । तस्मादास्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति अविग्गा विअ संवुत्ता । [यदार्य-

---

नौचित्यं दर्शयति पद्मावती--आर्यपुत्रस्येति । अपरः परिग्रहः = द्वितीया पत्नी । उदासीनम् = अनभीष्टम् । स्वामिन् भवता सहोपविष्टाया: भवदीयद्वितीयपत्नीभूताया मे कदाचिद्दर्शनं नाभिरोचेत वासवदत्तास्वजनायेति भावः सहोपवेशनं समर्थयन् पद्मावत्याः शङ्कां निराकुरुते राजा--कलत्रेति । कलत्रदर्शनार्हम् = भार्यादर्शयोग्यम् । परिहरति = निवारयति । यस्मै सम्बन्धिजनाय भार्या दर्शनीया तस्मै तां वत्सराजो न दर्शयति नूनमयं सम्बन्धिजनाद्विमुखः कुरूपा वास्य भार्येस्येवं बहून्दोषानारोपयेदेषः सम्बन्धिजनः । अतोऽत्रैव भवत्या मत्समीपे उपवेष्टव्यमित्यर्थः । पत्युराज्ञां शिरोधार्यां मत्वा तथा कर्त्तुं प्रतिजानाति पद्मावती—यदार्यपुत्रेति--तातः = पिता वासवदत्ताया इति शेषः । वा = अथवा अम्बा = माता, वासवदत्ताजननीत्यर्थः । भणिष्यति = कथयिष्यति । आविग्ना इव = भीता इव । संवृत्ता = सञ्जाता । वासवदत्तापितरौ कञ्चुकीधात्रीभ्यां किं नु सन्देशं प्रेषयिष्यते इति । विचारयन्त्या मे मनः व्याकुलं भूयते इत्यर्थः । एवं विचार्य समुद्विग्नां

पद्मावती—यह आर्यपुत्र की दूसरी पत्नी हैं ऐसा समझ कर उन्हें कदाचित् कुछ उदासीनता जैसी मालूम पड़े ।

राजा—पत्नी दर्शन के योग्य जनों को अपनी पत्नी के दर्शन से रोकना—ऐसी बात दोष (निन्दा) पैदा करती हैं इसलिये बैठो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा । (बैठ कर) आर्यपुत्र ! पिताजी तथा माताजी क्या कहेंगी ऐसा विचार कर मैं भयभीत सी हो रही हूँ ।

पुत्र आज्ञापयति । आर्यपुत्र ! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्ना इव संवृत्ता ।]

राजा—पद्मावति ! एवमेतत् ।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥ ४ ॥

पद्मावतीमवलोक्य भूपतिरात्मनोऽपि तादृशं शङ्काव्याकुलत्वं प्रतिपादयति—पद्मावति एव मेतत्—भवत्या इवाहमपि शङ्काकुलोस्मीति भावः । तदेव स्पष्टयति—किमिति—

अन्वय—किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम् । मया कन्या अपहृता अपि सा च न रक्षिता । चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि ॥ ४ ॥

व्याख्या—किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति । तातो महासेनः अम्बा अङ्गारवती चेति शेषः । इति = अत्र विषये । मे = मम उदयनस्य । हृदयम् = चित्तम् । परिशङ्कितम् । मया = उदयेन । कन्या = कुमारी एव वासवदत्ता अपहृता = बलात् स्ववशीकृता । सा च = वासवदत्ता च । न रक्षिता अत्र कन्यैव वासवदत्ता परिहृता रक्षिता च नेति अपराधद्वयं सञ्जातम् इति व्यज्यते । चलैः = चञ्चलैः । भाग्यैः = अदृष्टैः । महदवाप्त-गुणोपघातः महत्सु = गुरुजनेषु, अवाप्तः = प्राप्तः कृतः वा गुणानां = सदाचारा-

---

राजा—पद्मावति ! ऐसा तो मुझे भी हो रहा है ।

पिताजी एवं माताजी ने सन्देश में क्या कहेंगे यह सोच कर मेरा भी हृदय शङ्काकुल हो रहा है । मैंने उनकी कन्या का अपहरण किया किन्तु उसकी रक्षा नहीं की । चञ्चल भाग्यों से बड़ों के गुणों का विनाश

पद्मावती- ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

दीनां, उपघात = विनाशो येन तादृशः = मान्यजनप्राप्तगुणविनाशः । पितुः = तातस्य । जनितरोषः = उत्पादितकोप. । पुत्र इव तनय इव भीतः = सन्त्रस्तः अस्मि = भवामि । वसन्ततिलकावृत्तम् । उपमालङ्कारः ॥ ४ ॥

वासवदत्तां कन्यावस्थायामेवापहृत्य तद्रक्षणेऽक्षमतां प्रदर्शयन्नहं ताभ्यां किं वक्ष्यामि इति मे मनः नितरां पर्याकुलमस्ति। दैवदोषात्सदाचार-विरुद्धमाचरितं मया पूर्वं तदुत्तरं मया सा अग्निदाहान्न रक्षिता । अतो ध्रुवं पितरं कोपयन् पुत्र इवाहं भीतोऽस्मीति भावः ।

'वासवदत्ता संरक्षणेऽक्षमोऽभूवमि'त्येवं निवारयन्ती पद्मावती वक्तीति—न किमिति—प्राप्तकाले = अनुकूले समये। किं वस्तु रक्षितुं = त्रातुं न शक्यम् अपितु शक्यमेव। परमुचितावसराभावात् तन्न रक्षितं शक्यमिति भावः। यदाकिल समयोऽनुकूलो भवति तदा कस्यापि वस्तुनः संरक्षणं कर्तुं शक्येत। श्रीमता यदः वासवदत्ता रक्षितुं न पारिता तत्र प्रतिकूलः समयः। श्रीमतो न दोष इति पद्मावत्यभिप्रायः । प्रतीहारी पद्मावतीमुपस्थिता सम्भाव्य पुनर्निवेदन-मुचितं मन्यमाना ब्रवीति–एष इति । प्रतीहार्युक्तमाकर्ण्य राजा तयोः प्रवेशानुमतिं दत्ते—शीघ्रमिति। यथा बिलम्बो न भवेत्तथैवात्र प्रवेशयितव्य-

---

करने का कलङ्क प्राप्त कर मैं पिता को क्रुद्ध करने वाले पुत्र के समान डर गया हूँ ॥ ४ ॥

पद्मावती—समय प्राप्त होने पर कोई वस्तु नहीं बचायी जा सकती।

प्रतीहारी—ये कञ्चुकीय और धाय द्वार पर उपस्थित हैं ।

राजा—उन्हें शीघ्र उपस्थित करो ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) । [यद् भर्ताऽऽज्ञापर्यति ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च ।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः ।

मिति भावः । स्वामिनो निदेशं पालयामीत्याशयेनाह प्रतीहारी–यदिति । कञ्चुकिनं धात्री च तत्रोपस्थापयितुं प्रतीहारी प्रस्थितेत्याशयेनाह–निष्क्रान्तेति । तदनन्तरं प्रतीहार्या सह उभयोः राज्ञः सन्निधौ प्रवेशं सूचयति कविः तत इत्यादि तत्रादौ काञ्चुकीयस्य मानसोद्गारं दर्शयति–भो इति ।

अन्वयः—इदम् सम्बन्धि राज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः । पुनः नृपसुतानिधन स्मृत्वा महान् विषादः । हे दैव ! परैः अपहृतं राज्यं देव्या कुशलं च स्यात् यदि ? तर्हि भवता किं नाम न कृतम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—इदम् = एतत् । सम्बन्धिराज्यम् = भर्तृजामातृराज्यम् । एत्य = आगत्य । मम = काञ्चुकीयस्य । महान् = अधिकः । हर्षः = प्रमोदः । पुनः = भूयः नृपसुतानिधनम् = राजकुमारीवासवदत्तामरणं । स्मृत्वा = विचिन्त्य महान् विषादः = खेदः । हे दैव = हे विधे ! परैः = शत्रुभिः अपहृतम् = स्वायत्तीकृतम् राज्यम् । देव्याः = वासवदत्तायाः कुशल = क्षेमं च स्यात् = भवेद्यदि तर्हि भवता किं नाम क्षेमं न कृतम् = न विहितम् । अत्र राज्य

प्रतीहारी- -महाराज की जैसी आज्ञा । (कह कर चली जाती है)

(तदनन्तर काञ्चुकीय, धाय और प्रतीहारी का प्रवेश)

कञ्चुकी—इस सम्बन्धी (उदयन) के राज्य में आने पर अपार हर्ष हो रहा है । किन्तु राजकुमारी वासवदत्ता के मरने की बात याद कर अपार खेद भी हो रहा है । हा दैव ! शत्रुओ के द्वारा छीने गये राज्य की

किं नाम देव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

धात्री—जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता ।]

राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

समुपागतस्य मे प्रसीदति नितरामात्मा दैवेन अस्मद्भर्त्तृजामात्रा परैरपहृतं राज्यं पुनः प्राप्तम् एवमेव वासवदत्तायाः क्षेमं चापि भवेच्चेत्तद् अस्माकं सर्वमभीष्टं सम्पन्नं कृतं भवेदिति भावः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५ ॥

राज्ञः समीपमुपगच्छन्ती प्रतीहारी काञ्चुकीयमाह—एष भर्त्तेति । एष इत्यङ्गुल्या निर्देशः । भर्त्ता = स्वामी विराजते सिंहासनमिति शेषः । राज्ञः समीपं गत्वा जयाशंसनम् करोति काञ्चुकीयः—जयतु भर्त्तेति । वत्सराजमुदयनं साक्षात्कुर्वती धात्र्यपि तथैव विजयाशंसनम् करोति—जयत्विति महासेनभूपतेः कुशलं जिज्ञासमानो राजा ब्रवीति—सबहुमानम् = सविशेषादरं । आर्येति सम्बोधनमिदम् ।

प्राप्ति के साथ यदि देवी वासवदत्ता भी सकुशल हो तो फिर तुमने क्या नहीं किया होता ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—यह महाराज विराज रहे है । उनके पास जाइये ।

कञ्चुकी—(सन्निकट जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

धाय—स्वामी विजयी रहें ।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥ ६ ॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

अन्वयः—पृथिव्यां राज्यवंशानाम् उदयास्तमयप्रभुः (एवं च) मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा कुशली अपि ? ॥ ६ ॥

व्याख्या—पृथिव्यां = भूलोके । राजवंश्यानाम् = क्षत्रियकुलोत्पन्नानां नृपाणाम् उदयास्तमयः उदयश्च अस्तमयश्च तयोः प्रभुः = उत्कर्षापकर्ष-समर्थः । एवं च मया = उदयनेन सह काङ्क्षितबान्धवः = अभीष्टबन्धुभावः । स = लोकप्रसिद्धः । राजा = उज्जयिनीपतिः महासेनः । कुशली = सक्षेमः । अपीति प्रश्ने किमित्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

प्रसादकोपयोः राज्ञां निग्रहानुग्रहौ कर्तुं समर्थो यो हि मत्सम्बन्धं सातिशयं कामयते । अहं वा यदीयं सम्बन्धमभिलषामि अपि नाम तत्र भवतो महामान्यस्य महासेननृपतेः सर्वतः कुशलं वर्तते किमिति तन्निवेदयितव्यं भवतेति राज्ञोऽभिप्रायः । स्वस्वामिनो विषये वत्सराजकृतं प्रश्नमाकर्ण्य काञ्चुकीयो ब्रवीति अथेति । अथ किमन्यदिति शेषः । एवमेव वर्तते—अस्त्येव श्रीमतो महासेनस्य कुशलम् । पुनः महासेनकृतं वत्सराजकुशलं सूचयति—इहापीति । इहापि = वत्सराज्येऽपि । सर्वगतं = सर्वविषयकं कुशलं अस्मत्स्वामिना पृष्टमिति भावः । प्रियाविरहेण स्वकीयं सन्देशमकथयन्

इस समस्त पृथ्वी में राजकुल में उत्पन्न क्षत्रियों के उत्कर्ष एवं अपकर्ष करने में समर्थ तथा मुझसे सम्बन्ध की इच्छा करने वाले उज्जयिनी पति सकुशल तो है ? ॥ ६ ॥

कञ्चुकी—और क्या ? महासेन सकुशल हैं उन्होंने यहाँ भी सब लोगों का सब प्रकार कुशल पूछा है ।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः। (उपविशति)

काञ्चुकीयः—दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति। कुतः—

राजा महासेनसन्देशं श्रोतुमिच्छन् कञ्चुकिनं ब्रवीति—आसनादुत्थाय किमाज्ञापयतीति—आसनादुत्थानं महासेनविषये आदरसूचनार्थम्। कस्तावदादेशोऽस्ति श्रीमतो महासेनस्येति भावः। तादृशमाचारं प्रदर्शितवतो राज्ञो विनयभावं प्रशंसन्नाह काञ्चुकीय सदृशमिति—एतत् = आसनत्यागरूपादरविशेषाविष्करणम्। वैदेहीपुत्रस्य वैदेही उदयनस्य जननी तस्याः पुत्रस्य तनयस्य। एतद्विनयप्रदर्शनम् मातृपरम्परागतम् स्थाने भवन्तमलङ्करोति किन्तु समयेऽस्मिन्नासनासीन एव श्रीमान् महासेनभूपतेः सन्देशं श्रोतुमर्हतीति भावः। महासेनभूपतिना यथादिष्ट तं ब्रवीतु भवानित्याह राजा—यदाज्ञापयतीति। तदनन्तरं कविः काञ्चुकीयवचनेन राज्ञ उपवेशनं दर्शयति उपविशतीति।

अथावसरोचितम् महासेनसन्देशं निवेदयति काञ्चुकीयः दिष्टयेति।

राजा—(आसन से उठ कर) महासेन क्या आज्ञा करते हैं ?

काञ्चुकीय—वैदेही के पुत्र! आपका यह विनय-प्रदर्शन आपके सदृश ही हैं। आसन पर बैठे-बैठे ही आपको महासेन का सन्देश सुनना चाहिये।

राजा—महासेन की जैसी आज्ञा (आसन पर बैठते है)

काञ्चुकीय—यह प्रसन्नता की बात है कि शत्रुओं द्वारा छीना गया राज्य फिर आपके द्वारा लौटा लिया गया। क्योंकि—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनप्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

दिष्ट्या = भाग्येन परैः = शत्रुभिः । अपहृत = स्वायत्तीकृतम् । प्रत्यानीतम् = प्रत्यावर्तितम् । कुत इति—कुतः = यतः ।

अन्वयः—ये कातरा अपि अशक्ताः तेषु उत्साहो न जायते । हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते ॥ ७ ॥

व्याख्या—ये = जनाः । कातराः = भीरवः । अपि वा = अथवा । अशक्ताः = असमर्थाः, तेषु = तादृशेषु कातरेषु अशक्तेषु च । उत्साहः = अध्यवसायः । न जायते = नोपपद्यते । हि = यत । प्रायेण = बहुधा । नरेन्द्रश्रीः = राजलक्ष्मीः । सोत्साहैः = उत्साहसम्पन्नैर्जनैः एव भुज्यते = वशमानीयते । अलसानामनुद्यमिनां च राज्यश्रीः सर्वथा दुर्लभे भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

श्रीमतो महासेनस्य सन्देशमतं निशम्य—श्रीमन्महासेनप्रभावेणैव सर्वमिदं सम्पन्नं मम का शक्तिरित्याह राजा—आर्येति । आर्य इति सम्बोधनपदं काञ्चुकीयं प्रति आदरं द्योतयति । सर्वमेतद् = विजयश्रियो लाभः परापहृतराज्यस्य पुनः सम्प्राप्तिश्च । प्रभावः = प्रतापः ।

अन्वयः—पूर्वं तावत् अहम् अवजितः । सुतैः सह लालितः । मया

जो अधीर एवं असमर्थ हैं उनमें उत्साह नहीं होता । प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यश्री का उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥

राजा—यह सब महासेन का प्रभाव है । क्योंकि—

सर्वप्रथम मैं उनके द्वारा जीत लिया गया । फिर भी उन्होंने अपने

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र कि कारणम् ॥८॥

काञ्चुकीय:—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्या. सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति।

कन्या दृढम् अपहृता। भूयो न रक्षिता च। तस्या निधनम् अपि श्रुत्वा मयि तथा एव स्वता। ननु उचितान् वत्सान् प्राप्तु अत्र नृप: कारणं हि ॥ ८ ॥

व्याख्या—पूर्वम् = प्रथमम्। अहम् = उदयनः तावद् अवजितः = तेन पराजितः तथापि सुतैः = आत्मपुत्रैः सह = समम्। लालितः = वत्स इव पालितः। मया उदयनेन, कन्या = राजकुमारी (अपरिणीता वासवदत्ता) दृढम् = बलात्। अपहृता = चौर्येण स्वायत्तीकृता। भूयः = पुनः। न रक्षिता = न गोपिता। हन्त! तस्याः = वासवदत्तायाः निधनम् = मरणं संजातम्। तथापि। मयि = उदयनविषये तथा एव = तादृश्येव स्वता = आत्मीयता महासेनेन स्थापिता। ननु = आमन्त्रणे (हे आर्यं) उचितान् स्वकीयान्। वत्सान् = वत्सदेशान्। प्राप्तुम् = पुनरासादितुम्। अत्र = विषये वत्सराज्याधिपत्यस्थाने। नृपः = महासेनः। कारणम् = हेतुः। हि = निश्चयेन तस्यैव पराक्रमप्रभावेणेदानीं ममायमभ्युदय इति भावः ॥ ८ ॥

राज्ञो वचनं श्रुत्वा काञ्चुकीय आह एष इति। एषः = पूर्वोक्ता।

लड़कों के साथ पाला पोसा। उनकी कन्या को मैं भगा कर बल पूर्वक ले आया। फिर भी उस कन्या की रक्षा न कर सका। अब कन्या की मृत्यु का समाचार पाकर भी उनका स्नेह मेरे ऊपर पूर्ववत् बना हुआ है। निश्चय ही मेरे शासन के योग्य वत्सराज्य की पुन. प्राप्ति में वे महाराज ही कारण हैं ॥ ८ ॥

काञ्चुकीय—यही महासेन का सन्देश है। अब महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा कहेगी।

राजा—हा ! अम्ब !

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ॥ ९ ॥

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्त्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

महासेनस्य सन्देशो मया निवेदितः । इदानीं महाराज्ञयाङ्गार-वत्या सन्देशस्तावन्मान्यया वासवदत्ताधात्र्या निवेदयिष्यते इति भावः । श्वश्रूसन्देशात्पूर्वं राजा तां मातृपदेन सम्बोध्य तदीयं कुशलं जिज्ञासुराह—हा अम्बेति ।

अन्वय—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्त्ता माता कुशलिनी ननु ॥ ९ ॥

व्याख्या—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा षोडशसु अन्तःपुरेषु ज्येष्ठा = श्रेष्ठा षोड-शान्तःपुरस्थ राज्ञी । पुण्या = प्रातः स्मरणीया । नगरदेवता = नगराधिष्ठात्री देवी । एवं च मम जामातुरुदयनस्य । प्रवासदुखार्त्ता = विदेशनिवासेन-शोकाकुला माता = जननी । कुशलिनी ननु = अनामया वीतशोका वर्तते किमु ? ॥ ९ ॥

पूजनीया राजमहिषी या लोकैः नगरदेवतेव मन्यते या च मद्वियोगेन दुःखिनी वर्त्तते सा मातृकल्पा मम श्वश्रूरङ्गारवती कच्चित् कुशलिनी इति राज्ञोऽभिप्रायः । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

तदनन्तरं धात्री स्वामिन्याः कुशलं वत्सराजमुद्दिश्य तत्कृतं कुशलप्रश्नं

राजा—हाय मातः !

सोलह पटरानियों में प्रधान महिषी, सर्वथा पवित्र, नगर के देवता तथा मेरे प्रवास दुःख से दुःखी वे माता जी कुशलपूर्वक तो है ? ॥ ९ ॥

धात्री—सकुशल तथा नीरोग रह कर सपरिवार आपका कुशल मङ्गल पूछती हैं ।

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताऽप्यनुपरता 'महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

च निवेदयति—अरोगेति । अरोगा = आरोग्यसम्पन्ना । स्वयमरोगास्मदीया स्वामिनी श्रीमतः सपरिवारस्य कुशलं जिज्ञासते इत्यर्थः । राजा सशोकं ब्रवीति—अम्बेति । ईदृशं कुशलं वर्त्तते यन्मया वासवदत्ता वियोगेनानुभूयते इत्यर्थः । एवं सर्वकुशलमेव ममेति भावः । एवं पूर्वोक्तेन वचसा राज्ञः शोकाकुलत्वमाकलयन्ती राजानं समाश्वासयन्ती च धात्री वदति—मेदानी-मिति—अर्हतीति शेषः । अतिमात्रम् = सातिशयम् अनुकम्प्यमाना = अनुगृह्यमाणा ।

स्वकीयामवस्थां संस्मृत्य शोकं कर्त्तुं नार्हति भवानिति भावः । काञ्चुकीयोऽपि राज्ञः शोके समुचितं समाश्वासवचनं प्रस्तौति—धारयत्विति । धारयतु = निगृह्णातु शोकावेगमिति शेषः । उपरता = मृतापि अनुपरता = जीविता श्रीमती वासवदत्ताऽदर्शनं गतापि श्रीमता एवं स्मरणविषयं नीयमाना ध्रुवं जीवत्येवेति तदर्थः । अतः विषादो न विधेय इत्याशयेनाह—अथवेति ।

राजा —सबका कुशल पूछती है माँ यहाँ तो ऐसा ही कुशल है ।

धाई—महाराज ! अब आप अधिक शोक न करें ।

काञ्चुकीय—श्रीमान् आपने शोकावेग को रोकें । श्रीमान् के द्वारा इस प्रकार स्मरण की जाने वाली वासवदत्ता मरने पर भी जीवित है । मैं वासवदत्ता की रक्षा नहीं कर सका यह बात भी आपको नहीं सोचना चाहिये । अथवा—

क कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

राजा—आर्य! मा मैवम्,

अन्वय—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः। रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति। एवं लोको वनानां तुल्यधर्मः। काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

व्याख्या—मृत्युकाले = मरणावस्थायाम्। कः = जनः। कं = जनम्। रक्षितुं=त्रातुम् शक्त = समर्थो भवति। रज्जुच्छेदे = प्रग्रहत्रुटिते। घटं=कलशं के = जना धारयन्ति = गृहीतुं समर्था.। मरणोपस्थितौ केऽपि जनाः कमपि जीवितुं न प्रभवन्ति यथा रज्जु भङ्गवेलाया घटं कूपे केऽपि न धारयन्तीत्यर्थः। लोकः = जनाः वनानाम् = वृक्षाणाम्। तुल्यधर्मः = समानस्वभावः। काले काले = समये समये। छिद्यते = भिद्यते। रुह्यते = वर्धते च। समये समये वृक्षाणामुच्छेदे जाते यथा ते पुनः पुनः जायन्ते तथैव कालवशतो जना मरणं सम्प्राप्य अपि प्रारब्धवशतोजन्म गृह्णन्तीति भावः। शालिनी छन्दः ॥ १० ॥

राजा—एवम् = इत्थम। मा मा वादीरिति। नैवेदं वक्तव्यं भवता

मृत्यु का समय आ जाने पर कौन किसे बचा सकता है। रस्सी के टूट जाने पर भला कौन घड़े को पकड़ सकता है। यह मनुष्य भी इसी प्रकार वृक्ष के समानधर्मा है। जैसे वृक्ष समय से काटे जाते हैं फिर उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी समय समय पर मरते हैं फिर उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

राजा—आर्य! ऐसा मत कहिये मत कहिये।

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।। ११ ।।

धात्री—आह भट्टिणी—उदरदा वासवदत्ता । मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो । अणग्गिसक्खिअं वीणा ववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो।

यत् 'वासवदत्तानुचिन्तनम् न कर्त्तव्यमि'ति । सा तु जन्मान्तरेषु अपि स्मृति-पथादपनेतुं न शक्या यतो हि मम प्राणप्रियेति भावः ।

अन्वय—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या प्रिया देवी च । सा मया देहान्तरेष्वपि कथं स्मर्त्तुं शक्या न ॥ ११ ॥

व्याख्या—महासेनस्य = प्रद्योतस्य । दुहिता = पुत्री । मे = मम । प्रिया = इष्टा । शिष्या = छात्रा । वीणावादनशिक्षणादिति भावः । देवी = पट्टमहिषी च । सा वासवदत्ता मया = पत्या उदयनेन । देहान्तरेषु = शरीरान्तरेषु । कथं केन प्रकारेण स्मर्त्तुम् = चिन्तितुम् । शक्या न । न इत्यत्र काकुः अन्यजन्मष्वपि सा अवश्यमेव स्मर्तव्या । उक्त च—पूर्वजन्मनि या विद्याह्यन्यजन्मनि यद्धनं । अन्यजन्मनि या नारी ह्यग्रे धावति धावति ॥११॥

तमेवमुपस्थितं राज्ञः प्रियतमातीतविषयानुचिन्तनप्रसङ्गमाक्षिप्य धात्री धीमत्या महाराज्ञ्या अवशिष्टं सन्देशं वक्तुमारभते—आहेति । भट्टिनी

वह महासेन की पुत्री मेरी प्रिय शिष्या एवं प्रिय रानी थीं। फिर मैं जन्म जन्मान्तर में भी उनका स्मरण कैसे न करूँ । अर्थात् इस शरीर से तो क्या ? जन्मान्तर में भी मैं उन्हें नहीं भूल सकता ।। ११ ।।

धाई—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता तो मर गई । मेरे अथवा महासेन के लिये जैसे गोपालक और पालक दोनों पुत्र प्रिय हैं वैसे ही तुम भी हो । और पहले से जामाता मान लिये गये हो । जामाता बनाने

अहअ अह्मेहि तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मम वा महासेनस्य वा यादृशो गोपालकपालको, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्या तव वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

=स्वामिनी। गोपालकपालको=तन्नामधेयौ पुत्रौ। तादृश एव। प्रथमम्=पूर्वम्। अभिप्रेतः=अभीष्टः। जामाता=दुहितुः पतिः। एतन्निमित्तम्=जामातृकरणार्थम्। उज्जयिनी=विशालापुरीम्। आनीतः=प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम्=अग्निसाक्ष्यरहितं। वीणाव्यपदेशेन=वल्लकीवादनशिक्षणव्याजेन। दत्ता=समर्पिता। आत्मनः=स्वस्य। चपलतया=चाञ्चल्येन। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव=अनिष्पन्नपरिणयोत्सव एव। चित्रफलकायाम्=आलेख्यपीठिकायाम्। प्रतिकृतिं=आकृतिं। निर्वृत्तः=निष्पन्नः। एतां=चित्रफलकाम्। निर्वृतः=सुखी।

वासवदत्ताविरहदग्धेन भवता खलु चित्रदर्शनेनैव कथञ्चिच्छान्ति नेयोऽन्तरात्मा अयमेवोपायोऽस्ति मनसस्तेऽनुरञ्जनस्येति भावः।

के लिए तुम उज्जयिनी ले आये गये। इतना ही नहीं अग्नि को साक्षी किये बिना हीं वीणा सिखाने के बहाने वह तुम्हारे अधीन भी कर दी गई। किन्तु अपनी चञ्चलता के कारण विवाह मङ्गल हुये बिना उसे लेकर तुम चले गये। तब हम दोनों ने तुम्हारी और वासवदत्ता की प्रतिकृति चित्र में खिचवा कर विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। वही चित्रफलक आपके पास भेजा जा रहा हैं। उसे देख कर अपना मनोरञ्जन कीजिये।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥ १२ ॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

श्रीमत्या अङ्गारवत्याः सन्देशभाषितं श्रुत्वा राजा सानन्दं प्रशंसति—अहो इति । अहो इत्यानन्दसूचकमव्ययपदम् । अतिस्निग्धम् = स्नेहातिशयसम्बन्धितम् । अनुरूपम् = स्वकीययोग्यम् ।

अन्वयः—एतद् वाक्यम् राज्यलाभशताद् अपि प्रियतरम् । यद् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहो न विस्मृतः ॥ १२ ॥

व्याख्या—एतत् = इदम् । वाक्यम् = वचनम् । राज्यलाभशतात् अपि = अनेकराज्यप्राप्तेरपि । प्रियतरम् = अतिशयप्रीतियुक्तम् । यत् अपराद्धेषु अस्मासु = कन्यापहरणादिगुरुतरापराधभाजनेऽपि मयि जनन्या अङ्गारवत्येति शेषः । स्नेहः = वात्सल्यम् । न विस्मृतः = विस्मृतिं न प्रापितः ॥ १२ ॥

अयं भावः विपुलराज्यप्राप्तिरपि मां तथा प्रीणयितुं न प्रभवति यथेदं श्वश्रूवचनं प्रीणयति । यद्यप्यहं तस्याः कन्यापहाराद्यक्षमापराद्धं कृतवान् तथापि तदपराधमिमं विस्मृत्योदारचित्तया तया मयि वात्सल्यमेव दर्शितमिति

राजा—पूजनीय महारानी ने अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण और समुचित वचन कहा है । उनके ये वाक्य सैकड़ों राज्य प्राप्ति से भी अधिक सुखकारी हैं जो कि उन्होंने अपराध करने वाले मेरे ऊपर भी अपना वात्सल्य नहीं भुलाया ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) का दर्शन कर प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। (चित्रफलकं दर्शयति।)
[पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए। (प्रकाशम्) अय्यउत्त! सदिसी खु इअं अय्याए?
[हम्! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः। आर्यपुत्र! सदृशी खल्वियमार्यायाः?]

चित्रविन्यस्तां वासवदत्तां द्रष्टुं पद्मावती तत्रोचितं स्वीयमादरं प्रकटयति आर्यपुत्रेति–चित्रगतम् = आलेख्ये स्थितम्। गुरुजनम् = मान्यजनम् अभिवादयितुं = अभिवन्दितुं। स्वामिन् चित्रस्थमिमं जनं दृष्ट्वा प्रणामं कर्तुं मीहते मे मनः। तच्चित्रं पद्मावतीं दर्शयितुं धात्री ससम्भ्रमं ब्रवीति—पश्यतु पश्यत्विति—त्वरायां द्विरुक्तिः। भर्तृदारिका = राजकुमारी। चित्रेऽभिलिखिता वासवदत्तां स्वान्तिकन्यस्तां विलोक्य पद्मावती आत्मगतं सशङ्कमानसं ब्रवीति–हमिति। एषा तु पूर्वं केनचिद्ब्राह्मणेन स्थापितायाः अवन्तिकानाम्न्याः सर्वशः संवादं भजत्याकारेण। यथार्थं वासवदत्तास्वरूपं प्रियः पतिरेव परिचिनोतीति राजानमुद्दिश्य प्रकाशं काकूक्तिमुपन्यस्यति–आर्यपुत्रेति। प्रतिकृतावस्यां वासवदत्तासादृश्यमस्ति न वा इति पद्मावत्याः प्रश्ने राजा उत्तरयति–नेति। अत्र तस्याः सादृश्यं न घटते अपितु साक्षात्सैवेति कल्पना ममेति राज्ञोऽभिप्रायः। तदनन्तरं विषादभावोदयं राज्ञः दर्शयति कविः–भो इति। अहह महत्कष्टम्। कथमिदानीं सोढव्यमित्याहाग्रिमेण पद्येन।

धाई—राजकुमारी जी! देखिये! देखिये। (इतना कह कर चित्रपट दिखलाती है)

पद्मावती—(चित्र देख कर अपने मन में) यह चित्र तो आर्या अवन्तिका के स्वरूप से अधिक मिल-जुल रहा है। (पुनः प्रकट) आर्यपुत्र! यह आर्या वासवदत्ता आर्या अवन्तिका के सदृश (रूप वाली) है।

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति ।]

अन्वयः—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् । इदं मुखमाधुर्यं अग्निना कथं दूषितम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—अस्य = चित्रलिखितस्य । स्निग्धस्य = प्रीत्यर्हस्य । वर्णस्य—रूपस्य । दारुणा = कठोरा । विपत्तिः = अग्निविनाशरूपा कथं केन प्रकारेण । आगतेति शेषः । इदं = पुरो दृश्यमानम् । मुखमाधुर्यम् = आननसौन्दर्यम् । अग्निना = अनलेन । कथं = केन प्रकारेण । दूषितम् = भस्मसात्कृत्वा विकृतम् ॥ १३ ॥

लावण्यपूर्णस्य वासवदत्तारूपस्य कथमभूद्विनाशः । किञ्चाकर्षकं सौन्दर्यपूर्णं चास्याः मुखम् कथमभूदग्निना दाहविषयीभूतमिति तात्पर्यम् । वासवदत्ताप्रतिकृतिं विदित्वाऽपि याथार्थ्यं जिज्ञासमाना पद्मावती वदति—आर्यपुत्रस्येति । प्रतिकृतावत्र वासवदत्तायाः सादृश्यं विद्यते न वेति निर्णेतुमार्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दिदृक्षामि । तदनन्तरं सादृश्यमसादृश्यं वा किमपि

राजा—समान नहीं हो सकता । यही वासवदत्ता है मैं तो ऐसा मानता हूँ । हाय ! बड़ा कष्ट है । ऐसे मनोहर रूप पर ऐसी भयानक विपत्ति कहाँ से आ पड़ी और मुख के सौन्दर्य को अग्नि ने दूषित कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर यह आर्या (वासवदत्ता) के समान हैं कि नहीं इसका निर्णय करूँगी ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्य उत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इयं अय्याए सदिसीत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति।]

राजा—देवि! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम्?

यथोचितं निर्धारयामीति पद्मावत्यभिप्रायः। तच्छ्रुत्वा धात्री वदति—पश्यतु इति। राजकुमार्या अवश्यं द्रष्टव्यं तच्चित्रम्। परीक्षणीयं याथार्थ्येन तत्स्वरूपमित्यर्थः। पद्मावती तत्र सादृश्यमुपलभमानाऽभिधत्ते—आर्यपुत्रस्येति। चित्रमिदं तत्र भवतः पत्युराकारेण साकल्येन संवदति तेन निर्णयामि यदिदमपि चित्रं वासवदत्ताकारसत्रादि स्यादिति भावः। राजा तु चित्रदर्शनादुद्भूता हर्षोद्वेगवशीकृतां पद्मावत्यवस्थां संलक्ष्य तस्याः पुरस्तात्प्रश्नमुपस्थापयति--देवीति। प्रहृष्टा = प्रसन्ना उद्विग्ना = व्याकुला चेति ताम्। प्रिये! चित्रदर्शनादारभ्य तत्र भवती। प्रसन्ना व्याकुला च दृश्यते अत्र किं कारणमिति। एतद्विषयकं रहस्य प्रकाशता नयन्ती पद्मावती

धाई—राजकुमारी जी! देखिये देखिये।

पद्मावती—(चित्र देख कर) आर्यपुत्र के चित्र की आकृति का मिलान करने से अर्थात् यदि यह चित्र आप से मिलता जुलता है तो यह वासवदत्ता का भी चित्र आर्या अवन्तिका के समान ही है। ऐसा मैं भी समझती हूं।

राजा—महारानी! चित्र देखने के बाद से मैं तुम्हें प्रसन्न और उद्विग्न सा देख रहा हूँ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि । [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्या. सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम्]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि ब्रह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदसणं परिहरदि । ता अय्या मए सह आअद पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [आर्यपुत्र !

प्राह–आर्यपुत्रेति । नाथ ! एतस्याश्चित्रेण समानाकारा काचित्कान्ता मदन्तिक एव साम्प्रतं निवसन्ती वर्त्तते इति भावः । तच्छ्रुत्वा राजा सकुतूहलमाचष्टे किमिति । किं वासवदत्तासमानाकारं वहन्तीं विद्यते काचिदत्र । तदनन्तरं पद्मावती ब्रवीति–आमिति । सत्यमेतदिति भावः । वासवदत्तोपलब्धिसम्भावनया सकुतूहलं राजा वदति तेन हीति । एवं चेद्विद्यते तदसौ सत्वरं मत्समीपमानेतव्येति भावः । राज्ञः सन्निधौ तदुपस्थितिप्रकारं प्रदर्शयन्ती पद्मावती वदति–आर्यपुत्रेति । कन्याभावे=अनूढावस्थायाम् । भगिनिका =अनुकम्पार्हा स्वसा । भगिनिका अनुकम्पनीया भगिनी तत् =तस्मात्कारणात् । जानातु =निश्चयं करोतु । अयं भाव.–स्वामिन् ! नासीत्पाणिग्रहणं मम यदा तदा किल कश्चिद् ब्राह्मणः समागत्य 'दयापात्रं ममेयं भगिनी

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस (वासवदत्ता के) चित्र के समान आकृति वाली एक स्त्री यहाँ रहती है ।

राजा—क्या वासवदत्ता के समान ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो उसे शीघ्र ले आओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मेरी कन्यावस्था में किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी

मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः। प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति। तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः।]

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥ १४ ॥

अस्याः पतिः परदेशं गतो वर्तते इत्युक्त्वा न्यासरूपेण मत्सविधे स्थापितवान् इयं चापि परपुरुषो मया न द्रष्टव्य इति व्रतं धत्ते। अतस्तामात्मना सार्धमहमानये साहचार्येण समागतां तां विलोक्य निश्चयं कर्त्तुमर्हति भवानिदानीमिति पद्मावत्यभिप्रायः। ब्राह्मणभगिनीत्वात्सा वासवदत्ता न भवितुमर्हतीति मन्यमानो राजा वदति—यदीति।

अन्वय—विप्रस्य भगिनी यदि व्यक्तम् अन्या भविष्यति। परस्परगता तुल्यरूपता लोके दृश्यते ॥ १४ ॥

व्याख्या—विप्रस्य भगिनी = ब्राह्मणस्य कस्यचित्स्वसा वर्तते। यदि = चेत्। व्यक्तम् = स्पष्टम् सा इति शेषः। अन्या = वासवदत्ताया इतरा काचित्। भविष्यति = स्यादिति। लोके = जगति। परस्परगता = पारस्परिका एकस्य व्यक्तेरन्यया सह इति यावत् रूपतुल्यता = रूपसादृश्यं दृश्यते = प्रत्यक्षमनुभूयते इत्यर्थः ॥ १४ ॥

बहन है' ऐसा कह कर किसी स्त्री को न्यास रूप में मेरे पास रखा था। और यह कहा था कि यह प्रोषित भर्तृका (जिसका पति परदेश गया हो) है इस कारण पर पुरुष का दर्शन नहीं करती। इस कारण उस आर्या को मेरे साथ आने पर आप देख कर पहचानिये।

राजा—'यदि वह' ब्राह्मण की भगिनी है तो निश्चय ही कोई दूसरी होगी। संसार में प्रायः परस्पर रूप की समानता भी देखी जाती है ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो उज्जइणीओ बह्मणो भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदु पडिहार उवट्ठिदो। [जयतु भर्ता। एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती होदव्वं। [भवितव्यम्।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः।

इदानीं कविः प्रसङ्गानुसारं यौगन्धरायणोपस्थितिं सूचयितुं प्रतीहारीप्रवेशं दर्शयति। प्रविश्येति। तद्वाचं प्रकाशयन्ती प्रतीहार्याह—जयत्विति 'विजयोऽस्तु स्वामिनः। एषः उज्जयिनीयः = उज्जयिनीनिवासी। ब्राह्मणः प्रतीहारमुपस्थितो द्वारि वर्त्तते। भट्टिन्या = पद्मावत्या प्रतिग्रहीतुं = पुनरादातुं। उज्जयिनीनिवासी विप्रः येन तत्र भवत्याः सन्निधौ न्यासरूपेण स्वभगिनी स्थापितासीत्पुरा तामादातुं द्वारदेशं समागतो वर्त्तते इत्यर्थः। पूर्वोक्तमेतस्य ब्राह्मणत्वं द्रढयितुमात्मनः सन्देहं निराकर्त्तुं च राजा पद्मावतीं पृच्छति-पद्मावतीति। प्रिये न्यासनिक्षेप्ता पुरुषो ब्राह्मणजातीयः किमु। पद्मावती उत्तरयति भवितव्यमिति। पद्मावतीवचनान्तरं ब्राह्मणमन्वगच्छन्—सत्वरं सत्कारपुरःसरमुपस्थापयितुमादिशति प्रतीहारीं राजा-शीघ्रमिति

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—स्वामी की जय हो। ये उज्जयिनी के ब्राह्मण महारानी के पास मैंने अपनी बहन को न्यास के रूप से रखा है ऐसा कह कर उसे लेने के लिये द्वार के पास उपस्थित है।

राजा - पद्मावती ! क्या वही ब्राह्मण हैं।

पद्मावती—होना तो चाहिये।

राजा—तब तो राजान्तःपुरोचित आचार (अर्घ्य पाद्यादि) से सत्कृत कर उसे लिया आओ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्य पुत्र आज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः—भोः । (आत्मगतम्)

अभ्यन्तरसमुदाचारेण = राजभवनोचितसदाचारेण पाद्याद्यर्घादिसमर्पणरूपेणेति यावत् । राजभवनमानीय गृहागतोचित सत्कार प्रदर्श्य विप्रमम् सत्वरमुपस्थापयेति भावः । राजाज्ञामङ्गीकृत्य तथा कर्त्तुं प्रतिजानीते प्रतीहारीयतीति । तथा कर्त्तुं तस्या, प्रस्थान सूचयति-निष्क्रान्तेति । इदानीं ज्ञापयन्नुनर्न्यासभूतां वासवदत्तां समानेतुं राजा पद्मावतीं कथयति-पद्मावतीति । प्रिये भवत्यापि गन्तव्यम् । न्यासभूतां तां समानेतु श्रीमदाज्ञानुसारं तथा विधीयते इति पद्मावती वदति यदिति । तद्गमनं दर्शयति कविः-निष्क्रान्तेति । तदनन्तरं पुनः प्रतिहार्या सह यौगन्धरायणप्रवेशं दर्शयति-तत इति । राजानमुपगच्छन् स्वीयानि कार्याणि

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(कह कर चला जाता है)

राजा—पद्मावती ! तुम भी उस स्त्री को ले आओ ।

पद्मावती—जैसी आयपुत्र की आज्ञा ।

(ऐसा कह कर चली जाती है)

(तदनन्तर यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(मन ही मन) ओह !

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १५ ॥

कृतपूर्वाणि स्मरणगोचरीकुर्वन् यौगन्धरायणः स्वमनसि वितर्कयति—प्रच्छाद्येति ।

अन्वयः—नृपतेः हितार्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य मया हितम् अवेक्ष्य इदं कामं कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं नाम ॥ १५ ॥

व्याख्या—नृपतेः = राज्ञः उदयनस्य । हितार्थम् = कल्याणाय । राजमहिषीम् = महाराज्ञी वासवदत्तामिति यावत् । प्रच्छाद्य = संगोप्य । मया = यौगन्धरायणेन हितम् = कल्याणकारकम् । अवेक्ष्य = विचार्य । इदम् = एतत् । कामं = स्वैरं यथा स्यात्तथा कृतं = विहितम् । मम कर्मणि = कार्ये । सिद्धेऽपि = सफले जातेऽपि । असौ पार्थिवः = राजा । किं वक्ष्यति किं कथयिष्यति । इत्थं विचार्य मे = मम । हृदयं = चित्तम् । परिशङ्कितम् = परितः शङ्काकुलम् नाम । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

पद्मावतीसमीपे वासवदत्ताया न्यासरूपेण स्थापनं पद्मावत्या सह राज्ञः परिणयश्चेति कार्यद्वयं मया साधु सम्पादितम् तथापि वासवदत्ता-

---

पद्मावती के साथ विवाह होने से महाराज का हित होगा ऐसा सोच कर उसे पूरा करने के लिये 'वासवदत्ता आग में जल गई' इस प्रकार का झूठा प्रवाद फैला कर उसे राज्य प्राप्ति का साधन एवं हितकर सोचते हुये मैंने वासवदत्ता को छिपा कर पद्मावती के पास धरोहर के रूप मे रख दिया । फिर पद्मावती के साथ राजा का विवाह कार्य कराया । यह कार्य मैंने अपनी इच्छा से किया । अब इस प्रकार का कार्य सिद्ध होने पर भी ये

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः। भो ब्राह्मणः! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता?

परेतेत्यलीकवार्त्ताख्यापनपुरःसरमात्मनो भगिनीत्वेन निर्दिश्य सा परहस्ते न्यासीकृता तमेतं विषयमनुचिन्त्य श्रीमान् वत्सराजः कार्यमिदं मदीयमुचितमनुचितं साध्वसाधु वा किमभिधास्यतीति मे दृढा शङ्का वर्त्तते इति भावः ॥ १५ ॥

यौगन्धरायणं प्रवेशयन्प्रतीहारी तं निर्दिशति–एष भर्त्तेति। अयमत्र स्वामी विराजते–सन्निधावुपस्थीयताम्। राज्ञः जयाशंसनं प्रस्तौति यौगन्धरायणः जयत्विति। उपसृत्य = उपगम्य। आदरातिशयं द्योतयितुं द्विरुक्तिः। राजा ब्रवीति श्रुतपूर्व इति। पूर्वं श्रुतः श्रुतपूर्वः। स्वरः = ध्वनिविशेषः। स्वसा = भगिनी। निक्षिप्ता = निहिता। त्वर्यताम् = त्वरा क्रियताम्।

राजा यौगन्धरायणकृतं विजयाशंसनमनुनिशम्य बहुशः श्रुतं तदीयं स्वरं परिचितवान् किन्तु तत्प्रयोक्तु. प्रच्छादितरूपमाकलय्य 'सोऽयमित्येवं न प्रत्यभिज्ञातवान्। पुनः न्यासरूपेण स्थापितं विषयं ज्ञातुं प्रकाशं पृच्छति। भो

महाराज उदयन इस विषय मे अच्छा या बुरा मुझे क्या कहेंगे ऐसा सोच कर मेरा मन शङ्का से व्याकुल हो रहा है।

प्रतीहारी—यही महाराज हे। आप चले जावें।

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) जय हो। आपकी जय हो।

राजा—यह स्वर तो परिचित जैसा प्रतीत होता है। हे ब्राह्मण क्या आपकी बहन पद्मावती के पास न्यास रूप में रखी हुई है?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका।

प्रतीहारी- ज भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती अवन्तिका प्रतीहारी च ।)

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि । [एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि ।]

इति । हे विप्र ! किं भवान् स्वकीया भगिनी पद्मावत्याः सन्निधौ स्थापितवानिति । राज्ञा पृष्टस्य विषयस्य सत्यतां दर्शयन् यौगन्धरायणो ब्रवीति—अथ किम् किमन्यत् । यथार्थमेवास्तीदम् । अहमेवात्मभगिनीं न्यासरूपेण स्थापितवानित्यर्थः तेन हीति—तेन हि=ततः कारणात् । ब्राह्मणोऽयं न्यासमात्मनो गृहीतुमागतः अत एतस्य भगिनीं त्वरय त्वम् । यथा चेयमतिशीघ्रमत्रोपस्थिता भवेत्तथा विधेहीत्यर्थः । श्रीमदादेशमनुष्ठीयते मयेत्याह प्रतीहारी—यदिति । वासवदत्तया सह राज्ञः समीपमुपयान्ती पद्मावती तद्भ्रातुरुपस्थितेर्वार्तां निवेदयितुमुद्यता ब्रूते—एतु एत्विति । सत्वरमागच्छतु भवती । अभीष्टं वृत्तं किमपि श्रावये । तच्छ्रुत्वा प्रसन्ना त्वं भविष्यसि । अभीष्ट-

---

यौगन्धरायण—और क्या ?

राजा—(प्रतीहारी से) तो इनकी बहन को यहां ले आने की जल्दी करो ।

प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा । (चली गई)

(पद्मावती, अवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आर्या ! आवें आवें । आपको प्रियवचन सुनाती हूँ ।

आवन्तिका—किं किं ? [कि किम् ?]

पद्मावती—भादा दे आअदो। [भ्राता ते आगतः।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि। [दिष्टयेदानीमपि स्मरति।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो। एसो णणासो। [जयत्वार्यपुत्रः। एष न्यासः।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्नयासो निर्यातयितव्यः। इहात्रभवान् रैभ्य अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः।

वृत्तान्तश्रवणे स्वकीयं कौतूहलं दर्शयन्त्यवन्तिका ब्रूते—किं किमिति–कीदृशं तत् ? स्पष्टं निरूपयतु भवतीति वासवदत्ताभिप्रायः। पद्मावती प्रियं निवेदयति–समुपस्थितोऽद्य भवदीयो भ्राता येन भवती निक्षिप्ता। अवन्तिका ब्रूते—दिष्टयेति–दिष्टया = हर्षे भाग्येन। ममायं सौभाग्यो यत्साम्प्रतं मामनुस्मरन्नागतोऽयमिति भावः। पद्मावती भर्त्तुः समीपं गत्वाऽवन्तिकां दर्शयन्ती ब्रवीति–जयत्विति। विजयः स्यादत्र भवतः स्वामिनः। राजा समागताय तस्मै न्यासप्रत्यर्पणार्थं पद्मावती प्राह–निर्यातयेति।

निर्यातय = न्यासं समर्पय। साक्षिमत् = साक्षात् द्रष्टृयुक्तो यथा स्यात्तथा। निर्यातयितव्यः = प्रत्यर्पणीयः। अधिकरणम् = आधारः साक्षीति यावत्।

अवन्तिका—क्या ! क्या ?

पद्मावती—आपके भाई आये हुये हैं।

अवन्तिका—भाग्य से इतने दिनों पर याद कर रहे हैं।

पद्मावती—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यही न्यास है।

राजा—पद्मावती ! न्यास लौटा दो। किन्तु साक्षी के सामने न्यास लौटाना चाहिये। इसलिये यहाँ माननीय रैभ्य और माननीया वसुन्धरा देवी प्रत्यक्ष रूप में गवाह होंगे।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानी-मार्या ।]

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) **अम्मो** ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्मो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायण—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

अयि पद्मावति न्यासोऽयं प्रत्यर्पणीय एतस्मै स च साक्षिणं पुरस्कृत्यैवार्पयितव्यः । अत एतस्मिन् विषये रैभ्यः धात्री चेत्युभौ साक्षिस्थानतां नेतव्यौ । एतावेव साक्षिणौ कृत्वा न्यासप्रत्यर्पणमिदं कार्यमिति भाव. । राजवचनादुभयोः साक्षित्वे निक्षेप्त्रे न्यासं समर्पयन्ती पद्मावती प्राह—आर्येति । अत्र भवता मदन्तिकं न्यासरूपेण समर्पितेयमवन्तिका मया भवते समर्प्यते नीयताम् इति भावः । तस्मिन्नेवावसरे वासवदत्तां दृष्ट्वा इयं वासवदत्तैवेति आकलयन्ती तत्समुपलब्धौ विस्मयं प्रकटयन्ती धात्री ब्रूते—अम्भो इति । अम्भो इत्याश्चर्यसूचकम् । अहो । राजकुमारीयं वासवदत्ता । कथङ्कारमेतस्या इदानीमत्रोपलब्धिरिति राजा धात्रीवचनं निशम्य तामवन्तिकां निरूप्य साश्चर्यं प्राह—कथमिति । कथम् किम् । महासेनस्य दुहिता = वासवदत्ता ? मत्प्रियेयं साम्प्रतं दृश्यते इति निगद्यतां गृहान्तर्गन्तुमादिशति—देवीति । प्रिये ! त्वया पद्मावत्या सह गृहान्तः प्रवेष्टव्यमिति भावः । गृहान्तः प्रवेशान्निवारयन् यौगन्धरायणः अवन्तिका प्राह—न खल्विति । निःसंशयमियं

पद्मावती—आर्य ! अब आप आर्या को ले जाइये ।

धाई—(अवन्तिका को देख कर) अरे ! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता हैं ।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ! महारानी ! तुम पद्मावती के साथ अन्तःपुर में जाओ ।

यौगन्धरायण—नहीं महाराज ! इन्हें अन्तःपुर में नहीं जाना चाहिये यह मेरी बहन हैं ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

मे स्वसा वर्त्तते । भवता महासेनपुत्रीत्वशङ्कया कथमभ्यन्तरं प्रवेष्टुमाज्ञाप्यते । यौगन्धरायणवचनं निशम्य राजा ब्रवीति–किं भवानिति । भवता-सर्वथासत्यमुच्यते । ममैषा प्रेयसी । बलादपहर्त्तुमुद्यतस्य भवतः खलु दुःसाहसमिदमिति भावः । राज्ञो वचनमनुनिशम्य तं मरबोधयन् यौगन्धरायणः ब्रवीति–भो इति ।

अन्वयः—भारतानां कुले जातः विनीतः ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य देशिकः (त्वमसि) तत् बलात् हर्त्तुं न अर्हसि ? (परकीयन्यासमिति शेषः) ॥ १६ ॥

व्याख्या—भारतानां = भरतवंशोत्पन्नानाम् । राज्ञामिति शेषः । कुले = वंशे । जातः उत्पन्नः । विनीतः = विनयगुणयुक्तः । ज्ञानवान् = प्राज्ञः । शुचिः = पवित्रः । एवं च राजधर्मस्य = नृपोचिताचारस्य । देशिकः = उपदेष्टा । तादृशस्त्वमसीति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात् । बलात् = बलमाश्रित्य । इमां मे भगिनीम् । हर्त्तुं = ग्रहीतुं । न अर्हसि = न युक्तोऽसि । परिकरालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १६ ॥

राजा—आप यह क्या कह रहे हैं । ये महासेन की पुत्री हैं ।

यौगन्धरायण—राजन् !

आप भरतवंशी राजाओं के कुल मे उत्पन्न, नम्र, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्म के आचार्य है । इसलिये मेरी बहन का बलपूर्वक इस प्रकार का हरण आपको उचित नहीं ॥ १६ ॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम्। सङ्क्षिप्यतां जवनिका।

यौगन्धरायण—जयतु स्वामी।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो। [जयत्वार्यपुत्रः।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः इयं महासेनपुत्री।

भारतकुलस्य विनयज्ञानशालिनः शुचेः राजधर्माचार्यस्य तव नेदं शोभते यदिदं प्रसह्य परकीयापहारचेष्टितमिति। अर्जुनपुत्रस्याभिमन्योः पञ्चविंशोऽयं पुरुषः इति विष्णुपुराणे प्रतिपादितम्। तेनास्य भारतानां कुले जातः इत्युपपन्नमेव। राजा तदाकृतिसादृश्यपरीक्षणाय पक्षान्तरमुपक्षिपति—भवत्विति। जवनिका = तिरस्करिणी। सा चात्र पुरुषान्तरदर्शनपरिहाराय कृतं मुखावगुण्ठनम्। संक्षिप्यताम् = अपनीयताम्। इदानीं ममैषा पत्नी भवतो स्वसा वेति नैव निर्णेष्यते। देव्या वासवदत्तायाः स्वरूपे एवं प्रकारेण प्रकाशतां गते तेनैव सममेतद्विषयकरहस्योद्घाटनं समयोचितं मन्वानः स्वामिनो जयाशसनं करोति यौगन्धरायणः—जयत्विति। सम्प्रति राजानमुद्दिश्य 'स्वामी'ति पदं प्रयुज्य यौगन्धरायणेन स्वीयः सेवकभावो व्यक्तीकृत। अनेन सहैव स्वीयपरिव्राजकवेषापनयनमपि ध्वनितम्। प्रकटितस्वरूपा वासवदत्ताऽपि स्वभर्तुर्जयाशंसनं कुर्वतो ब्रूते—जयत्विति। एवं विजयाशसनेन स्वात्मानं प्रकाशयन्तौ वासवदत्तायौगन्धरायणाविति प्रत्यभिजानन् सविस्मयं सहर्षं च राजा आह—अये इति। अहो अयं मे महामन्त्री यौगन्धरायणः इयं च महासेनराजकुमारी वासवदत्ता किमत्र तत्त्वम् ?

राजा—अच्छा रूप का सादृश्य देखें। इनका घूंघट हटाओ।

यौगन्धरायण—स्वामी की जय हो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—अरे ये यौगन्धरायण ! और यह महासेन-पुत्री !

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्ट्या वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

यौगन्धरायण—स्वामिन्! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम्। तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी। (इति पादयोः पतति।)

अन्वयः—इदं किं सत्यम्। स्वप्नो नु? सा मया भूयो दृश्यते। अहम् तदा अपि एवमेव दृष्ट्या अनया वञ्चितः ॥ १७ ॥

व्याख्या—इदम् = एतत्। निकटस्थं वासवदत्तादर्शनमिति शेषः। सत्यम् = यथार्थं। स्वप्नः = स्वप्नदर्शनं। नु वितर्के। सा = समुद्रगृहे दृष्टा या वासवदत्ता। सा मया = उदयनेन। भूयः = पुनरपि। दृश्यते = प्रत्यक्षमवलोक्यते। अहम् = उदयनः। तदा = तस्मिन् समुद्रगृहे अपि एवमेव = इत्थमेव। दृष्ट्या = अवलोकितया अनया = वासवदत्तया वञ्चितः = स्वरूपान्तर्धानेन प्रतारितः। अतो मया किञ्चिन्निश्चेतुं न शक्यते इति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

साम्प्रतिकं वासवदत्तादर्शनं तात्त्विकमतात्त्विकं वेति मया निश्चेतुं न शक्यते इति भावः। राज्ञः आज्ञां विनैव राज्ञी स्थानान्तरं नीतवतः स्वस्यापराधस्य क्षमापनं राजानं याचते यौगन्धरायणः—स्वामिन्निति। श्रीमन्तमनावेद्य भवतः प्रिया वासवदत्तात्र निक्षिप्ता तन्नूनमेषोऽपराधः मम सेवकस्य। तदर्थं क्षमां याचे इति उक्त्वा स्वामिचरणयोः पतति यौगन्धरायण इत्येवं

यह सत्य है या स्वप्न है जो उन वासवदत्ता को फिर से देख रहा हूँ। यह उस समय भी मुझ से देखी गई थी, इससे मैं उस समय भी इसी तरह ठगा गया था।

यौगन्धरायण—स्वामिन्! मैंने महारानी को छिपा कर अवश्य अपराध किया। अतः स्वामी क्षमा करें। (ऐसा कह कर पैरों पर गिर जाता है)

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

सूचयति इति । पादयोरिति–पादयोः पतितं तं स्नेहादुत्थापयन् प्रशंसन्नाह राजा । यौगन्धरायण इति । ननु इति वाक्यालङ्कारे । अत्र नामग्रहणं तद् गुणविशेषदर्शनार्थम् स एवं यौगन्धरायणो भवान्–यः सर्वदा स्वामिनः हितमेव स्वार्थं मन्यते । तत्कथमात्मा सङ्कोचमानीयते । न चैषोऽपराधः किंतु मदाराधनमेवेति राज्ञस्तात्पर्यम् पुनः तं प्रशंसत्यभिधया वृत्या ।

अन्वयः—मज्जमानाः वयम् मिथ्योन्मादैः युद्धैः शास्त्रदृष्टैः मन्त्रितैः च भवद्यत्नैः समुद्धृताः खलु ॥ १८ ॥

व्याख्या—मज्जमानाः = विपत्समुद्रे निमग्नाः वयम् मिथ्योन्मादैः = मृषा कल्पितैश्चित्तविभ्रमैः । युद्धैः = संग्रामैः । शास्त्रदृष्टैः = राजनीतिप्रोक्तैः । मन्त्रितैः गुप्तमन्त्रणैः । एतादृशैः भवद्यत्नैः = भवत्प्रयासैः । समुद्धृताः=पारं गमिताः । उन्मादयुद्धराजनीत्यनुकूलविचारसाधनप्रभृतिभिः भवतः प्रयत्नैः खलु निःसंशयं विपत्सागराद्बहिर्निष्कासिता वयमिति भावः । अनुष्टुप् छन्द ॥ १८ ॥

वत्सराजस्य प्रद्योतराज्ञावरोधनं यौगन्धरायणकृतं तन्मोचनं च प्रतिज्ञायौगन्धरायणे द्रष्टव्यम् । राज्ञः कृतेन प्रशंसनेन आत्मनि लज्जमानो यौगन्धरायणः सविनयं वचनमाह—वयम् = मादृशाः सेवकाः ।

राजा—(उठा कर) आप यौगन्धरायण हैं ।

विपत्ति के समुद्र में हम लोग डूब रहे थे किन्तु मिथ्या कल्पित उन्मादों से, युद्धों से और शास्त्र दृष्ट उपायों से—इस प्रकार के आपके प्रयत्नों के द्वारा हम उससे पार उतर गये हैं ।

यौगन्धरायण—हम लोग महाराज के भाग्य का अनुसरण करने वाले हैं ।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ।

स्वामिभाग्यानाम् श्रीमतां स्वामिनां यदा·यादृशानि भाग्यानि विलसन्ति तेषाम् । अनुगन्तारः = अनुसरणकर्त्तारः । भवतो भाग्यान्येव फलं निष्पादयन्ति । वयं सेवका अस्वतन्त्रा अकिञ्चित्कराश्चेति भावः । अत्र यावदवन्तिका पद्मावती सखीनिर्विशेषं मन्यते स्म साम्प्रतं तामार्यपुत्रप्रियां वासवदत्तां महाराज्ञीं विदित्वा भूतपूर्वसखीभावोचिताचारप्रदर्शनरूपस्वीयापराधक्षमापनचिन्तया प्रसादनौपयिकवचनं प्रस्तौति—अहो इति । आर्या = पूज्या । अजानन्त्या मयेति शेषः । सखीजनसमुदाचारेण = वयस्याव्यवहारेण । समुदाचारः = शिष्टाचारः । अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः । शीर्षेण = शिरसा । प्रसादयामि = अनुनयामि । यथोचिताचारमुल्लङ्घितवती क्षमां प्रार्थमानैषाहं प्रसादनार्थं शिरसा प्रणमामीत्यर्थः । एवं प्रणमन्तीं पादपतितां पद्मावतीमुत्थापयन्ती वासवदत्ताह-उत्तिष्ठेति—अविधवे = अखण्डसौभाग्यवति । अर्थिस्वं = याचकधनं । शरीरं = देहः योगन्धरायणन्याससाधनभूतं मे शरीरमिति भावः । अपराध्यति = अपराधं करोति न्यासरूपेण निक्षेप्तुकामेन योगन्धरायणेन यदहमत्र ते सन्निधौ निक्षिप्ता तेनैव मे स्वातन्त्र्य-

---

पद्मावती—अहो ! यह तो आर्या (वासवदत्ता) हैं । अरीं न जानने के कारण मैंन आपके साथ सखीजैसा व्यवहार कर सदाचार का उल्लंघन किया है । इस कारण शिर से प्रणाम कर आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाती हुई) उठो उठो । अखण्ड सौभाग्यशीले ! उठो । योगन्धरायण रूप याचक का धन रूप मेरा शरीर ही अपराध का हेतु है ।

उट्ठेहि। अत्थिसअं णाम सरीर अवरद्धइ। [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे उत्तिष्ठ। अथिस्व नाम शरीरमपराध्यति।]

पद्मावती—अणुग्गहिदिह्मि। [अनुगृहीताऽस्मि]

राजा—वयस्य ! यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायण—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

मपगतम्। आचारविरुद्धकारिता प्रायशः पराधीने जने भवति अतश्च नूनमहमेवापराधिनीति भावः। वासवदत्तायाः स्नेहानुग्रहं दृष्ट्वा पद्मावती सादरमभिनन्दति–अनुगृहीतास्मीति। अनुगृहीता = अनुकम्पिता। तदनन्तरं वत्सराजो वासवदत्तापनयनविषये यौगन्धरायणस्य मानसमाशयं स्फुटं जिज्ञासमानस्तद्विधाने कारणं पृच्छति—वयस्येति–वयस्य = मित्र। देव्यपनये = वासवदत्तादूरीकरणे ते=तव का = कीदृशी बुद्धिः = मतिः। वयस्य मित्र मन्त्रिवर। यद् देवी वासवदत्ता त्वया मत्सकाशादपनीता तन्मनसा किं भाविफलमुद्दिश्यापनीतेति भावः।

राज्ञः प्रश्नस्योत्तरं दित्सुर्यौगन्धरायणः ब्रवीति–कौशाम्बीति। अत्र मात्र-शब्दोवधारणे कौशाम्बीमेवेत्यर्थः। परिपालयामि। केवले कौशाम्बीरक्षिते परैरपहृतं समस्तं वत्सराज्यमुपायेन पुनः स्वायत्तीकरिष्यामिति विचिन्त्य मया वासवदत्ता न्यासरूपेण पद्मावतीहस्ते समर्पिता। अस्य गद्यस्येदं

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! देवी वासवदत्ता को मुझ से दूर करने में तुमने क्या सोचा था।

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा कर सकूं। (जिससे शत्रु अधिकृत राज्य प्रदेश को पुनः वापस ला सकूं)

राजा—तो इसे पद्मावती के हाथ में न्यास रखने का क्या तात्पर्य था।

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ।

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

तात्पर्यम् 'मत्यां वासवदत्तायां न कदापि तत्रभवता विवाहान्तरं स्वीकरिष्यते । समुचितसहायेन विना च परैरधिकृतवत्सराजप्राप्तिः न सुलभा अतो मया 'वासवदत्ता दग्धेति प्रवादः प्रख्यापितः । एवं अनुपलब्धायां वासवदत्तायां भवता मन्त्रिणामनुरोधान्तरं कथञ्चित् स्वीकरिष्यते । तदनन्तरं द्वितीय-भार्याबन्धुसाहाय्येन वत्सराज्यं पुनः करतलमायास्यतीति विचार्य मया देव्यापनयनं चिकीर्षितमिति यौगन्धरायणाभिप्रायः । श्रुत्वेदं वचनं 'पद्मावत्याः समीपे न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापने किं कारणमिति राजा पुनः पृच्छति देवीं मत्तोऽपनीय पद्मावतीसन्निधौ स्थापयतस्तव कोऽभिप्राय इत्यर्थः । यौगन्धरायणस्तस्याभिप्रायं प्रतिपादयन्नाह पुष्पकभद्रादिभिरिति । आदेशिकैः = सिद्धपुरुषैः दैवज्ञर्वा । आदिष्टा = भाव्यर्थसूचनं विषयी-कृता । पुष्पकभद्रप्रभृतिभिः सिद्धैः एषा पद्मावती महीपतेरुदयनस्य महिषी-पदमलङ्करिष्यति तत्र न्यासेन वासवदत्ताचरित्रशुद्धिः श्रीमतः विश्वासास्पदं भविष्यति इति भविष्यत्फलं सूचितमित्यर्थः । राजा पुनः पृच्छमि—इदमपीति । इदं वासवदत्तापनयनं पद्मावत्यन्तिके न्यसनं च किमर्थं तत्तो विज्ञातवान् रुमण्वान् ? अत्रोत्तरं ददाति यौगन्धरायणः—स्वामिन्निति—

यौगन्धरायण—पुष्पक, भद्र आदि सिद्धों (ज्योतिषियों अथवा महात्माओं) ने 'पद्मावती महाराज की रानी होंगी' ऐसी भविष्यवाणी की थी (जिससे पद्मावती के बन्धुगण अपने बल का समुचित प्रयोग कर शत्रु से अधिकृत राज्य पुनः वापस दिला सकें यही मूल उद्देश्य था)

राजा—क्या रुमण्वान् यह बात जानता था ?

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! यह बात सब जानते हैं । (सबकी सम्मति से ही पद्मावती के यहाँ वासवदत्ता को न्यास रूप में रखा गया)

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

राजा—न, न, सर्वे एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

नाथ ! न केवलं रुमण्वान् किन्तु अत्र भवतः श्रेयसि कृतावधानाः सर्वेऽपि आप्ततमाः अर्थमेनं जानन्ति । सर्वसम्मत्यैव प्रवृत्तोऽहमस्मिन् कर्मणि इति भावः । सर्वेऽपीमं विषयं जानन्तीति यौगन्धरायणोक्तमनुनिशम्य जानन्तमपि तमर्थम् अप्रकाशितवन्तं रुमण्वन्तं सप्रणयोपलम्भनं प्रस्तौति अहो इति । शठो= वञ्चकः । तस्मिन् वञ्चकत्वारोपः वासवदत्ताकुशलवृत्तान्ताप्रकाशनमूलकः । कुशलवृत्तमिदं वासवदत्तायाः जानन् रुमण्वान्नपि न सूचितवान् एतदेवास्ति वञ्चकत्वमिति भावः । इदानीं यत्कर्त्तव्यं तदर्थं राजानं प्रेरयति यौगन्धरायणः स्वामिन्निति नाथ ! देव्याः मातापितरौ चिराद्वृत्तान्तं कमप्यनधिगच्छन्तौ कुशलं श्रोतुमुत्कण्ठितौ भवेतामतस्तन्निवेदनाय श्रीमता रैभ्येण श्रीमत्या वसुन्धरया च सत्वरं तत्र गन्तव्यम् । स्वात्मप्रदर्शनपुरःसरं स्वयमेव तन्निवेदनीयमन्यथौद्धत्यशङ्का प्रतिभायाद् गुरुजनस्येत्याह राजा न नेति । द्वौ नञौ तयोस्तत्रैकाकिनो गमनं सर्वथा निषेधतः । मन्त्रिवर ! नैवम् । नवोढया पद्मावत्या समं सकलैरस्माभिस्तत्रोपस्थातव्यम् । येन प्रेमभावमवलोक्य श्वशुरौ मे तुष्येतामित्यभिप्रायः ।

राजा—अहो ! तब तो रुमण्वान् वञ्चक है ।

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! महारानी (वासवदत्ता) का कुशल निवेदन करने के लिये माननीय रैभ्य और मान्या वसुन्धरा को आज ही भेज देना चाहिये ।

राजा—नहीं । नहीं । हम सभी लोग महारानी वासवदत्ता और पद्मावती के साथ-साथ जायेंगे ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

(भरतवाक्यम्—)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

तत्र भवतः स्वामिनः आदेश प्रमाणयन् यौगन्धरायणो ब्रूते—यदाज्ञापयतीति । श्रीमतः स्वामिनः वयन्तु किङ्कराः स्मः अतः यदाज्ञापयति स्वामी तदेव वयं कुर्म इति । नाटकीयसंविधानसमाप्तौ मङ्गलार्थं भरतवाक्यं यौगन्धरायणमुखेन प्रदर्शयति । इमामिति—

अन्वयः—सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्कां इमां महीं नः राजसिंहः प्रशास्तु ॥ १९ ॥

व्याख्या—सागरपर्यन्ताम् = सागरसीमायुक्ताम् । हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् = हिमालयविन्ध्याचलकर्णालङ्कारभूताम् । एकातपत्राम् = एकच्छत्रस्वरूपाम् । इमाम् = एताम् । महीम् = पृथ्वीम् । नः = अस्माकं । राजसिंहः = नृपवरः । प्रशास्तु = प्रशासनं करोतु । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

अस्यायं भावः या किल चरमसीमाभूतान् सप्तसमुद्रान् व्याप्य संस्थिता यस्याश्च विन्ध्येन हिमवता च कर्णालङ्कारतुल्यसुषमाविशेषाः समन्ततः प्रकाशन्ते । यत्र चैकाधिपत्यसूचकं श्वेतच्छत्रमुद्योतते एतादृशीं समस्तां पृथ्वीं निष्कण्टकमस्माकं राजाधिराजः श्रीमानुदयनः चिरं परिपालयतामित्यर्थः । सार्वभौमो भवान् राजास्माकं विराजताम् इत्यर्थः । तदनन्तरं रङ्गभूमितः सर्वेषां प्रस्थानं प्रदर्श्यते ।

यौगन्धरायण—स्वामी की जैसी आज्ञा ।

(भरत वाक्य)

जिस पृथ्वी के दो भागों में हिमालय तथा बिन्ध्य पर्वत दो कुण्डलों

इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

—:❀:—

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

रसवेदाभ्रयुग्माब्दे सिते भाद्रे गुरौ दिने,
चतुर्दश्यां शुभतिथावनन्तव्रतवासरे ।
समाप्तिमगमट्टीका छात्रोपकृतये कृता ।
प्रीयतां भगवानीशो मङ्गलं नस्तनोतु च ॥

इति भासकविकृतायाः स्वप्नवासवदत्तायाः डॉ० गङ्गासागररायशर्मणा कृता गङ्गा नाम्नी व्याख्या समाप्ता

—:❀:—

की भाँति सुशोभित हैं हमारे राजसिंह उस सागर सीमा वाली वसुन्धरा का एकच्छत्र (अखण्ड) राज्य करें ।

(सभी लोगों का प्रस्थान)

षष्ठ अङ्क समाप्त

स्वप्नवासवदत्तम् समाप्त



नाटकीयपारिभाषिकशब्दविमर्शः

(१) नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति सञ्ज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

नान्दी में देवद्विजनृपादि की स्तुति होती है। यह आठ या बारह पदों की होती है तथा शङ्ख, चक्र, पद्म आदि मङ्गलवाची शब्दों से संयुक्त होती है।

(२) प्रस्तावना-आमुख—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है। उसी को प्रस्तावना भी कहते है।

(३) सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण वस्तु—नेता तथा रस—ये सूत्र कहे जाते हैं सूत्रधार

इनका उल्लेख करता है। दूसरे लक्षणानुसार नेता और कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा सूत्रित करने पिरोने वाला तथा रङ्ग प्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

(४) प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है।

(५) नेपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नट के परिवार के गृह—जहाँ वह साज-सज्जा करे—को नेपथ्य कहते हैं।

(६) विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥

यह नाटक में हुई या होने जा रही घटनाओं का प्रदर्शक होता है। यह कथांश को संक्षिप्त करने लिये प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के होने पर यह शुद्ध कहा जाता है और नीच तथा मध्यम पात्रों के होने पर सङ्कीर्ण होता है।

(७) प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

इसमें नीच पात्र तथा प्राकृतभाषा प्रयुक्त होती है। यह दो अङ्कों के बीच म होता है तथा शेष विशेषतायें विष्कम्भक की होती हैं।

(८) स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की नही होती वे स्वगत होती हैं ।

(९) प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशः स्यात् ।

जो बातें सभी सुनें उसे प्रकाश कहा जाता है ।

(१०) विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने, कर्म, वेष, भाषादि से हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता विदूषक होता है । उसके कुसुम, वसन्त आदि नाम होते हैं ।

(११) नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवद, लोकरञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा कला-मान-युक्त शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है ।

(१२) नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया परकीया, साधारणा के भेद से तीन प्रकार की होती है । यथासम्भव वह नायक के गुणों से युक्त होती है ।

(१३) अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावं रसश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहरः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

अङ्क भावों एवं रसों से अर्थों का वर्धन करता है। यह नाना विधानों से युक्त होता है। इसमें अर्थ की समाप्ति तथा बीज का संहरण होता है।

(१४) नाटक—

नाटक की परिभाषा देते हुये बताया गया है कि जिसमें वीर अथवा शृङ्गार मे से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्य रस गौण रूप में वर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हो, नाटक कहा जाता है।

वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

राजा उदयन 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक है। उदयन तथा वासवदत्ता की प्रणय-कथा लोक प्रसिद्ध है। यह छः अङ्कों में लिखा गया है। अतः साहित्यदर्पण के निम्नलिखित लक्षण के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक है—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥"

—सा० द०, ६।६-१०

भरतमुनि के नाटचश स्त्र में नाटक का निम्नलिखित लक्षण है—

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्ताऽनुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥
यस्मात्स्वभावं सन्त्यज्य साङ्गोपाङ्गव्यतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥"

—ना० शा०, १९।१४७

(१५) काञ्चुकीय—

काञ्चुकीय के लक्षण में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीयेत्यभिधीयते ॥"

अर्थात् काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता । वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविधगुणों से युक्त होता है, कामादि दोषों से वर्जित तथा सभी कार्यों के विषयों में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है । मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

"ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता ॥"



परिशिष्टम्—२

स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त छन्द

(१) अनुष्टुप्—"श्लोके षष्टं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतु:पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो: ॥"

उदाहरण—प्रथम अंक–२, ७, १०, १५ । चतुर्थ अंक–५, ७, ८, ९ । पञ्चम अंक–६, ७, ८, ९, १०, ११ । षष्ठ अंक–७, ९, १३, १८, १६, १७, १९ ।

(२) उपजाति—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता: ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उदाहरण—पञ्चम अंक–५ ।

(३) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उदाहरण—पञ्चम अंक–१३ ।

(४) शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकै: ।

उदाहरण—प्रथम अंक–१२ । चतुर्थ अंक–६ । षष्ठ अंक–१० ।

(५) वैश्वदेवी—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।

उदाहरण—प्रथम अंक–९ ।

(६) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग: ।

उदाहरण—प्रथम अंक–४, ६, ११ । चतुर्थ अंक–२ । पञ्चम अंक–१, २, ३ । षष्ठ अंक–२, ४, ५, १५ ।

(७) शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला: ग: शिखरिणी ।

उदाहरण—प्रथम अंक–१४, १६ ।

(८) हरिणी—नसमरसला: ग: षड्वेदैर्हरिणी मता ।

उदाहरण—षष्ठ अंक–८ ।

(९) शार्दूलविक्रीडितम्—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।
उदाहरण—प्रथम अंक–३, ७, १२। चतुर्थ अक–१। पञ्चम अंक–४, १२।

(१०) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
उदाहरण—प्रथम अंक–५। षष्ठ अंक।

(११) आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥
उदाहरण—प्रथम अंक–१। चतुर्थ अंक–३, ५।



परिशिष्टम्—३

स्वप्नवासवदत्तम् की सूक्तियां

(१) "कालक्रमेण जगतः परिवर्त्तमाना,
चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्तिः ।" १।२

(२) "प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।" १।७

(३) "सुखमर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।।"

(४) "... नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ।।" १।११

(५) "तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ।" १।१५

(६) "दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ।।"

(७) "....शोस्वभावस्तु कातरः ।।" १।८

(८) "गुणानां वा विशालानां सत्कराणाञ्च नित्यशः ।
कर्त्तारः सुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ।।" ४।९

(९) "प्राणी प्राप्तरुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।" ५।४

(१०) "कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।।" ६।७

(११) "कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले,
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां,
काले काले छिद्यते रुह्यते च ।।" ६।१०



12826



शाखाएं :- ☎ ३२०४१४

चौखम्भा संस्कृत भवन

पो० बा० नं० ११६०

चौक (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

☎ ३२६८६३९, ३२५९०५०

चौखम्भा पब्लिकेशन्स

४२६२/३ अन्सारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली-११०००२